इकाई –1 पूरक चिकित्सा का उद्भव एवं विकास

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पूरक चिकित्सा पद्धति का उद्भव एवं विकास
1.4 विभिन्न पूरक चिकित्सा पद्धतियों का इतिहास
1.4.1 रेकी चिकित्सा का इतिहास
1.4.2 एक्यूप्रेशर चिकित्सा का इतिहास
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी इस बात से सुपरिचित हैं कि रोग होने पर उपचार की आवश्यकता होती है और प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव एवं विश्वास के आधार पर भिन्न–भिन्न चिकित्सा पद्धतियों को अपनाता है। जितने प्रकार के रोग है, उनके अनुसार उनके उपचार हेतु असंख्य उपचार विधियाँ भी हैं। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की विधियों में भिन्नता होने के बावजूद सभी का ध्येय यही है– **प्राणी मात्र का कल्याण तथा सेवा।**

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– **''पूरक चिकित्सा पद्धति का उद्भव एवं विकास''।** इस चिकित्सा पद्धति के इतिहास पर नजर डालने से पहले आपको इस तथ्य से अवगत करा देना अतिआवश्यक है कि पूरक चिकित्सा पद्धति स्वयं में किसी एक चिकित्सा पद्धति का नाम नहीं है, वरन आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अतिरिक्त जितनी भी उपचार पद्धतियाँ हैं, वे सभी पूरक चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत आती है, जिनका विस्तृत अध्ययन आप अगली इकाइयों में करेंगे।

पाठकों, आपके मन में सहज ही इस बात को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन भिन्न–भिन्न पूरक चिकित्सा पद्धतियों का उद्भव किस प्रकार हुआ और कैसे ये प्रचलन में आयी ?

तो आइये, आपकी इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये हम अध्ययन करते हैं, पूरक चिकित्सा पद्धति के उद्भव एवं विकास के विषय में।

1.2 उद्देश्य

जिज्ञासु विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

1. पूरक चिकित्सा पद्धति के इतिहास का विश्लेषण कर सकेंगे।
2. रेकी चिकित्सा के इतिहास को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. एक्यूप्रेशर चिकित्सा के उद्भव का वर्णन कर सकेंगे।

1.3 पूरक चिकित्सा पद्धति का उद्भव एवं विकास

प्रिय विद्यार्थियों, इस संसार में प्रत्येक प्राणी सुखी एवं स्वस्थ जीवन जीना चाहता है। कोई भी रोगों से ग्रस्त नहीं रहना चाहता, किन्तु आज ऐसा एक भी व्यक्ति खोजना मुश्किल है, जो पूरी तरह स्वस्थ हो। प्रत्येक प्राणी किसी न किसी विकार से ग्रस्त है। चाहे ये विकार शारीरिक हो या मानसिक हो अथवा भावनात्मक हो। पाठकों क्या आपने कभी सोचा है कि आखिर प्राणी रोगग्रस्त होता क्यों है? यदि हम रोग के कारणों पर दृष्टि डालें तो इसके मूल में प्रधान रूप से दो कारण हैं– (1) मनुष्य की जीवन शैली का व्यवस्थित न होना (2) और दूसरा प्रधान कारण यह है कि कुछ परिस्थितियों पर मनुष्य का स्वयं का नियंत्रण नहीं होता है। जैसे – **प्रदूषण, संक्रमण, उम्र के साथ होने वाली समस्यायें, जन्मजात रोग, आनुवांशिक रोग इत्यादि।** इन दोनों ही कारणों से प्रत्येक प्राणी प्रायः रोगग्रस्त रहता है।

इस प्रकार इतना तो आप समझ गये होंगे कि जब तक जीवन है, तब तक किसी न किसी रूप में रोगों का सामना भी करना होगा। यह प्रक्रिया कोई नयी नहीं है, वरन मानव–सभ्यता के प्रारम्भ के साथ ही यह प्रक्रिया निरन्तर जारी है। अतः रोगों के निदान एवं उनके निराकरण के लिये पुरातनकाल से ही अनेक चिकित्सा पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा है और इस क्षेत्र में शोध–अनुसंधान निरंतर जारी हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का उद्‌भव और विकास मानव सभ्यता के विकास के समानान्तर हो रहा है। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया, वैसे–वैसे उपचार विधियाँ भी विकसित होती गयी।

अतः स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धतियों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। जैसा कि आपको ज्ञात है कि पूरक चिकित्सा में उपचार की अनेक विधियाँ शामिल हैं। जैसे प्रत्येक चिकित्सा पद्धति की अपनी कुछ मूल मान्यतायें और सिद्धान्त हैं, वैसे ही इनका अपना अलग–अलग इतिहास भी है।

उदाहरण के तौर पर यदि हम योग चिकित्सा की बात करें तो यह पद्धति उतनी ही प्राचीन है, जितने हमारे **वेद,** क्योंकि वेदों में स्पष्ट रूप से योग विद्या का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार यदि हम ध्वनि या संगीत चिकित्सा को लें तो इसके मूल सूत्र हमें **सामवेद** में मिलते हैं। पाठकों, कुछ पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ ऐसी भी है, जिनको विकसित करने का श्रेय पाश्चात्य देशों को है। जैसे – **पिरामिड चिकित्सा।** यह चिकित्सा पद्धति **मिस्र** की देन है, जो वर्तमान समय में अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। ऐसी मान्यता है कि पिरामिड के अन्दर मृत शरीर को रखने की पद्धति का विकास ईसा के लगभग 3500 वर्ष पूर्व ही हो गया था अर्थात यह चिकित्सा पद्धति भी अत्यन्त प्राचीन है।

कहने का तात्पर्य यह है कि पूरक चिकित्सा पद्धतियों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है और प्रत्येक चिकित्सा पद्धति के उद्‌भव और विकास की अपनी प्रक्रिया है।

1.4 विभिन्न पूरक चिकित्सा पद्धतियों का इतिहास .

प्रिय विद्यार्थियों, इतना तो आप जान गये हैं कि पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ असंख्य है। अतः सभी चिकित्सा पद्धतियों के इतिहास का विवेचन करना संभव नहीं है। इसलिये प्रस्तुत इकाई में केवल कुछ चिकित्सा पद्धतियों के उद्‌भव पर प्रकाश डाला जा रहा है।

आइये, सबसे पहले हम अध्ययन करते हैं– रेकी चिकित्सा के उद्‌भव एवं विकास के विषय में।

1.4.1 रेकी चिकित्सा का इतिहास

प्रिय पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि रेकी चिकित्सा को पुनर्जीवित करने का श्रेय जापान के डॉ0 **मेकाओ उशुई** को है, जिन्होंने 19वीं शताब्दी के मध्य में इस चिकित्सा को नवजीवन प्रदान किया। डॉ0 उशुई ने कैसे रेकी का पुनरूत्थान किया इससे संबधित एक घटना है, जिसका विवरण निम्नानुसार है–

डॉ0 उशुई जापान में इसाई कालेज में डीन के पद पर कार्यरत थे। एक दिन एक विद्यार्थी ने उनसे प्रश्न कि जिस प्रकार ईसा मसीह किसी रोगी को स्पर्श मात्र से रोगमुक्त कर देते थे, वर्तमान समय में ऐसा क्यों नहीं होता है? उनके द्वारा उपयोग में ली गई उपचार की तकनीकों को प्रयोग आज हम कर पाने में असमर्थ क्यों है? क्या आप (डॉ उशुई) वैसा करने में सक्षम है? डॉ0 उशुई के अन्तर्मन को यह छू गई। वे उस समय विद्यार्थी के उस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दे सके। इसलिये जापान के नियम के अनुसार उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और यह संकल्प किया जब तक वे उस विद्यार्थी द्वारा पूछे गये प्रश्न का सटीक उत्तर प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक ईसाई मत के गहन अध्ययन में लगे रहेंगे।

डॉ0 उशुई अपनी इस अनुसंधान यात्रा में अमेरिका के शिकागो शहर में पहुँचे और वहा पर उन्होंने आत्मविद्या में डॉक्ट्रेट की उपाधि ग्रहण की। डॉ0 उशुई ने अनेक ईसाई एवं चीनी धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया किन्तु फिर भी उन्हें अपने प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं मिला, किन्तु इससे डॉ0 उशुई निराश नहीं हुये, वरन इसके बाद वे उत्तर भारत आये और उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। इन संस्कृत ग्रन्थों में उन्हें कुछ संकेत प्राप्त हुये इसके बाद वे पुनः जापान आ गये और उन्होंने बौद्ध ग्रन्थ के सूत्रों में संस्कृत के प्रतीकों एवं सूत्रों की खोज करना प्रारम्भ किया। इन सूत्रों में उन्हें अपने प्रश्नों के समाधान नजर आ रहे थे। इस दौरान डॉ0 उशुई जापान के क्योटो के मठ में रह रहे थे। बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप करने के बाद वे अपने शहर से 16 मील की दूरी पर स्थित **कुरीयामा नामक पहाड़ी** पर चले गये और यहाँ **21 दिनों** तक इन्होंने एकान्त में कठोर तपस्या की। इस साधना का उद्देश्य ब्रह्माण्डीय उर्जा के साथ सम्पर्क स्थापित करना था। डॉ0 उशुई ने सूत्रों एवं प्रतीकों के रहस्य का पता करने के लिये संस्कृत के प्रतीकों एवं सूत्रों को लिख भी रखा था। 21 दिनों का उपवास रखकर डॉ0 उशुई अपनी कठोर तपसाधना में लीन हो गये और वे सत्त उन संस्कृत मंत्रों का जप भी करते रहे। डॉ0 उशुई ने पर्वत की चोटी पर पहुँचने के बाद अपने पास छोटे – छोटे 21 पत्थर के टुकड़ों को रखा। प्रिय पाठकों, आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन पत्थर के टुकड़ों को रखने के पीछे क्या उद्देश्य था? इसका प्रयोजन यह था कि जैसे – जैसे साधना का एक दिन पूरा हो जाता था वैसे – वैसे डॉ0 उशुई एक–एक पत्थर फेंक देते थे। साधना के 20 दिन बीत गये और 21 वें दिन की सुबह तक डॉ0 उशुई को अपनी साधना का अपेक्षित परिणाम नहीं मिला किन्तु अभी सूरज पूरी तरह नहीं निकला था और रात्रि का अंधेरा था। इसी समय डॉ0 उशुई को एक तीव्र प्रकाश पुंज अत्यन्त तीव्रगति से अपनी ओर आता हुआ दिखायी दिया और उन्होंने भागने का प्रयास किया किन्तु किसी कारणवश वे रूक गये। पाठकों, आपको बता दें कि जैसे–जैसे यह प्रकाश पुंज डॉ0 उशुई की ओर बढ़ रहा था, वैसे–वैसे उसका आकार और अधिक बढ़ता ही जा रहा था और अन्ततः वह प्रकाश समूह डॉ0 उशुई के माथे के मध्य में (भ्रूमध्य या आज्ञाचक्र का स्थान) टकराया। यह प्रकाश पुंज त्रिनेत्र चक्र था। प्रकाश पुंज के टकराने से डॉ0 उशुई को ऐसा लगा कि अब तो मौत की घड़ी आ गई है और इसके बाद अचानक एक तेज विस्फोट के साथ उन्हें आकाश में नीले, गुलाबी इत्यादि अनेक रंगों वाले चमकीले तारे दिखायी दिये और अत्यन्त बड़े आकार में उन्हें श्वेत

प्रकाश दिखाई दिया और देखते ही देखते उनकी दृष्टि के समक्ष एक चमकीला स्वर्णिम प्रतीक आकार लेने लगा, जो संस्कृत ग्रन्थ में दिया गया था और अपनी साधना के समय जिसका वे नियमित जप करते थे। उस प्रतीक को देखकर डॉ0 उशुई ने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा– ''हाँ, मुझे याद है'' इसके बाद वे बेहोश हो गये। यही से उन्हें ब्रह्माण्डीय प्राण उर्जा के उपयोग की विधि का ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसे **रेकी** का नाम दिया गया।

तो जिज्ञासु पाठकों, अब आप जान गये होंगे कि रेकी विद्या का जन्म किस प्रकार हुआ।

पाठकों, जब डॉ0 उशुई होश में आये तो सूर्योदय हो चुका था। आप को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि 21 दिनों के उपवास के बाद भी डॉ0 उशुई अपने भीतर किसी प्रकार की कमजोरी महसूस नहीं कर रहे थे, वरन उन्हें स्वयं के भीतर पहले से कहीं अधिक उर्जा एवं स्फूर्ति का अहसास हो रहा था।

साधना पूरी करने के बाद डॉ0 उशुई जब पहाड़ी से नीचे उतर रहे थे तो उनके पैर के अंगूठे में चोट लग गई और रक्त बहने लगा। इसलिये उन्होंने अपनी हथेली से अंगूठे को ढक दिया और जैसे ही उन्होंने हथेली रखी खून बहना एकदम से रूक गया और दर्द भी दूर हो गया। यह देखकर डॉ0 उशुई को अत्यन्त आश्चर्य और खुशी हुयी। वे यह अनुभव कर चुके थे कि यह उसी विश्वव्यापी प्राण उर्जा का प्रभाव है। यह रेकी का **पहला उपचारात्मक प्रयोग था।**

लम्बे समय तक उपवास के कारण डॉ0 उशुई को कड़ी भूख लगी थी, इसलिये वे भोजन हेतु एक धर्मशाला में गये। धर्मशाला के मालिक ने डॉ0 उशुई की वेशभूषा को देखकर यह अनुमान लगा लिया कि इन्होंने लम्बे समय तक उपवास किया है। अतः उन्होंने उपवास के बाद हल्का नाश्ता लेने की सलाह दी किन्तु डॉ0 उशुई ने भरपेट भोजन किया और इससे उन्हें किसी प्रकार की परेशानी नहीं हुयी। पाठको, यह सब प्रचण्ड जीवनीशक्ति का ही कमाल था। इस प्रकार वह रेकी का दूसरा चमत्कारिक प्रभाव था।

प्रिय विद्यार्थियों, रेकी का तीसरा प्रयोग धर्मशाला के मालिक की पौत्री पर किया गया। उसके दांतों में लम्बे समय से दर्द एवं सूजन थी। जैसे ही डॉ0 उशुई ने उसके गाल को स्पर्श किया, वैसे ही दर्द के साथ सूजन भी दूर हो गयी। यह रेकी की तीसरी उपचार प्रक्रिया थी।

पाठकों, इसके बाद जब डॉ0 उशुई अपने मठ में वापस आये तो उनका मित्र जो बौद्ध भिक्षुक था, वह गठिया रोग से पीड़ित था, डॉ0 उशुई ने उसके पास बैठकर अपने दोनों हाथ अपने मित्र के शरीर पर रख दिये। ऐसा करने पर उनके मित्र को अत्यन्त आराम महसूस हुआ और कुछ ही समय में वह स्वस्थ हो गया। इस प्रकार डॉ0 उशुई निरन्तर इस रेकी का प्रयोग करके असंख्य लोगों को ठीक करते गये।

इसके उपरान्त डॉ0 उशुई क्योटो शहर के स्लम क्षेत्र के भिक्षुगृह में गये और उन्होंने भिखारियों की सेवा करने का निर्णय लिया। उस भिक्षुगृह में सात दिन तक रहकर उन्होंन उनके रोगों का उपचार किया। उपचार के दौरान डॉ0 उशुई ने देखा कि यही जाने–पहचाने लोग बार–बार उनके पास क्यों आते है? कारण पूछने पर उन्हें भिखारियों ने जवाब दिया कि गृहस्थ आश्रम में रहकर जीवन व्यतीत करने से कही अधिक अच्छा भीख माँगना है।

यह बात सुनकर डॉ0 उशुई को अत्यन्त दुःख हुआ और उन्हें लगा कि रेकी के कुछ नियम एवं सिद्धान्त बनाना भी अनिवार्य है। अतः उन्होंने रेकी के नियमों एवं प्रयोगों को विधिवत – विकसित किया।

प्रिय विद्यार्थियों, इसके बाद जब डॉ0 उशुई भिक्षुगृह से क्योटो वापस आ गये और एक दिन एक बहुत बड़ी मशाल जलाकर गली के अन्दर खड़े हो गये। पाठकों, आप जानना चाह रहे होगें कि डॉ0 उशुई ने ऐसा क्यों किया होगा? आपके समान ही यह जिज्ञासा राहगीरों को भी हुयी और उन्होंने डॉ0 उशुई से जब इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि **''मुझे ऐसे लागों की खोज है, जो वास्तव में सत्य का प्रकाश प्राप्त करना चाहते हैं।''** उनके कहने का आशय था कि जो वास्तव में उस विश्वव्यापी प्राण उर्जा से अपना सम्पर्क स्थापित करना चाहते है, ऐसे लोग मुझे चाहिये। इस प्रकार डॉ0 उशुई ने रकी के प्रचार के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया और इसे विश्वव्यापी बनाया और अपने शिष्यों को इसका विधिवत प्रशिक्षण भी प्रदान किया।

कुछ समय पश्चात डॉ0 उशुई ने देह का त्याग कर दिया। उनकी पार्थिव देह को क्योटो के मंदिर में दफन किया गया। पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि उनकी कब्र पर जो पत्थर लगे हुये हैं, उन पर डॉ0 उशुई की सम्पूर्ण जीवन गाथा को खोदा गया है। डॉ0 उशुई कितने अधिक सम्मानित एवं प्रसिद्ध हो चुके थे, इस बात का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि स्वयं जापान के सम्राट ने उनकी कब्र पर जाकर अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये थे।

प्रिय पाठकों, डॉ0 उशुई के शरीर छोड़ने के बाद **डॉ0 हयाशी** जो उनके नजदीकी सहयोगी थे, वे उत्तराधिकारी बने। इस प्रकार वे दूसरे रेकी ग्रैंड मास्टर कहलाये। **डॉ0 हयाशी** सन् 1940 तक टोकियों में सुचारू रूप से रेकी क्लिनिक का संचालन करते रहे, जहाँ पर सामान्य रोगों के साथ–साथ गंभीर रोगों का इलाज भी किया जाता था। जब कोई व्यक्ति गंभीर रोग से ग्रसित होता था तो दिन–रात रेकी द्वारा उसका इलाज होता था किन्तु धीरे–धीरे द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभाव के कारण एवं 10 मई 1941 में **डॉ0 हयाशी की** मृत्यु के कारण इस क्षेत्र में आगे विकास की प्रक्रिया थम सी गई।

पाठकों, **डॉ0 हयाशी** की मृत्यु के उपरान्त **श्रीमती हवाशो** उनकी उत्तराधिकारिणी बनी जिनका जन्म **सन् 1900 में हवाई द्वीप** पर हुआ था। इनके माता–पिता जापान के थे, लेकिन फिर भी उन्हें अमेरिका की नागरिकता प्राप्त थी। श्रीमती टकाटा विधवा थी एवं दो बच्चों की माँ भी। साथ ही वह अनेक गंभीर रोगों से पीड़ित थी। बीमारी के दौरान श्रीमती टकाटा को आन्तरिक प्रेरणा मिली कि उन्हें जापान में अपना उपचार कराना चाहिये।

इसी अन्तः प्रेरणा से प्रेरित होकर वे जापान पहुँची। उपचार के दौरान जब वह ऑपरेशन के लिये टेबल पर लेटी हुयी थी तो उन्होंने महसूस किया कि एकमात्र ऑपरेशन ही रोग का इलाज नहीं है। इसलिये उनका ऑपरेशन करवाना उतना आवश्यक नहीं है। इसलिये उन्होंने ऑपरेशन के अतिरिक्त अन्य चिकित्सा पद्धतियों के बारे में डॉक्टर से विचार–विमर्श किया। डॉक्टर ने उन्हें **डॉ0 हयाशी के** रेकी क्लिनिक के बारे में बताया और उपचार के लिये वहाँ जाने का सुझाव दिया। श्रीमती **टकाटा** रेकी क्लिनिक पहुँची, जहाँ पर दो रेकी चिकित्सक प्रतिदिन उनका रेकी द्वारा इलाज करते थे। नियमित रेकी चिकित्सा के द्वारा वे कुछ महीने में पूरी तरह स्वस्थ हो गई।

पाठकों, **श्रीमती टकाटा जापान में डॉ0 हयाशी** की लगभग 1 वर्ष तक शिष्या रही। इसके बाद वह पुनः अपने बच्चों के साथ हवाई द्वीप वापस आ गई। सन् 1938 में **डॉ0 हयाशी**

हवाई द्वीप आये और उन्होंने श्रीमती टकाटा को **रेकी मास्टर** घोषित कर दिया। श्रीमती टकाटा ने हवाई में रहकर अनेक लोगों का रेकी विधि के माध्यम से इलाज किया। जब श्रीमती टकाटा अपनी उम्र के सातवें दशक में थी, तब उन्होंने रेकी मास्टर बनाना प्रारम्भ कर दिया था। 11 दिसम्बर सन् **1980 में श्रीमती टकाटा** की भी मृत्यु हो गई। श्रीमती टकाटा के पीछे कनाडा तथा अमेरिका में कुल मिलाकर 22 रेकी ग्रेड मास्टर थे। प्रिय विद्यार्थियों, आज पूरे विश्व में लगभग 4 हजार रेकी मास्टर है, जो रेकी के माध्यम से लोगों का उपचार करके इस विद्या के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दे रहे है।

इस प्रकार पाठकों, उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप समझ गये होंगे कि, किस प्रकार रेकी विद्या का जन्म एवं विकास हुआ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

खण्ड – क (सत्य / असत्य)

1. रेकी विद्या को पुनर्जीवित करने का श्रेय डॉ0 हयाशी को है। (सत्य / असत्य)
2. डॉ0 उशुई ने 21 दिनों तक कठिन तपस्या की थी। (सत्य / असत्य)
3. डॉ0 हयाशी की मृत्यु सन् 1980 में हुयी थी। (सत्य / असत्य)
4. डॉ0 उशुई तपस्या के लिये कुरीचामा पर्वत पर गये थे। (सत्य / असत्य)
5. डॉ0 उशुई के बाद श्रीमती टकाटा उनकी उत्तराधिकारिणी बनी। (सत्य / असत्य)

अभ्यासार्थ प्रश्न

खण्ड – ख

(वस्तुनिष्ठ प्रश्न)

1. डॉ0 उशुई का संबध है–
   (अ) अमेरिका से (ब) लन्दन से
   (स) जापान से (द) चीन से
2. डॉ उशुई ने ....दिनों तक तपस्या की –
   (अ) 20 दिनों तक (ब) 31 दिनों तक
   (स) 15 दिनों तक (द) इनमें से कोई नहीं
3. श्रीमती हवाचों टकाटा का जन्म हुआ था –
   (अ) जापान में (ब) हवाई द्वीप में
   (स) भारत में (द) इनमें से कोई नहीं

1.4.2 एक्यूप्रेशर चिकित्सा का इतिहास – पाठकों, रेकी के समान ही पूरक चिकित्सा पद्धतियों में ''**एक्यूप्रेशर चिकित्सा**'' का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में यदि देखा जाये तो मनुष्य ने सबसे पहले अपना उपचार एक्यूप्रेशर पद्धति से ही करना सीखा है। हालांकि इस पद्धति का नामकरण कालान्तर में हुआ।

''एक्यूप्रेशर'' में **'एक्यू' (Acu) शब्द का अर्थ है– 'तीक्ष्ण' और प्रेशर (Pressure) का अर्थ है –'दबाव'।** इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर में विद्यमान निश्चित बिन्दुओं पर दबाव डालकर उपचार की पद्धति को एक्यूप्रेशर कहते हैं।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इस पद्धति के उद्भव एवं विकास को लेकर विद्वानों में दो मत प्रचलित हैं, **एक भारतीय मत और दूसरा चीनी विद्वानों का मत**। भारतीय मतानुसार एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का उद्भव भारत में लगभग 5000 वर्ष पूर्व हो गया था, जबकि इसके विपरीत चीनी विद्वानों की धारणा यह कि यह

पद्धति चीन की देन है, क्योंकि लगभग 6000 वर्ष पूर्व इस चिकित्सा पद्धति की शुरूआत चीन में हुयी थी।

अतः विद्यार्थियों, हम यहाँ दोनों मतों के अनुसार एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के इतिहास पर प्रकाश डालेंगे।

सर्वप्रथम हम अध्ययन करते हैं, भारतीय मतानुसार एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के इतिहास पर।

भारतीय मतानुसार एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का इतिहास –

भारत में एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से किया जा रहा है। ऐसा माना जाता है कि भारत में लगभग 5000 वर्ष पूर्व इस चिकित्सा पद्धति का उद्भव हो चुका था। अतः चिकित्सा शास्त्र के विशेषज्ञों का मानना है कि एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति भारत की ही देन हैं। हम सभी जानते हैं कि **नाड़ीशास्त्र** भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है, जिसके अन्तर्गत शरीर में विद्यमान नाड़ियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इन नाड़ियों के प्राथमिक, मध्य एवं अंतिम छोरों पर दबाव देकर नाड़ियों को उत्तेजित करने की पद्धति ही एक्यूप्रेशर हैं। यदि हम भारतीय ग्रामीण परिवेश पर एक नजर डालें तो ज्ञात होता है कि यह पद्धति यहाँ के समाज में एकदम रची –बसी है।

अभ्यंग चिकित्सा पद्धति का मूल आधार भी एक्यूप्रेशर ही है, क्योंकि जब निश्चित बिन्दुओं पर दबाव देते हुये मालिश की जाती है तो उसके अत्यन्त आश्चर्यजनक परिणाम मिलते हैं और रोगों में अत्यधिक लाभ मिलता है। एक्यूप्रेशर में इन निश्चित दाब बिन्दुओं को **''रिफलेक्स सेन्टर'' या ''रेस्पोंस सेन्टर''** कहा जाता है।

भारतीय चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार जिस समय भारतवर्ष **में बौद्ध धर्म** का अत्यधिक प्रचार–प्रसार था। उस समय यह चिकित्सा पद्धति अपने शिखर पर थी। जैसे–जैसे बौद्ध धर्म का प्रसार चीन, जापान आदि पूर्वोत्तर देशों में हुआ, वैसे–वैसे वहाँ भी इस पद्धति का प्रचार होता गया और वहाँ की संस्कृति में यह चिकित्सा रच–बस गई ।

डॉं एन्टन जयसूर्या, जो इस चिकित्सा पद्धति के प्रख्यात चिकित्सक है, उनके अनुसार भारत एवं श्रीलंका में ऐसे प्रमाण एवं शिलालेख मिले हैं, जो लगभग 2000 वर्ष से 4000 वर्ष पुराने हैं। इन शिलालेखों पर विभिन्न एक्यूपंक्चर बिन्दुओं को दर्शाया गया है, जिनसे न केवल मनुष्यों वरन युद्ध में घायल होने वाले हाथी–घोड़ों इत्यादि पशुओं की चिकित्सा के प्रमाण मिलते है।

प्रिय विद्यार्थियों, इनके अतिरिक्त भी अन्य प्रमाण मौजूद हैं, जो एक्यूप्रेशर पद्धति के भारतीय होने को प्रमाणित करते हैं। जैसे – भारतवर्ष में हाथों एवं पैरों में कुछ विशिष्ट केन्द्रों को दबाकर नाभि ठीक करने तथा बेहोशी, बुखार इत्यादि रोगों को हाथ–पैरों की मालिश द्वारा ठीक करने की पद्धति प्रचलित है। रात्रिकाल में एवं सोने के समय हाथ–पैर एवं पीठ को दबाना इत्यादि उदाहरण भी यह स्पष्ट करते हैं कि इस पद्धति का उद्भव भारत में ही हुआ। इसके प्रमाण **रामायण एवं महाभारतकाल** से पहले **आर्य सभ्यता** में भी मिलते हैं। भारतीय संस्कृति में कर्ण छेदन एवं विभिन्न प्रकार के आभूषणों को धारण करने की परम्परा का सम्बन्ध भी एक्यूप्रेशर से है। भारतीय मान्यता के अनुसार कर्ण छेदन से बौद्धिक शक्ति का विकास होता है। हाथ–पैरों में आभूषण पहनने से जननेन्द्रियाँ नियंत्रित रहती है, जिससे कामवासना को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। बाजूबन्द धारण करने से साहस एवं सुडौलता का विकास होता है तथा गले में आभूषण पहनने से **थाइराइड् ग्रन्थि** की क्रियाशीलता संतुलित एवं नियमित रहती है, जिससे हमारे शरीर का सम्पूर्ण

विकास प्रभावित होता है। भारतीय द्रविड़ एवं आर्यसभ्यता में न केवल स्त्रियों द्वारा आभूषण धारण किये जाते थे वरन उच्च कुलीन एवं धनाढ्य पुरूष वर्ग भी आभूषण धारण करते थे, जिससे कि सुन्दरता के साथ–साथ स्वास्थ्य का भी समग्र विकास हो सके। इन आभूषण धारण की परम्परा के पीछे वैज्ञानिक मान्यता है कि ये आभूषण हमारे शरीर में विद्यमान विभिन्न नाड़ियों को प्रभावित करते हैं, जिससे उर्जा का प्रवाह सुचारू रूप से होता रहता है।

जिज्ञासु पाठकगणों, इसके अतिरिक्त योगशास्त्र में जिन विभिन्न मुद्राओं का वर्णन मिलता है, उनका सम्बन्ध भी एक्यूप्रेशर के इन दाब बिन्दुओं से है, जिनके माध्यम से उर्जा प्रवाह को संतुलित एवं नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति विश्व को भारत की देन है।

चीनी मतानुसार एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का इतिहास –

पाठकों, भारतीय मत के विपरीत चीनी विद्वानों की मान्यता है कि एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के उद्‌भव का श्रेय चीन को है, क्योंकि चीन में लगभग 6000 वर्ष पूर्व इस चिकित्सा पद्धति का प्रारम्भ हो चुका था। चीन में अन्य उपचार विधियों की तुलना में एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति को सर्वाधिक मान्य चिकित्सा के रूप में अत्यन्त प्राचीनकाल से अपनाया जाता रहा है। चीन के अनेक पुरातन ग्रन्थों में इस उपचार विधि का उल्लेख मिलता है। चीनी विद्वान **डॉ0 चु0 लिएन द्वारा लिखित ''चेनं चियु सुएह''** नामक ग्रन्थ को चीन में इस पद्धति के अधिकृत प्रमाणिक ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस महान ग्रन्थ में एक्यूप्रेशर के 669 दाब बिन्दुओं का वर्णन किया गया है, व्यावहारिक रूप से 100–120 बिन्दुओं को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

धीरे–धीरे छठवीं शताब्दी में यह पद्धति बौद्ध भिक्षुओं द्वारा चीन से जापान पहुँची। पाठकों, जापान में इस पद्धति को **''शिआत्सु'' (SHIATSU)** कहा जाता है। शिआत्सु में 'शि' **(SHI)** शब्द का अर्थ है –**''अंगुली''** और आत्सु **(ATSU)** का अर्थ है –**''दबाव''** शिआत्सु में केवल हाथ के अंगूठे और अंगुलियों द्वारा दबाव देकर उपचार किया जाता है।

बीसवीं सदी तक चीन में भी एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति बहुत अधिक विकसित एवं लोकप्रिय नहीं हो पायी थी। 1970 के लगभग इस पद्धति ने चीन में पुनः प्रतिष्ठा हासिल की। कालान्तर में यह पद्धति विश्व के अनेकानेक देशों में प्रचलित होने लगी यहा तक की अमेरिका भी इससे अछूता नहीं रहा। आपकी जानकारी के लिये बता दें कि सत्तर के दशक तक अमेरिका ने एक्यूप्रेशर को वैज्ञानिक पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की थी। जब सन् 1971 में अमेरिका के तत्कालीन **राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन** चीन की यात्रा पर गये तो उनके साथ गये पत्रकारों के समूह में **जेम्स रस्टन** नाम मे एक संवाददाता भी थे। जैसे ही ये लोग चीन पहुँचे तो कुछ घंटे बाद ही जेम्स रस्टन को **अपेंडिसाइटिस** का दर्द होने लगा। समस्या और अधिक विकराल रूप धारण न करे इसके लिये ऑपरेशन किया गया, किन्तु ऑपरेशन के बाद भी दर्द होता रहा। ऐसी स्थिति में रस्टन के उपचार के लिये एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंक्चर पद्धति का प्रयोग किया गया। इस विधि द्वारा उपचार से रस्टन को कुछ मिनटों में ही आराम हो गया और उनका दर्द दूर हो गया। इससे न केवल रस्टन वरन राष्ट्रपति **रिचर्ड निक्सन** भी अत्यन्त प्रभावित हुये। इस प्रकार यह पद्धति सम्पूर्ण यूरोप में फैलने लगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के उद्भव एवं विकास में चीन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रिय पाठकों, एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के इतिहास संबधी अध्ययन से आप इतना तो समझ ही गये होंगे कि इस बात का निर्णय कर पाना अत्यन्त कठिन है कि यह ज्ञान चीन से भारत पहुँचा अथवा भारत से चीन गया अर्थात इसका उद्भव पहले भारत में हुआ अथवा चीन में, किन्तु इतना तो निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है कि इस पद्धति को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय चीनी विद्वानों को ही जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

खण्ड – ग (सत्य/असत्य)

1. अमेरिका में एक्यूप्रेशर को शिआत्सु कहा जाता है। (सत्य/असत्य)
2. एक्यूप्रेशर मालिश चिकित्सा पद्धति का परिष्कृत रूप है। (सत्य/असत्य)
3. शिआत्सु में आत्सु शब्द का अर्थ है – दबाव। (सत्य/असत्य)

1.5 सारांश

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धतियों का उद्भव एवं विकास अत्यन्त प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है और वर्तमान समय में भी यह क्रम निरन्तर जारी है। इनका इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी की मानव सभ्यता। कहा जाता है कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी होती है। अतः जैसे–जैसे विभिन्न प्रकार के रोग सामने आते गये, वैसे–वैसे उनके निदान और उपचार की विभिन्न पद्धतियाँ भी विकसित होती गयी।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1. **रेकी** – विश्वव्यापी जीवनीशक्ति रे = विश्वव्यापी/ ब्रह्माण्डीय और की = प्राण उर्जा या जीवनीशक्ति
2. **अभ्यंग** – मालिश
3. **पुरातन** – प्राचीन
4. **एक्यूप्रेशर** – निश्चित दाब बिन्दुओं पर दबाव डालकर उपचार करने की पद्धति।
5. **एक्यूपंक्चर** – निश्चित दाब बिन्दुओं पर सुई चुभोकर उपचार करने की पद्धति।
6. **शिआत्सु** – जापान में प्रचलित एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का नाम।
7. **वेद** – ज्ञान। वेद चार हैं– 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड – क (सत्य/असत्य)

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य

खण्ड – ख

(वस्तुनिष्ठ प्रश्न)

1. स 2. द 3. ब

खण्ड – ग (सत्य/असत्य)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आरोग्य अंक – गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।
2. वैकल्पिक चिकित्सा – डॉं0 आर0एस0 विवेक। डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।
3. वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ – डॉं0 राजकुमार प्रुथी। प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति– डॉं0 प्रणव पण्ड्या। शांतिकुंज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड।
2. रेकी चिकित्सा कैसे करें? – डॉं0 देवेन्द्र जैन। पौपुलर बुक डिपो, जयपुर, राजस्थान।
3. रेकी विद्या– मोहन मक्कड़। ग्रंथ अकादमी, नयी दिल्ली।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. पूरक चिकित्सा पद्धति के उद्भव पर प्रकाश डालते हुये रेकी चिकित्सा के इतिहास का वर्णन कीजिये।
2. एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के इतिहास पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 पूरक चिकित्सा की अवधारणा एवं आवश्यकता

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्‌देश्य
2.3 पूरक चिकित्सा की अवधारणा
2.4 पूरक चिकित्सा की आवश्यकता
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों इससे पूर्व की इकाई में आपने पूरक चिकित्सा के उद्‌देश्य एवं विकास का अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में पूरक चिकित्सा की अवधारणा एवं आवश्यकता पर प्रकाश डाला जायेगा।

पाठकों, आपके मन में सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि आखिर पूरक चिकित्सा कहते किसे है? इसकी मूल मान्यतायें क्या है? इसकी उपयोगिता क्या है? किन – किन विधियों के द्वारा हम इस पूरक चिकित्सा को अपना सकते हैं? इत्यादि।

इन सभी प्रश्नों के उत्तर पाने के लिये सर्वप्रथम पूरक चिकित्सा की अवधारण को समझना अत्यन्त आवश्यक है। तो आइये,चर्चा करते हैं पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा के विषय में।

2.2 उद्‌देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

1. पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. पूरक चिकित्सा की आवश्यकता का विवेचन कर सकेंगे।
3. पूरक चिकित्सा पद्धति की उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3 पूरक चिकित्सा की अवधारणा –

प्रिय विद्यार्थियों, सर्वप्रथम आपकी जानकारी के लिये यह स्पष्ट कर दें कि पूरक चिकित्सा की अवधारण का तात्पर्य यह है कि पूरक चिकित्सा का क्या अर्थ है? मूल सिद्धान्त क्या है? यह कितने प्रकार की है? इत्यादि। इन सभी का विवेचन हम यहा करेंगे। पाठकों, क्या आप जानते हैं कि पूरक चिकित्सा को दूसरे विभिन्न नामों से भी जाना जाता है। जैसे–वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति, समग्र चिकित्सा पद्धति, पारम्परिक चिकित्सा पद्धति इत्यादि। आपकी जानकारी के लिये इस तथ्य को भी स्पष्ट कर देना अति आवश्यक है कि जब किसी रोगी को आधुनिक चिकित्सा के साथ–साथ पारम्परिक चिकित्सा भी दी जाती है, तब यह पारम्परिक चिकित्सा ''**पूरक चिकित्सा**'' कहलाती है और जब रोगी को केवल पारम्परिक चिकित्सा ही दी जाती है, किसी प्रकार की आधुनिक चिकित्सा का प्रयोग नहीं

किया जाता तो इसे **''वैकल्पिक चिकित्सा''** कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पारम्परिक चिकित्सा को रोगी को किस प्रकार दिया जा रहा है, आधुनिक चिकित्सा के साथ–साथ अथवा उसके बिना, इसी आधार पर इसके दो नाम हैं– **पूरक चिकित्सा पद्धति और वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति।** इस प्रकार अब आप समझ गये होंगे कि पूरक चिकित्सा एवं वैकल्पिक चिकित्सा, इन दोनों में क्या–क्या समानतायें और विभिन्नतायें हैं।

पाठकों, अब हम चर्चा करते हैं, पूरक चिकित्सा की मूल मान्यताओं पर अर्थात यह चिकित्सा पद्धति किन सिद्धान्तों पर आधारित है।

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि **'पूरक चिकित्सा'** एक ऐसा शब्द है, जो अपने अन्दर उपचार की अनेक विधाओं को सम्मिलित करता है। कोई एक चिकित्सा पद्धति पूरक चिकित्सा पद्धति नहीं है, वरन् इसके अन्तर्गत असंख्य उपचार विधियाँ शामिल हैं, जिनमें से अनेकों के नाम भी ज्ञात नहीं है और उपचार की प्रत्येक विधि अपने आप में कुछ विशिष्ट है। इनके अपने सिद्धान्त, नियम और विधियाँ हैं। इसी कारण कुछ शब्दों में इस पूरक चिकित्सा पद्धति की एक सर्वमान्य परिभाषा देना थोड़ा कठिन प्रतीत होता है, लेकिन हाँ, आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन करके हम इसके स्वरूप को भली–भाँति समझ सकते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा से तात्पर्य एक ऐसी चिकित्सा पद्धति से है, जिसमें उपचार की असंख्य ऐसी विधियाँ शामिल हैं, जो प्राण ऊर्जा के सिद्धान्त पर कार्य करती है। इस चिकित्सा पद्धति की मूल मान्यता यह है कि ऊर्जा के असंतुलन के कारण ही कोई भी रोग उत्पन्न होता है और विकृति स्थूल या भौतिक शरीर से पहले सूक्ष्म या ऊर्जा शरीर में उत्पन्न होती है। इसके उपरान्त उसके लक्षण स्थूल शरीर में दिखाई देते है। अतः इसमें प्राणी के केवल भौतिक शरीर की ही चिकित्सा नहीं की जाती वरन् शरीर के साथ–साथ मन और आत्मा को भी स्वस्थ रखने पर बल दिया जाता है अर्थात ऐसे उपाय अपनाये जाते है, जिससे मन एकाग्र एवं शांत हो और आत्मा संतुष्ट हो। इस प्रकार स्वास्थ्य के केवल एक पक्ष (भौतिक शरीर) पर बल नहीं दिया जाता, वरन समग्र स्वास्थ्य की बात की जाती है। इसी कारण इसे **''समग्र चिकित्सा''** के नाम से भी जाना जाता है।

''वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित हो गई हैं। वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों के सौ से ज्यादा रूप हैं। इसके अन्तर्गत मानव शरीर को **शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक** पहलुओं के समग्र रूप में देखा जाता है। इसमें स्वास्थ्य के रक्षात्मक और प्रगतिशील पहलुओं पर समान रूप से प्रकाश डाला गया है।''

(डा0 राजकुमार प्रुथी : वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ)

प्रिय विद्यार्थियों नीचे पूरक चिकित्सा पद्धति की मूल मान्यताओं का विवेचन किया जा रहा है, जिससे आपको इसका स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। पूरक चिकित्सा की मूल मान्यतायें निम्नानुसार है–

1. रोगों का प्रमुख कारण ऊर्जा का असंतुलन ।
2. समग्र स्वास्थ्य पर बल
3. स्वास्थ्य के रक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल।
4. स्वतः रोग मुक्ति का सिद्धान्त
5. प्राकृतिक जीवनशैली पर बल।
6. शीघ्रतापूर्वक नहीं वरन धीरे–धीरे रोग के समूल नाश पर बल ।

इनका विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है –

1 **रोगों का प्रमुख कारण ऊर्जा का असंतुलन–** पाठकों, पूरक चिकित्सा पद्धति का मूल सिद्धान्त यह हैं कि रोगों का मूल कारण ऊर्जा का असंतुलन है। क्या आप जानते हैं कि इस सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ चाहे यह जड़ रूप में हो अथवा चेतन रूप में, वह ऊर्जा का ही एक रूप है। क्योंकि ऊर्जा ही पदार्थ में रूपान्तरित होती है और अन्ततः प्रत्येक पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है। प्राणियों के भीतर यह ऊर्जा **'प्राण'** कहलाती है। प्राणयुक्त होने पर ही जीव **'प्राणी'** कहलाता है और प्राणविहीन हो जाने पर मृत। इस प्राणऊर्जा या जीवनीशक्ति पर ही हमारा समूचा जीवन आश्रित है। इस प्राण ऊर्जा को भिन्न–भिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। रेकी चिकित्सा के विशेषज्ञ इसे 'की' कहते हैं। जब तक जीव का ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से सम्पर्क बना रहता है, वह स्वस्थ रहता है, जैसे ही यह सम्पर्क टूट जाता है अथवा इसमें अवरोध आते है, वैसे ही वह विभिन्न प्रकार की विकृतियों से ग्रसित होने लगता है। ये विकृतियाँ शरीर के स्तर पर भी हो सकती हैं, वैचारिक स्तर पर भी और भावनात्मक स्तर पर भी। कहने का आशय यह है कि ऊर्जा का असंतुलन ही रोगों को जन्म देता है। असंतुलन का आशय है कि ऊर्जा कहीं पर तो आवश्यकता से अधिक और कहीं पर आवश्यकता से कम। **संतुलन ही आरोग्य की कुंजी है।** जैसे – योग चिकित्सा में माना जाता है कि **सत, रज, एवं तम** ये तीन गुण होते हैं। इन तीनों में सतोगुण तो विकार का कारण नहीं है अर्थात सतोगुण के कारण रोग उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु रजोगुण एवं तमोगुण में असंतुलन विभिन्न रोगों को जन्म देता है। इसी प्रकार आयुर्वेद त्रिदोष **(वात–पित्त–कफ)** के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें वात, पित्त एवं कफ में असंतुलन को रोगों का प्रधान कारण माना गया है। यदि हम प्राकृतिक चिकित्सा की बात करें तो वहा भी पृथ्वी, जल, अग्नि वायु एवं आकाश इन पंचमहाभूतों को संतुलित करने पर ही बल दिया जाता है। **एक्यूपंक्चर एवं एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति** की भी मूल अवधारण यही है कि ऊर्जा प्रवाह पथ (मेरीडियन्स) में अवरोध के कारण ही बीमारियाँ जन्म लेती है अर्थात शरीर के किसी अंग में ऊर्जा अधिक हो जाती है और किसी अंग में कम। परिणामस्वरूप व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार प्राणिक हीलिंग और रेकी विशेषज्ञों के अनुसार विश्वव्यापी ऊर्जा से जीव का सम्पर्क टूटने का कारण ही विकृतियाँ जन्म लेती है।

पाठकों, इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धति का चाहे कोई भी रूप हो, इन सभी में ऊर्जा के असंतुलन को ही रोगों का प्रमुख कारण माना गया है और उपचार के द्वारा ऊर्जा को संतुलित किया जाता है, जिससे कि प्राण ऊर्जा का संचार सम्यक् रूप से होता रहे।

1. **समग्र स्वास्थ्य पर बल –** पाठकों, पूरक चिकित्सा का दूसरा सिद्धान्त यह है कि यह पद्धति समग्र स्वास्थ्य के दृष्टिकोण पर आधारित है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पद्धति के अनुसार प्राणी केवल पंचमहाभूतों से बना स्थूल शरीर मात्र नहीं है, वरन् शरीर के अतिरिक्त मन और आत्मा भी है और तीनों एक दूसरे से सम्बद्ध है। यदि शरीर स्वस्थ है, किन्तु व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से संतुष्ट नहीं है, मानसिक रूप से परेशान है तो उसे पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि मन और आत्मा उसकी शारीरिक गतिविधियों को किसी न किसी रूप में अवश्य

प्रभावित करेंगे। इसी प्रकार मानसिक रूप से प्रसन्न होने के बावजूद यदि शरीर में कोई पीड़ा है, तब भी व्यक्ति अपने कार्यो को ठीक प्रकार से पूरा नहीं कर सकेगा। कहने का आशय है कि यदि हम अपनी पूरी ऊर्जा के साथ कार्य करना चाहते हैं तो हमें शरीर के साथ–साथ मन और आत्मा को भी स्वस्थ बनाना होगा। आयुर्वेद के महान ग्रन्थ **"सुश्रुत संहिता"** में समग्र स्वास्थ्य की महत्ता का विवेचन करते हुये कहा गया है कि –

समदोषः समाग्निश्च,
समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः,
स्वस्थइत्यभिधीयते।।"
(सुश्रुत सूत्र 15:41)

अर्थात–जिस व्यक्ति के दोष, धातु एवं मल तथा अग्नि व्यापार सम हो अर्थात विकार रहित हो और जिसकी इन्द्रियाँ, मन और आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वस्थ है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि समग्र स्वास्थ्य ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये और पूरक चिकित्सा पद्धति हमें इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर करती है अर्थात इसमें स्वास्थ्य के शारीरिक पहलू के साथ–साथ **मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक** पहलू पर भी बल दिया जाता है, जिससे कि व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास हो सके।

2. **स्वास्थ्य के रक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल**– पाठकों, पूरक चिकित्सा में स्वास्थ्य के रक्षात्मक पहलू के साथ –साथ प्रगतिशील पहलू पर भी बल डाला जाता है। इसका अर्थ यह है कि इस चिकित्सा पद्धति में न केवल उत्पन्न रोग को ठीक किया जाता है, वरन् ऐसे प्रयास किये जाते है कि भविष्य में व्यक्ति पुनः रोगग्रस्त ना हो अर्थात् उसकी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के उपाय किये जाते हैं। यहाँ आपकी जानकारी के लिये यह बता देना भी आवश्यक है कि प्रतिरोधक क्षमता भी केवल शारीरिक ही नहीं होती वरन् यह मानसिक और आध्यात्मिक भी होती है।
3. **स्वतः रोग मुक्ति का सिद्धान्त**– पूरक चिकित्सा का अगला सिद्धान्त स्वतः रोग मुक्ति का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार शरीर में स्वयं में ही अपने को स्वस्थ रखने की क्षमता विद्यमान हैं। प्रकृति का यह नियम है कि यह विकृति को भीतर रहने नहीं देती। यदि विकृति शारीरिक है तो यह शारीरिक रोग के रूप में उभरती है और मानसिक है तो मानसिक रोग के रूप में। इस प्रकार शरीर रोगों के रूप में विकारों को उभारकर शरीर को स्वस्थ करता है। आप सोच रहे होंगे कि यदि शरीर स्वयं ही रोगमुक्त हो सकता है, तो विविध उपचार विधियों की क्या आवश्यकता है? इन उपचार विधियों की भी आवश्यकता है क्योंकि ये सभी विधियाँ शरीर को अपना कार्य करने में सहायता और सुविधा प्रदान करती है, जिससे रोग अपेक्षाकृत जल्दी ठीक होता है। जैसे –हड्डी टूटने पर डॉक्टर प्लास्टर बाँध देता है, लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि क्या प्लास्टर बॉधने से हड्डी जुड़ती है? नहीं। प्लास्टर तो इसलिये बाँधा जाता है कि हड्डी अपनी जगह पर बनी रहे। शरीर का वह अंग जहाँ की हड्डी टूटी है, वह हिले–डुले नहीं, जिससे की हड्डी जल्दी जुड़ सके। जोड़ने का कार्य तो शरीर स्वयं ही करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति के अनुसार शरीर स्वयं ही रोगों को ठीक करता है

और उपचार की विभिन्न विधियों द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ एवं सुविधायें उत्पन्न की जाती है, जिससे शरीर को अपना कार्य करने में सहयोग मिल सके और रोग ठीक होने की गति में वृद्धि हो सके।

4. **प्राकृतिक जीवनशैली पर बल** – पूरक चिकित्सा पद्धति प्राणी को प्राकृतिक जीवन जीने के लिये प्रेरित करती है। पाठकों, हम सभी इस तथ्य से सुपरिचित हैं कि आज इंसान जितनी भी समस्याओं से जूझ रहा है उनका मूल कारण अप्राकृतिक एवं यांत्रिक जीवनशैली है। सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक व्यक्ति एक मशीन की तरह कार्य करता रहता है। अत्यधिक धन और पद – प्रतिष्ठा की भूख ने इसको प्रकृति से दूर कर दिया है। दूसरों से प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में व्यक्ति ने अपनी मौलिकता को खो दिया है। परिणाम क्या मिला ? **तनाव, अवसाद, भावनात्मक घुटन।** अतः पाठकों, आज एक ऐसी उपचार विधि की आवश्यकता है जो पुनः व्यक्ति को प्रकृति की ओर लेकर जाये। उसे अपने जीवन के मूल लक्ष्य से अवगत कराकर प्रकृति के साथ साहचर्य निभाने के लिये प्रेरित करे। किसी कीमत पर अपनी मौलिकता को बरकरार रखने की प्रेरणा दे।

प्रिय विद्यार्थियों, क्या आपने कभी सोचा है कि पशु–पक्षी–वनस्पतियों इनको क्यों कभी किसी चिकित्सक की आवश्यकता नहीं पड़ती। हालांकि समस्यायें इनके जीवन में भी आती है, विकारग्रस्त ये भी होते हैं। इसका मूल कारण यह है कि ये प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं। प्राकृतिक जीवन जीते हैं। इसीलिये मनुष्यों की अपेक्षा कम बीमार होते हैं और यदि कभी होते भी हैं तो प्राकृतिक जीवनशैली के कारण शीघ्रतापूर्वक ठीक हो जाते हैं। पाठकों, यदि हम वास्तव में प्राकृतिक जीवन जीना चाहते हैं तो हमें सूर्य के अनुसार दिनचर्या, रात्रिचर्या को व्यवस्थित करना चाहिये। सूर्य से अधिक अच्छी घड़ी कोई नहीं हो सकती। क्या आप जानते हैं कि यदि हमारी जैविक घड़ी सूर्य के अनुसार संचालित होती है तो हम प्रायः स्वस्थ रहते हैं।

पाठकों, आपने देखा भी होगा कि बहुत सारी पूरक चिकित्सा पद्धतियों के नाम से ही ऐसे हैं जो हमें प्रकृति की ओर प्रेरित करते हैं। जैसे– सुगन्ध चिकित्सा, पुष्प चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा इत्यादि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक जीवनशैली पर आधारित है।

5. **शीघ्रतापूर्वक नहीं वरन धीरे – धीरे रोग के समूल नाश पर बल–** पाठकों, पूरक चिकित्सा की एक मान्यता यह भी है कि शीघ्रतापूर्वक कुछ समय तक ठीक होने की अपेक्षा धीरे–धीरे रोग को जड़ से ही समाप्त किया जाना चाहिये, ताकि भविष्य में वह रोग पुनः ना हो और रोग को दूर करने के साथ–साथ स्वास्थ्य संवर्द्धन पर भी बल देना चाहिये, क्योंकि ऊर्जा के संतुलन में समय लगता है। अतः आप समझ गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धति में ऊर्जा के संतुलन द्वारा धीरे–धीरे रोग का समूल नाश किया जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा को भली–भाँति समझ गये होंगे। इसके स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये आइये, अब हम चर्चा करते हैं– पूरक चिकित्सा पद्धति और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के तुलनात्मक अध्ययन के बारे में।

पूरक चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन

क्रम सं0	**पूरक चिकित्सा पद्धति**	**आधुनिक चिकित्सा पद्धति**
1	पूरक चिकित्सा पद्धति में समग्र स्वास्थ्य पर बल दिया जाता है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति में केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर बल दिया जाता है।
2.	पूरक चिकित्सा पद्धति में धीरे – धीरे रोगों के समूल नाश पर बल दिया जाता है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति में शीघ्रतापूर्वक रोगों के लक्षणों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसमें रोग को जड़ से समाप्त करने पर बल नहीं दिया जाता है।
3.	पूरक चिकित्सा पद्धति के अनुसार ऊर्जा का असंतुलन रोगों का मूल कारण है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति ऐसा नहीं मानती। इसके अनुसार शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण रोग उत्पन्न होते हैं।
4.	यह चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक जीवनशैली की ओर प्रेरित करती है।	यह भौतिक जीवनशैली की ओर लेकर जाती है।
5.	पूरक चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य के रक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल दिया जाता है।	आधुनिक चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य के रक्षात्मक पहलू पर अधिक बल दिया जाता है।

पाठको, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति में अनेक मौलिक अन्तर हैं और दोनों पद्धतियों में पूरक चिकित्सा पद्धति अधिक निरापद है अर्थात इससे लाभ की संभावना अधिक है और हानि की संभावना नगण्य है।

पूरक चिकित्सा पद्धति के उदाहरण – प्रिय पाठकों, वर्तमान समय में समूचे विश्व में असंख्य पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें किसी देश की सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता। कुछ अत्यधिक प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतियों के नाम नीचे दिय जा रहे हैं–

1. **एक्यूप्रेशर** –चीन में विगत चार हजार वर्षो से प्रचलित चिकित्सा पद्धति, जिसमें शरीर में निश्चित ऊर्जा बिन्दुओं पर जिम्मी इत्यादि विविध एक्यूप्रेशर उपकरणों द्वारा दबाव डालकर रोग का उपचार किया जाता है।
2. **एक्यूपंक्चर** – इसमें निश्चित ऊर्जा बिन्दुओं पर सुइयाँ चुभोकर उपचार किया जाता है।
3. **संगीत चिकित्सा** – संगीत के सात सुरों के द्वारा भिन्न –भिन्न रोगों का इलाज किया जाता है। रण चिकित्सा से औषधि निर्माण के लिये उसी रंग की काँच की साफ बोतल का प्रयोग किया जाता है।

4. **रेकी** – इसमें हाथों द्वारा प्राण ऊर्जा देकर रोगी का ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से सम्पर्क स्थापित किया जाता है।
5. **सुगन्ध चिकित्सा** – इसमें रोग के अनुसार भिन्न – भिन्न प्रकार की सुगन्ध का प्रयोग कर उपचार करते हैं।
6. **सूर्य किरण चिकित्सा** – इसे सूर्य चिकित्सा या रंग चिकित्सा भी कहते हैं। इसमें सूर्य किरणों के सात रंगों द्वारा औषधीय जल, तेल या दवा तैयार करके इलाज किया जाता है।
7. **चुम्बक चिकित्सा** – अलग–अलग प्रकार के चुम्बकों को शरीर पर लगाकर रोग का उपचार किया जाता है।
8. **मन्त्र चिकित्सा** – शारीरिक, मानसिक सभी प्रकार के रोगों के लिये यह चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी है। इसमें रोग के अनुसार अलग–अलग मंत्रों का जप करके उपचार किया जाता है।
9. **स्वाध्याय चिकित्सा** – इसमें सद्ग्रन्थों के आलोक में आत्म–मूल्यांकन किया जाता है अर्थात तटस्थ भाव से अपने गुण–दोष की जाँच की जाती है। इसके बाद जो कमियाँ होती है उनको दूर करने के लिये उन सद्ग्रन्थों में कही गई बातों के अनुसार अपनी भावनाओं, विचारों एवं व्यवहार में परिवर्तन का प्रयास किया जाता है।
10. **पिरामिड चिकित्सा** – यह चिकित्सा पद्धति मिस्र की देन है। इस चिकित्सा पद्धति में शरीर के जिस अंग में विकृति है, उस अंग पर पिरामिड यंत्र को रखकर चिकित्सा की जाती है। मानसिक विकारों को दूर करने में भी इस चिकित्सा का अत्यन्त प्रभावी उपयोग किया जाता है।
11. **प्रार्थना चिकित्सा** – वर्तमान समय में प्रार्थना एक चिकित्सा पद्धति के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो रही है। प्रार्थना व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार से की जा सकती है। हम स्वयं के लिये भी प्रार्थना कर सकते हैं और दूसरों के लिये भी।
12. **योग चिकित्सा** – योग चिकित्सा से आज प्रायः प्रत्येक आयु वर्ग का व्यक्ति सुपरिचित है, जिसमें विभिन्न प्रकार के **आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, मानसिक एकाग्रता के अभ्यास जैसे – त्राटक, धारणा और षटकर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक, कपालभॉति)** के माध्यम से चिकित्सा की जाती है। इन सभी के साथ–साथ योग चिकित्सा में मूल रूप से जीवनशैली को सुधारने पर बल दिया जाता है और सकारात्मक रहते हुये प्राकृतिक जीवन जीने पर बल दिया जाता है।
13. **हास्य चिकित्सा** –यह पद्धति भी वर्तमान समय में खूब प्रचलन में है। आज व्यक्ति दो पल खुलकर हँसना तो मानों भूल ही गया है। अतः इस चिकित्सा पद्धति में हँसी के विभिन्न तरीके बतलाये जाते हैं और रोगों के अनुसार हास्य चिकित्सा दी जाती है।
14. **यज्ञ चिकित्सा**– हमारे प्राचीन ऋषि–मुनि इस चिकित्सा पद्धति का अत्यधिक प्रयोग करते थे। इस पद्धति में रोगानुसार विविध मंत्रों और हवन सामग्री का प्रयोग करके रोगों का इलाज किया जाता है।
15. **प्राकृतिक चिकित्सा** –इसमें मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों के द्वारा विभिन्न विधियों से चिकित्सा की जाती है। जैसे स्नान द्वारा, पट्टी द्वारा, लेप द्वारा इत्यादि।

16. **व्यवहार चिकित्सा** – इस चिकित्सा पद्धति में समस्याग्रस्त व्यक्ति को ऐसे उपाय बताये जाते है, जिससे उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन हो सके और उसकी समायोजन क्षमता का अधिकाधिक विकास हो। इस पद्धति का प्रयोग मुख्य रूप से मनोरोगों को ठीक करने के लिये किया जाता है।
17. **नृत्य चिकित्सा** –भिन्न –भिन्न प्रकार के नृत्यों द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है।
18. **आहार चिकित्सा**– रोग एवं रोगी के अनुसार आहार के गुण एवं मात्रा में परिवर्तन करके उपचार किया जाता है।
19. **स्व–संकेत चिकित्सा**– अंग्रेजी में इसे " Auto-Suggestion therapy" कहते हैं। इस चिकित्सा पद्धति में मन में नकारात्मक विचार आने पर उसके स्थान पर स्वयं ही सकारात्मक विचार को प्रतिस्थापित किया जाता है अर्थात स्वयं के द्वारा ही स्वयं को सकारात्मक विचार के रूप में एक संकेत दिया जाता है। इसी कारण इसका नाम ''स्व संकेत चिकित्सा पद्धति'' है।

प्रिय विद्यार्थियों, इनके अतिरिक्त भी अनेकों पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, किन्तु उन सभी का विवेचन यहा संभव नहीं है।

पाठकों, पूरक चिकित्सा की अवधारणा के उपरान्त अब हम चर्चा करते है, इसकी उपयोगिता और आवश्यकता के बारे में।

2.4 पूरक चिकित्सा की आवश्यकता –

प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी जानते हैं कि वर्तमान समय में पूरक चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ा है। प्रत्येक आयु और वर्ग का व्यक्ति पूरे विश्वास के साथ इन पद्धतियों को अपना रहा है। आज विश्व का ऐसा कोई देश नहीं है, जो इनके प्रभाव से अछूता हो। अतः इनका बढ़ता प्रचलन स्वतः इनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता को सिद्ध करता है।प्रिय विद्यार्थियों, तो आइये, जानें कि इस चिकित्सा पद्धति के ऐसे क्या–क्या लाभ है , जिनके कारण इनको अपनाने की आवश्यकता सभी को महसूस हो रही है।

पूरक चिकित्सा पद्धति की उपयोगिता एवं आवश्यकता का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति
2. मितव्ययिता
3. दुष्प्रभाव नहीं
4. कार्यक्षमता में वृद्धि
5. सहज – सुलभ पद्धति
6. रोगों का समूल नाश
7. जीवनशैली में सुधार
8. सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों का संरक्षण

पाठकों, इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1. **पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति** – पाठको, वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति शरीर के साथ–साथ मन और आत्मा को भी स्वस्थ रखना चाहता है क्योंकि बहुत कुछ हद तक अब यह

उसकी समझ में और अनुभव में आ चुका है कि वह केवल शरीर तक ही सीमित नहीं है। शरीर के अतिरिक्त भी कुछ है, वरन् शरीर से अधिक और वही उसका मूल स्वरूप है। अतः अब वह पूरक चिकित्सा पद्धतियों को अपनाने की आवश्यकता अधिक महसूस करने लगा है, क्योंकि यह चिकित्सा पद्धति उसे शरीर के तल से ऊपर उठाकर मन एवं आत्मा को भी स्वस्थ रखने के लिये प्रेरित करती है और उसी में पूर्ण स्वास्थ्य के सूत्र निहित है, जबकि आधुनिक चिकित्सा पद्धति प्राणी को केवल शरीर मानकर शरीर का ही उपचार करती है और उसे शरीर के तल पर ही सीमित कर देती है। अतः आज एक ऐसी चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता सभी के द्वारा महसूस की जा रही है, जो व्यक्तित्व का समग्र विकास कर सके और वह पद्धति हमारी पारम्परिक चिकित्सा पद्धति अर्थात पूरक चिकित्सा पद्धति ही हो सकती है।

2. **मितव्ययिता –**_इस चिकित्सा पद्धति का दूसरा मुख्य गुण यह है कि इसमें आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में कम खर्चा आता है। हम सभी जानते हैं कि आज आधुनिक चिकित्सा पद्धति कितनी महंगी हो गई है। उपचार के बहुत सारे आधुनिक तरीके ऐसे है, जिनको केवल धनी वर्ग ही अपना सकता है। ऐसे में गरीब वर्ग बेचारा क्या करें? रोगग्रस्त होने पर भी धन का अभाव होने के कारण रोग को झेलना पड़ता है, जबकि पूरक चिकित्सा की अनेक विधियाँ ऐसी है, जिनको गरीब वर्ग भी आसानी से अपना सकता है और स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।
3. **दुष्प्रभाव नहीं –**_पाठकों, हम सभी जानते हैं कि एलोपैथी या आधुनिक चिकित्सा पद्धति जहाँ एक ओर रोग के लक्षणों को नियंत्रित करके कुछ समय के लिये शीघ्रता से राहत तो प्रदान करती है, किन्तु इसके साथ–साथ इनका दुष्प्रभाव भी अत्यधिक पड़ता है, जो भविष्य में अनेक नये रोगों को जन्म देता है। इस प्रकार आधुनिक चिकित्सा पद्धति एक तरफ एक रोग को नियंत्रित करती है तो दूसरी तरफ नये रोग को आमंत्रित भी करती है, जबकि पूरक चिकित्सा पद्धति में दुष्प्रभावों की संभावना नगण्य है, लेकिन इस सन्दर्भ में यह सावधानी रखनी चाहिये कि कभी–कभी होम्योपैथिक दवाइयों को अन्य दवाइयों के साथ लिये जाने पर वे अपना दुष्प्रभाव डालती है। इसलिये किसी भी प्रकार की दवाइयों का सेवन चिकित्सक से पूछकर ही करना चाहिये। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक चिकित्सा पद्धतियों के प्रायः कोई दुष्प्रभाव नहीं हैं, फिर भी उपचार की प्रत्येक पद्धति की अपनी कुछ सीमायें हैं, जिनका चिकित्सा के दौरान ध्यान रखना अत्यावश्यक है।
4. **कार्यक्षमता में वृद्धि –**_ प्रिय पाठकों, पूरक चिकित्सा पद्धतियों के विषय में किये गये अनेक शोध अध्ययनों से यह परिणाम निकलकर सामने आये हैं कि इन चिकित्सा पद्धतियों से रोग दूर होने के साथ –साथ लोगों की कार्यकुशलता में भी वृद्धि होती है। इन चिकित्सा पद्धतियों को अपनाने पर व्यक्ति अपने भीतर पहले से भी अधिक ऊर्जा का अनुभव करता है और अधिक उत्साह और उमंग के साथ अपने दिनभर के कार्यो को सम्पन्न करता है तथा कम तनावग्रस्त रहता है। दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन के कारण मानसिक रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।
5. **सहज–सुलभ पद्धति–** पूरक चिकित्सा पद्धति सहज– सुलभ है। कृछ उपचार विधियों को छोड़कर बहुत सारी विधियों का प्रयोग हम घर पर भी कर सकते हैं। इसके साथ ही इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण प्रत्येक आयु एवं वर्ग के व्यक्ति के लिये विभिन्न रोगों के अनुसार अनेक उपचार पद्धतियाँ है।

6. **रोगों का समूल नाश**–_ विद्यार्थियों, पूरक चिकित्सा पद्धति की एक खास बात यह है कि इसमें रोग को जड़ से ही समाप्त कर दिया जाता है, जिसके कारण व्यक्ति को हमेशा के लिये उस रोग से राहत मिल जाती है और उसे बार–बार चिकित्सकों के चक्कर नहीं काटने पड़ते।

7. **जीवनशैली में सुधार**–_पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं कि पूरक चिकित्सा में रोग को जड़ से समाप्त करने पर बल दिया जाता है और हम इस तथ्य से भी अवगत है कि अधिकतर बीमारियों का मूल कारण हमारे आहार –विहार, हमारी दिनचर्या–रात्रिचर्या का व्यवस्थित न होना है। अतः पूरक चिकित्सा पद्धति में रोगों को समूल नष्ट करने के लिये रोगों के मूल कारण पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और ऐसे छोटे –छोटे तरीके, आसानी से अपनाये जा सकने वाले उपाय बताये और सिखाये जाते हैं, जिससे व्यक्ति की जीवनशैली में सकारात्मक परिवर्तन होते है। उसकी बुरी आदतों का स्थान अच्छी आदतें ले लेती है, जिससे व्यक्ति स्वयं को भीतर से प्रसन्न महसूस करता है।

8. **सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों का संरक्षण**–_ प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी इस बात से परिचित हैं कि पूरक चिकित्सा पद्धति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह हमारी वैदिक संस्कृति की देन है। हमारे ऋषि–मुनियों द्वारा प्राचीनकाल से इनके वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते रहे है। यह हमारी अज्ञानता है कि आज इन पद्धतियों को वैज्ञानिक साक्ष्यों के साथ हम पूरी तरह प्रमाणित नहीं कर पा रहे हैं, हालांकि इस क्षेत्र में अनुसंधान निरन्तर जारी है और अनेक पूरक चिकित्सा पद्धतियों की वैज्ञानिकता भी प्रमाणित हो चुकी है, जिसके कारण भी इनका प्रचलन बढ़ा है। कहने का उद्‌देश्य यह है कि इस पूरक चिकित्सा का सबंध हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं और मूल्यों के साथ अत्यधिक गहरा है। अतः इनको अपनाकर एक प्रकार से हम अपनी सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा करते हैं। एक सर्वेक्षण में भी यह तथ्य सामने आया है कि बहुत सारे लोग अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों में आस्था और विश्वास के कारण इस चिकित्सा पद्धति को अपनाते है।

इस प्रकार प्रिय विद्यार्थियों, आप समझ गये होंगे कि आज के इस यांत्रिक युग में पूरक चिकित्सा की इतनी अधिक आवश्यकता क्यों महसूस की जा रही है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

सत्य / असत्य

1. पूरक चिकित्सा को वैकल्पिक चिकित्सा भी कहते हैं। (सत्य/असत्य)
2. आधुनिक चिकित्सा केवल रोग के लक्षणों का उपचार करती है। (सत्य/असत्य)
3. पूरक चिकित्सा में रोग के सुरक्षात्मक एवं प्रगतिशील दोनों पहलुओं पर समान रूप से बल दिया जाता है। (सत्य/असत्य)
4. सुगन्ध चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा पद्धति है। (सत्य/असत्य)
5. एक्यूप्रेशर में ऊर्जा बिन्दुओं पर सुई चुभोकर उपचार किया जाता है। (सत्य/असत्य)
6. पिरामिड चिकित्सा, भारत की देन है। (सत्य/असत्य)

2.5 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धति अपने आप में कोई एक पद्धति नहीं है, वरन इसमें वे सभी उपचार विधियाँ आती है, जो प्राणिक ऊर्जा के सिद्धान्त पर आधारित है और जिनका उद्‌देश्य प्राणी को समग्र रूप से स्वस्थ

करना है। वर्तमान समय में एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के दुष्प्रभावों तथा असफलता ने लोगों को इन पूरक चिकित्सा पद्धतियों की ओर प्रेरित किया है। इसके साथ ही आज सभी लोग एकमत से शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य की महत्ता को भी अनुभव करने लगे हैं और पूरक चिकित्सा की विधियाँ ही उसे इस लक्ष्य तक पहुँचाती हैं। अतः वर्तमान समय में पूरक चिकित्सा की आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है।

2.6 शब्दावली –

समग्र स्वास्थ्य –पूर्ण स्वास्थ्य अर्थात शारीरिक , मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक प्रत्येक दृष्टि से स्वस्थ होना।

मृत – मरा हुआ।

विकृतियाँ – बिमारियाँ अथवा रोग।

सम्यक्– ठीक – ठीक, संतुलित, न कम, न ज्यादा ।

त्रिदोष – वात–पित्त–कफ।

मल – आयुर्वेद के अनुसार तीन मल बताये गये हैं – स्वेद, मूत्र, एवं पुरीष।

धातु – रस रक्त माँस मेद अस्थि मज्जा शुक्र

त्रिगुण – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण

मेरीडियन्स – एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंक्चर के अनुसार ऊर्जा प्रवाह पथ को मेरीडियन कहते हैं। इनमें प्राण का प्रवाह होता है। हमारे शरीर में अनेक मरीडियन्स हैं।

रेकी – यह भी एक पूरक चिकित्सा पद्धति है। रेकी का शाब्दिक अर्थ है– ब्रह्माण्डीय ऊर्जा या विश्वव्यापी जीवनी शक्ति।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(सत्य / असत्य)

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. असत्य
6. असत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेष।
2. आध्यात्मिक चिकित्सा : एक समग्र उपचार पद्धति– डॉ0 प्रणव पण्ड्या, षांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री –

1. वैकल्पिक चिकित्सा – डॉ0 आर0एस0 विवेक। डायमंड बुक्स नई दिल्ली।
2. वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ– राजकुमार प्रुथी। प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न – 1 – पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न – 2– वर्तमान समय में पूरक चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये।

इकाई –3 विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ तथा उनकी सीमायें।

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्‌देश्य
3.3 विभिन्न पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ
3.3.1 सूर्य चिकित्सा या रंग चिकित्सा अथवा सूर्य किरण चिकित्सा
3.3.2 स्वाध्याय चिकित्सा
3.3.3 पिरामिड चिकित्सा
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में आपने पूरक चिकित्सा पद्धति की अवधारणा का अध्ययन किया है, अर्थात पूरक चिकित्सा पद्धति क्या है? इसके उद्‌देश्य क्या है? इन सभी तथ्यों से आप परिचित हो चुके हैं। अतः आप इतना तो समझ ही गये होंगे कि इस पूरक चिकित्सा पद्धति का क्षेत्र कितना विस्तृत है। पूरक चिकित्सा पद्धति अपने आप में कोई एक चिकित्सा पद्धति नहीं है, वरन् इसके अन्तर्गत अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ समाहित है। अतः प्रस्तुत इकाई में हम विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियों का अध्ययन करेंगें।

प्रत्येक चिकित्सा पद्धति की अपनी एक मौलिक अवधारणा होती है और उसी के आधार पर यह चिकित्सा दी जाती है। तो आइये, अध्ययन करते है, इन विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के बारे में।

3.2 उद्‌देश्य –

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

1 पूरक चिकित्सा पद्धति के क्षेत्र को स्पष्ट कर सकेंगे।
2 सूर्य किरण चिकित्सा पद्धति की अवधारणा का वर्णन कर सकेंगे।
3 स्वाध्याय चिकित्सा पद्धति का विवेचन कर सकेंगे।
4 पिरामिड चिकित्सा को स्पष्ट कर सकेंगे।
5 विभिन्न प्रकार की पूरक चिकित्सा पद्धतियों के लाभ एवं सीमाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 विभिन्न पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ –

प्रिय विद्यार्थियों, जब भी कोई प्राणी रोगग्रस्त होता है, तो उसे उपचार की आवश्यकता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विश्वास और पसन्द के अनुसार चिकित्सा पद्धति को अपनाता है। वर्तमान समय में उपचार की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं और एक ही रोग

को भिन्न – भिन्न चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से ठीक किया जा सकता है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि रोग का समूल नाश हो। एक बार होने के बाद वह रोग पुनः प्रकट ना हो और जिस भी उपचार विधि को अपनाया जाये उसका स्वास्थ्य पर कोई दुष्प्रभाव ना पड़े। यही कारण है कि आज उपचार विधि को अपनाने के विषय में लोग सजग और सावधान हो गये है और स्वास्थ्य के प्रति उनका दृष्टिकोण भी व्यापक हुआ है। अब लोग स्वयं को केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं वरन मानसिक रूप से भी स्वस्थ रखने की आवश्यकता महसूस करने लगे है और यह कहा जाये कि शरीर की तुलना में मन को अधिक महत्व दे रहे हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी कारण आज पूरक चिकित्सा पद्धतियों को अपनाने पर लोग इतना जोर दे रहे हैं, क्योंकि ये चिकित्सा पद्धतियाँ समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा पर आधारित है। इनकों विधिपूर्वक अपनाने से हमारा शरीर, मन और आत्मा सभी स्वस्थ होते हैं।

पाठकों, इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इन पूरक चिकित्सा पद्धतियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अतः एक इकाई में इन सभी पद्धतियों का अध्ययन संभव नहीं है। इसलिये प्रस्तुत इकाई में कुछ महत्वपूर्ण पूरक चिकित्सा पद्धतियों का विवेचन किया जा रहा है, जिनकों नियमित और सावधानीपूर्वक अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकता है।

तो आइये, सर्वप्रथम हम चर्चा करते हैं सूर्य चिकित्सा अथवा रंग चिकित्सा के विषय में।

3.3.1 सूर्य चिकित्सा या रंग चिकित्सा अथवा सूर्य किरण चिकित्सा –

प्रिय विद्यार्थियों, हम सभी जानते हैं कि हमारे जीवन में सूर्य का अत्यन्त महत्व है। इसकी महत्ता का विवेचन करते हुये वेदों में सूर्य को चराचर जगत की आत्मा कहा गया है–

''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषष्च'' (ऋग्वेद1/115/1, यजुर्वेद 7/42,अथर्ववेद 13/2/35)

इस प्रकार ऋग्वेद, यजर्वेद एवं अथर्ववेद तीनों में सूर्य की महिमा का गुणगान किया गया है

प्रश्नोपनिषद के अनुसार– ''प्राण प्रजानाम्''

अर्थात ''सूर्य मनुष्य का प्राण है।''

आरोग्यता की दृष्टि से सूर्य की महत्ता का विवेचन **मत्स्य पुराण** में भी मिलता है –

''आरोग्यं भास्करादिच्छेत्''

अर्थात ''यदि निरोगता की इच्छा है तो सूर्य की शरण में जाओ।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण के साथ–साथ समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से भी सूर्य की महिमा का गुणगान प्राचीनकाल से ही किया जा रहा है। इसीलिये भारतीय ऋषि मुनियों द्वारा सूर्य नमस्कार, सूर्योपासना इत्यादि की विधि प्रचलित की गई।

पाठकों, क्या आप जानते हैं कि उगते हुये सूर्य का स्वास्थ्य की दृष्टि से कितना महत्व है। इस सन्दर्भ में **अथर्ववेद** में कहा गया है कि –

'' उद्यनसूर्यो नुदतां मृत्युपाषान्''। (अथर्ववेद 17/1/30)

अर्थात''उदित होता हुआ सूर्य मृत्यु के सभी कारणों अर्थात सभी रोगों को नष्ट करता है।''

जिज्ञासु पाठकों, क्या आप जानते हैं कि उगते हुये सूर्य से कौन से रंग की किरणें निकलती हैं? उदीयमान सूर्य से हल्के **लाल रंग की किरणें** (Infrared) निकलती हैं। इन अवरक्त या लाल किरणों में जीवनीशक्ति होती है, जो रोगों को नष्ट करती है। इसी कारण

उगते हुये सूर्य के दर्शन करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है। इसी का विवेचन करते हुये **ऋग्वेद** में कहा गया है कि –

"उगता हुआ सूर्य हृदय के सभी रोगों को, पीलिया और रक्ताल्पता को दूर करता है।"

इसी बात की पुष्टि **अथर्ववेद** में भी की गयी है–

"सूर्य की अवरक्त किरणें हृदय की बीमारियों को तथा खून की कमी को दूर करती है।"

इसीलिये सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना एवं हवन करने की विधि का प्रचलन है क्योंकि ऐसा करने पर उगते सूर्य की हल्की लाल किरणें सीधे वक्षस्थल पर गिरती है, जिसके कारण व्यक्ति हमेशा रोग मुक्त रहता है।

सूर्य चिकित्सा के लिये रोगी को उदित होते हुये सूर्य के सामने खड़े होकर या बैठकर सूर्य की किरणों को सीधे शरीर पर पड़ने देना चाहिये. ऋतु के अनुसार शरीर को खुला रखा जा सकता है अथवा हल्के कपड़े पहने जा सकते हैं, जिससे की सम्पूर्ण शरीर पर किरणों का प्रभाव पड़ सके। कम से कम 15 मिनट तक धूप स्नान लेना चाहिये, किन्तु रोग या रोगी की आवश्यकतानुसार यह अवधि आधे घंटे तक बढ़ायी जा सकती हे। इस सन्दर्भ में यह सावधानी रखनी चाहिये कि उगत हुये सूर्य की किरणों का ही सेवन करना चाहिये, क्योंकि इसके बाद सूर्य की किरणें अत्यधिक तेज हो जाती हैं। अतः उनका विशेष लाभ नहीं होता है। अतः सूर्योदय के समय की किरणों का ही विशिष्ट महत्व माना गया है, जो अन्य किसी समय में संभव नहीं है। ऋग्वेद में कहा गया है कि –

" सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः।" (ऋग्वेद 10/36/14)

अर्थात – "सूर्य मनुष्य को निरोगता, दीर्घायुस्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं।"

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि सूर्य का हमारे जीवन में कितना महत्व है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक प्रत्येक दृष्टिकोण से सूर्य की महिमा अद्वितीय है।

सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा –

सूर्य चिकित्सा को **सूर्य किरण चिकित्सा** तथा **रंग चिकित्सा** के नाम से भी जाना जाता है। इस चिकित्सा पद्धति में सूर्य की किरणों को सीधे शरीर पर लेकर रोग निवारण किया जाता है अथवा सूर्य की किरणों से प्रभावित जल, ग्लिसरीन, तेल, घी अथवा चीनी का विभिन्न रोगों के अनुसार प्रयोग किया जाता है।

सूर्य की सात रंग की किरणें –

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप जानते हैं कि सूर्य की किरणें सात रंग की है। वैदिक साहित्य जैसे कि ऋग्वेद, अथर्ववेद में सूर्य की सात किरणों का उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्च आदि शब्दों से किया गया है।

पाठकों, क्या आप जानते हैं कि सूर्य की ये सप्तकिरणें वैज्ञानिक दृष्टि से कितनी महत्वपूर्ण है। प्रत्येक किरण की गति एवं प्रकृति भिन्न – भिन्न होने के कारण इसके प्रभाव भी अलग–अलग है। सात रंगों के मिलने से सफेद रंग बनता है। संसार के प्रत्येक पदार्थ को रूप और रंग इन सात रंगों की किरणों से ही प्राप्त होता है। रंगो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है– उच्च, मध्यम और निम्न अर्थात गहरा, मध्यम और हल्का। इस प्रकार 7x3=21 प्रकार की किरणें बनती है। इन किरणों का उल्लेख करते हुये **अथर्ववेद** में कहा गया है –

"ये त्रिषप्ताः परियन्ति विष्वा रूपाणिविभ्रतः।।" (अथर्ववेद 1/1/1)

अर्थात'' ये 21 प्रकार की किरणें संसार में सर्वत्र फैली हुयी हैं और ये ही सारे रूप रंगों को धारण करती हैं। ''

सप्त किरणों के नाम और प्रभाव –

सूर्य की सात किरणें अपनी प्रकृति के अनुसार अलग–अलग प्रभाव डालती है। इन किरणों की तरंग–दैर्ध्य (wave length) और आवृत्ति (Frequency) अलग–अलग होती है। इन सात किरणों को हिन्दी में **बै नी आ ह पी ना ला** नाम दिया गया है तथा अंग्रेजी में VIBGYOR कहा जाता है।

पाठकों निम्न सारणी से आप इनका अर्थ भली – भॉति समझ सकते है–

नाम	संकेत	नम	संकेत	प्रभाव
Violet	**V**	बैंगनी	बै	**शीतल, लाल कणों का वर्धक, क्षय रोग का नाशक**
Indigo	**I**	नीला	नी	**शीतल, पित्तज रोगों का नाशक, पौष्टिक**
Blue	**B**	आसमानी	आ	**शीतल, पित्तज रोगों का नाशक, ज्वरनाशक**
Green	**G**	हरा	ह	**समशीतोष्ण, वातक रोगों का नाशक, रक्तशोधक**
Yellow	**Y**	पीला	पी	**ऊष्ण कफज रोगों का नाशक, हृदय एवं उदर रोग नाशक**
Orange	**O**	नारंगी	ना	**ऊष्ण, कफज रोगों का नाशक, मानसिक षक्तिवर्धक**
Red	**R**	लाल	ला	**अतिऊष्ण कफज रोगों का नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश के लिये।**

प्रिय पाठको, यहॉ आपको एक बात जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि उपरोक्त सारणी में गति और प्रकृति के आधार पर नीचे से ऊपर वाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली है। जैसे – लाल से अधिक नारंगी, नारंगी से अधिक पीली, पीली से अधिक हरी, हरी से अधिक आसमानी, आसमानी से अधिक नीली और सबसे अधिक प्रभावशाली किरण बैंगनी है। प्रिय विद्यार्थियों, क्या आप जानते हैं कि बैंगनी से अधिक शक्तिशाली किरणों को **पराबैंगनी किरणें** (Ultraviolet) और लाल रंग की किरणों से कम प्रभावशाली किरणों को अवरक्त किरणें कहते हैं।

वस्तुतः यदि देखा जाये तो मूल रूप से रंग **तीन** ही प्रकार के हैं– **लाल, पीला और नीला**। इन तीन रंगों के मिश्रण से ही अन्य रंग बनते है। जैसे– लाल और नीले के मिलने से बैंगनी, नीले और सफेद रंग के मिलने से आसमानी, नीले और पीले से हरा और लाल और पीले रंग के मिलने से नारंगी रंग बनता है।

विद्यार्थियों, सूर्य की सात रंग की किरणों को निम्न तीन समूहों या परिवारों में विभक्त किया गया है –

1. पीला, नारंगी, लाल
2. हरा तथा
3. बैंगनी, नीला और आसमानी

औषधि निर्माण विधि –

पाठकों सूर्य किरण चिकित्सा से औषधि निर्माण के लिये उसी रंग की काँच की साफ बोतल का प्रयोग किया जाता है। यदि विभिन्न रंगों की बोतल उपलब्ध न हो तो उस रंग का पतला कागज सादी शीशी पर पूरा चिपका देते हैं। औषधि निर्माण के लिये सात शीशी लेने के स्थान पर प्रत्येक समूह या परिवार से एक–एक रंग भी लिया जा सकता है। जैसे – पीला, नारंगी और लाल परिवार से एक रंग की शीशी, एक शीशी हरे रंग की तथा बैगनी, नीला और आसमानी परिवार से एक रंग की शीशी।

इस प्रकार तीन रंग की बोतलों से विभिन्न रोगों के लिये औषधि का निर्माण किया जा सकता है। ये तीन रंग है– 1. नारंगी 2. हरा 3. नीला।

पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि ये तीनों रंग वात–पित्त–कफ के हिसाब से अलग–अलग रोगों के लिये हैं। **इनमें से नारंगी रंग कफ जन्य रोगों के लिये, हरा रंग वातजन्य रोगों के लिये और नीला रंग पित्तज रोगों में लाभदायक है।** विद्यार्थियों इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि सूर्य किरण चिकित्सा द्वारा त्रिदोषज रोगों की चिकित्सा आसानी से की जा सकती है।

अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि विभिन्न रंग की बोतलों द्वारा औषधीय जल का निर्माण कैसे किया जाता है ?

सर्वप्रथम बोतलों को अच्छी साफ करके इनमें शुद्ध जल भरा जाता है। बोतलों को पूरा न भरकर इन्हें कम से कम तीन अंगुल खाली रखा जाता है। इसके बाद इन्हें ढक्कन लगाकर बन्द कर देते है। तत्पश्चात इन्हें 6–8 घंटे तक धूप में रखने पर औषधीय जल तैयार हो जाता हे। बोतलों को धूप में रखने पर यह सावधानी रखनी चाहिये कि एक बोतल की छाया दूसरे रंग की बोतल पर न पड़े तथा रात्रि में बोतल को अन्दर रखना चाहिये। इस प्रकार तैयार जल को एक दिन में 3–4 बार पिलाया जाता है। एक बार तैयार किये गये जल को चार –पाँच दिन तक उपयोग में लाया जा सकता है। 4–5 दिन बाद पुनः दवा तैयार करनी चाहिये। इस विभिन्न रंगों के औषधीय जल को लेने में भी सावधानी बरतनी चाहिये। साधारणतया नारंगी रंग का जल भोजन के बाद 15–30 मिनट के भीतर लेना चाहिये।

हरे और नीले रंग का जल खाली पेट अथवा भोजन से एक घंटे पहले लेना चाहिये।

दवा की मात्रा –

प्रिय पाठकों, सूर्य किरण चिकित्सा से तैयार दवा को दो दिन में तीन से चार बार लेना चाहिये। विशेष परिस्थिति जैसे कि तीव्र ज्वर आदि में आवश्यकतानुसार एक – एक घंटे पर भी दवा ली जा सकती है। दवा का प्रयोग आयु के अनुसार चाय वाली चम्मच से एक बार में एक से चार चम्मच तक किया जा सकता है।

सूर्य किरण चिकित्सा के विभिन्न प्रयोग अथवा लाभ

अथवा

(विभिन्न रंगों की बोतलों के पानी का उपयोग)

पाठकों, यह तो बिल्कुल स्पष्ट हो ही चुका है कि रंग चिकित्सा कितनी प्रभावशाली है। अब हम चर्चा करते हैं कि इन भिन्न–भिन्न रंग की बोतलों का प्रयोग किन–किन रोगों में और किस प्रकार किया जाता है।

1 **लाल रंग (Red Color)-** प्रिय पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि लाल रंग की बोतल का पानी अत्यन्त ऊष्ण होता है। इसलिये इसका प्रयोग अत्यन्त

सावधानी के साथ करना चाहिये। इस रंग के पानी को पीना वर्जित है, क्योंकि इस पानी के सेवन से उल्टी या खूनी दस्त भी हो सकते हैं। अतः इस रंग के पानी का उपयोग मालिश करने अथवा शरीर के बाहरी भाग में लगाने के लिये किया जाता है।

लाभ – लाल रंग का पानी सभी प्रकार के कफ रोगों एवं वात रोगों में लाभकारी है। यह रक्त एवं स्नायु को उत्तेजित करने का कार्य करता है।

2 **नारंगी रंग (Orange Color)-** बुद्धि और साहस को विकसित करने में नारंगी रंग का पानी विशिष्ट रूप से लाभकारी है। यह मांसपेशियों को स्वस्थ रखने के साथ–साथ रक्त संचार की वृद्धि करता है। यह इच्छाशक्ति और मानसिक शक्ति में भी वृद्धि करता है।

लाभ – नारंगी रंग का पानी कफजन्य रागों जैसे कि खाँसी इत्यादि तथा उसके साथ–साथ अन्य रोगों जैसे कि बुखार, निमोनिया, क्षयरोग, पेट में गैस बनना, हृदय रोग, गठिया, लकवा, अजीर्ण, एनीमिया, रक्त में लाल रक्त कणिकाओं की कमी इत्यादि में अत्यन्त लाभदायक है। स्तनों में दूध की वृद्धि करने में भी यह रंग अत्यन्त लाभकारी है।

3 **पीला रंग (Yellow Color)-** यह रंग शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी अत्यन्त लाभकारी है। यह हल्का रेचक होने के कारण पाचन संस्थान के लिये उत्तम है। ऊष्ण प्रकृति का होने के कारण पेचिश इत्यादि रोगों में इसे नहीं लेना चाहिये।

लाभ – यह पेट दर्द, कब्ज, कृमिरोग, मेदरोग, पेट फूलना, हृदय रोग, यकृत एवं फेफड़ों के रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है। इस रंग के पानी के सेवन से युवा पुरूषों को तत्काल लाभ होता है। इस रंग के पानी का प्रयोग भी थोड़ी मात्रा में ही करना चाहिये।

4 **हरा रंग (Green Color)-** इस रंग की प्रकृति समशीतोष्ण है। यह शारीरिक एवं मानसिक प्रसन्नता प्रदान करता हैं यह शरीर की माँसपेशियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और उन्हें शक्ति प्रदान करता है। हरा रंग रक्त शोधक होने के साथ–साथ तंत्रिका तंत्र को मजबूती प्रदान करता है।

लाभ – हरे रंग का पानी सिरदर्द, रक्तचाप, कैंसर, बवासीर, मधुमेह, सूखी खाँसी, जुकाम सभी प्रकार के चर्म रोग, जिगर एवं किडनी में सूजन, टाइफाइड, मलेरिया आदि बुखार, फुन्सी, दाद इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है।

5 **आसमानी रंग (Blue Color)-** इस रंग की प्रकृति शीतल है। अतः पितजन्य रोगों को दूर करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। यह आमाशयिक उत्तेजना एवं प्यास का भी शमन करता है। आसमानी रंग का पानी एन्टीसेप्टिक का काम करता है। इसके साथ ही यह अच्छा पोषक टॉनिक होता है।

लाभ –खाँसी, दस्त, अस्थमा, सिरदर्द, मूत्ररोग, पथरी, चर्मरोग, नासूर, फोड़े–फुन्सी, सभी प्रकार के ज्वर तथा रक्त प्रवाह को रोकने में इस रंग के पानी का प्रयोग किया जाता है। कफजन्य रोगों में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है।

6 **नीला, गहरा नीला रंग (Indigo Color)-** इस रंग की प्रकृति भी शीतल है। यह शान्ति और जीवनीशक्ति प्रदान करता है। इस रंग के पानी कि क्रिया शरीर पर अतिशीघ्र होती है।

लाभ – यह पित्तजन्य रोगों में विशिष्ट लाभदायक है। आमाशय, अण्डकोश वृद्धि, श्वेत प्रदर तथा योनि से संबधित रोगों में विशेष उपयोगी है।

7 **बैंगनी रंग (Violet Color)-** इस रंग की पृकृति भी नीले रंग के समान शीतल है।

लाभ – रक्त कणों की वृद्धि करने में, खून की कमी को दूर करने में, अनिद्रा में एवं क्षय रोग में विशेष उपयोगी है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि समग्र स्वास्थ्य के लिये सूर्य किरण चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। अतः इस जगत की आत्मा होने के कारण आरोग्यता हेतु भगवान सविता की शरण में जाना अत्यन्त श्रेष्ठ है।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड – क)

सत्य / असत्य

1 लाल रंग की बोतल के पानी को पीना वर्जित है। (सत्य/असत्य)

2 हरे रंग की प्रकृति समशीतोष्ण है। (सत्य/असत्य)

3 कफज रोगों में आसमानी रंग का प्रयोग किया जाता है। (सत्य/असत्य)

4 पाचन संस्थान के रागों के लिये पीले रंग की बोतल का पानी उत्तम है। (सत्य/असत्य)

5 नारंगी रंग इच्छा शक्ति में वृद्धि करता है। (सत्य/असत्य)

सूर्य किरण चिकित्सा की सीमायें –

प्रिय पाठकों, प्रायः प्रत्येक चिकित्सा पद्धति की कुछ सीमायें होती हैं, जिनकों ध्यान में रखना अतिआवश्यक है। सूर्य चिकित्सा का प्रयोग करते समय निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिये–

1. लाल रंग की बोतल के पानी को पीना नहीं चाहिये। रोग निवारण के लिये इसका प्रयोग शरीर के बाहरी भाग में करना चाहिये।
2. कफज रोगों में आसमानी रंग का प्रयोग करना चाहिये।
3. पीले रंग की बोतल के पानी का प्रयोग पेचिश रोग में नहीं करना चाहिये।
4. पीले रंग की बोतल के पानी का प्रयोग थोड़ी मात्रा में ही करना चाहिये।
5. सूर्य किरणों से औषधीय जल तैयार करने के लिये बोतलों को अच्छी तरह साफ करना चाहिये।
6. बोतलों को धूप में इस प्रकार रखना चाहिये, जिससे कि एक बोतल की छाया दूसरे रंग की बोतल पर ना पड़े।
7. बोतलों को पानी से पूरा न भरकर कम से कम तीन अंगुल खाली रखना चाहिये।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यदि कुछ सावधानियाँ रखी जाये तो यह चिकित्सा पद्धति अत्यन्त प्रभावशाली है।

प्रिय पाठकों, सूर्य चिकित्सा के बाद अब हम अध्ययन करेंगे अत्यन्त प्रभावशाली स्वाध्याय चिकित्सा के बारे में।

3.3.2 स्वाध्याय चिकित्सा –

प्रिय पाठकों, स्वाध्याय शब्द से हम प्रायः सभी परिचित हैं, किन्तु इसके ठीक–ठीक अर्थ को जानना अति आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ मात्र पुस्तकों का अध्ययन करना नहीं है, वरन इससे कहीं अधिक बढ़कर है।

तो आइये जानते हैं कि स्वाध्याय शब्द से क्या आशय है और किस प्रकार से इसके द्वारा हम अपने तथा दूसरों के जीवन को सँवार सकते है।

जिज्ञासु विद्यार्थियों, स्वाध्याय चिकित्सा का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

- ❖ स्वाध्याय चिकित्सा की अवधारणा।
- ❖ स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया।
- ❖ स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता।
- ❖ **स्वाध्याय चिकित्सा की अवधारणा –**

  प्रिय पाठकों, कुछ लोग स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकों का अध्ययन मात्र करना समझते हैं, किन्तु इस प्रकार के अध्ययन को हम स्वाध्याय की संज्ञा नहीं दे सकते। स्वाध्याय की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। कुछ भी पढ़ लेने का नाम स्वाध्याय नहीं है, वरन् स्वाध्याय की सामग्री केवल वही ग्रन्थ, पुस्तक का विचार हो सकता है, जो किसी अध्यात्मवेदता तपस्वी द्वारा सृजित हो। जैसे कि वेद, उपनिषद, गीता अथवा महान तपस्वी एवं योगी स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण इत्यादि महापुरूषों के विचारों को स्वाध्याय की पाठ्य सामग्री बनाया जा सकता है।

  प्रायः स्वाध्याय से तात्पर्य **Self Study** से लिया जाता है, किन्तु यह **Self Study** न होकर **Study of Self** है अर्थात सद्ग्रन्थों के प्रकाश में स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया है। कहा भी गया है कि –

  ''स्वाध्याय सद्ग्रन्थों के प्रकाश में आत्मानुसंधान की प्रक्रिया है।''
  (अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2)

इस प्रकार स्वाध्याय हमारे विचार तंत्र या सोचने विचारने के ढंग को सकारात्मक बनाने की अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके सतत अभ्यास द्वारा व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर स्वयं के भीतर विधेयात्मक एवं आशावदी दृष्टिकोण का विकास कर सकता है। स्वाध्याय के सन्दर्भ में एक बात जो अत्यधिक महत्तवपूर्ण है, वह यह कि स्वाध्याय की प्रक्रिया अच्छे विचारों के केवल अध्ययन से ही पूरी नहीं हो जाती, वरन् जब तक इन विचारों को व्यावहारिक रूप से आचरण में नहीं लिया जाता, तब तक यह प्रक्रिया अधूरी ही रहती है और इसके अपेक्षित परिणाम नहीं आ पाते है।

पाठकों, इस प्रकार आप समझ गये होगें कि स्वाध्याय सकारात्मक विचारों के माध्यम से मन को स्वस्थ करने की प्रक्रिया है।

आपके मन में इस संबध में सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि एक सामान्य अध्ययन एवं स्वाध्याय में क्या मौलिक अन्तर होता है?

तो आइये, अपकी इसी जिज्ञासा के समाधान के लिये अब हम चर्चा करते है, सामान्य अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर के बारे में।

अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर –

विद्यार्थियों, अध्ययन एवं स्वाध्याय में मूलभूत अन्तर यह है कि अध्ययन केवल हमारी बुद्धि का विकास करता है, इसके माध्यम से हमारे भीतर तर्क –वितर्क एवं बौद्धिक विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होता है, तथा हमें विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है, किन्तु अध्ययन के द्वारा व्यक्ति के अन्दर किसी प्रकार का सकारात्मक परिवर्तन हो, यह अनिवार्य एवं आवश्यक नहीं है, जबकि स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति में सकारात्मक परिवर्तन अपेक्षित है, अनिवार्य है, अन्यथा स्वाध्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा, यह अधूरा ही रह जायेगा।

स्वाध्याय की प्रक्रिया में व्यक्ति सद्ग्रन्थों के आलोक में आत्ममूल्यांकन करता है, अपनी कमजोरियों एवं गुणों का तटस्थ अवलोकन करता है तथा उसके व्यक्तित्व में जो भी अवांछनीयतायें है, बुरी आदतें, बुरे विचार या व्यावहारिक गड़बड़ियाँ है, उनको सकारात्मक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग द्वारा दूर करने का यथासंभव प्रयास करता है।

''अध्ययन केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है, जबकि स्वाध्याय अपने बोध को संवारने की प्रक्रिया है।'' (डॉ. प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

पाठकों, **बोध का अर्थ है– ज्ञान** और विशेषज्ञों के अनुसार हमें ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है। पहला ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, त्वचा, कर्ण, नासिका जिह्वा) के माध्यम से होने वाला ज्ञान जिसे हम बाह्य बोध भी कह सकते है। दूसरे प्रकार का बोध है– बौद्धिक विश्लेषण एवं आन्तरिक अनुभवों के द्वारा होने वाला ज्ञान।

बोध के ये दोनों प्रकार एक दूसरे से अत्यन्त गहरे रूप में जुड़े रहते हैं अर्थात एक का प्रभाव सुनिश्चित रूप से दूसरे पर पड़ता है। कहने का आशय है कि इन्द्रियों से जो कुछ जानकारी हमें मिलती है अर्थात हम जो भी देखते है– सुनते है, उसका प्रभाव हमारे विचारों एवं भावनाओं पर सुनिश्चित रूप से पड़ता है। इसी प्रकार जैसे हमारे विचार, भावनायें, आस्थायें होती है, उनका प्रभाव भी हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान पर पड़ता है। इस सन्दर्भ में आपने एक कहावत भी सुनी होगी कि –

''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि''

अर्थात जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण या नजरिया जैसा होता है उसे प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु, घटना उसी रूप में दिखाई देती है। ''

इसी कारण एक ही घटना अथवा वस्तु या व्यक्ति अलग – अलग लोगों के लिये अलग–अलग परिणाम उत्पन्न करती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का सोचने का ढंग हर दूसरे व्यक्ति से अलग होता है। जो व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण वाला है, उसे प्रत्येक चीज में नकारात्मकता ही दिखायी देती है, इसके विपरीत जो जिन्दगी के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाता है, वह विषम परिस्थितयों में भी प्रकाश की एक किरण खोज लेता है। इस प्रकार सब कुछ व्यक्ति की अपनी प्रकृति पर निर्भर करता है।

अतः यदि हम अपने जीवन को शांति एवं खुशी के साथ जीना चाहते है तो हमें अपने दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाना ही होगा और स्वाध्याय इसी दृष्टिकोण की चिकित्सा की अत्यन्त वैज्ञानिक एवं सटीक विधि है। यह स्वस्थ मन से स्वस्थ जीवन जीने की विधा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अध्ययन एवं स्वाध्याय में मूलभूत अन्तर होने के कारण अध्ययन को स्वाध्याय कहना न्यायसंगत नहीं होगा।

प्रिय पाठकों, अब अत्यन्त महत्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना है, वह यह है कि इस स्वाध्याय की प्रक्रिया को जीवन में कैसे अपनाया जाये? इसके सोपान क्या है?

तो आइये, अब चर्चा करते हैं स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया के बारे में।

स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया –

पाठकों, स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया निम्न चार चरणों में पूरी होती है –

1. **प्रथम चरण –** सद्ग्रन्थों या सद्विचारों का चयन।
2. **द्वितीय चरण –** आत्ममूल्यांकन
3. **तृतीय चरण –** अपने दृष्टिकोण को संवारने की नीति तय करना।
4. **चतुर्थ चरण –** निर्धारित नीति का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग।

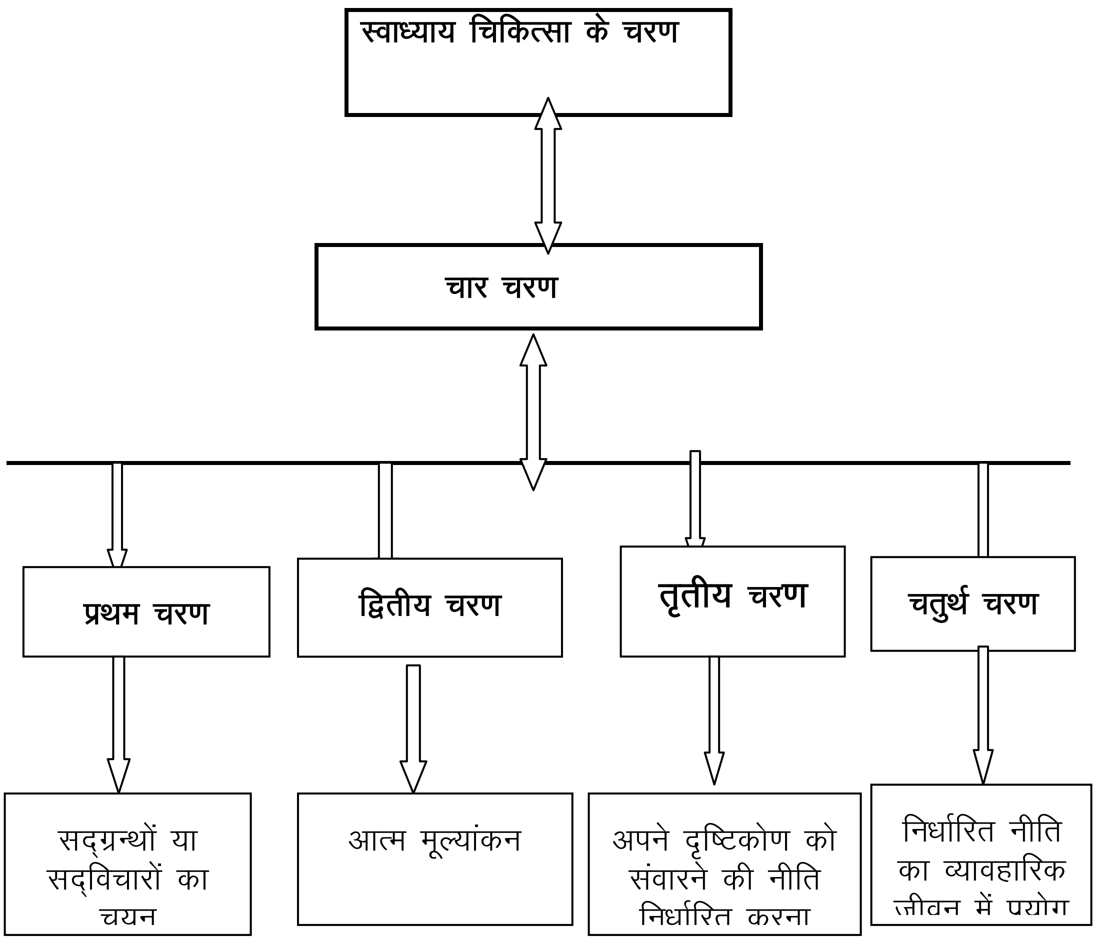

पाठकों, स्वाध्याय की इन विभिन्न अवस्थाओं का विस्तृत विवरण निम्नानुसार है–

1. **प्रथम चरण : सद्ग्रन्थों या सद्विचारों का चयन** –स्वाध्याय चिकित्सा का प्रथम चरण है– स्वाध्याय की सामग्री का चयन करना अर्थात यह निर्धारित करना कि स्वाध्याय के लिये किन सद्ग्रन्थों या विचारों का चयन किया जाये। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देना आवश्यक है कि स्वाध्याय हेतु उन्हीं विचारों का चयन किया जाये जो आध्यात्म को जानने वाले महामानवों या महापुरूषों के द्वारा दिये गये हो

क्योंकि ऐसे लोगों का जीवन ही हमारे लिये आदर्श एवं प्रेरणादायी होता है। इस हेतु हम वेद, उपनिषद, गीता इत्यादि ग्रन्थों का एवं विभिन्न तपस्वियों जैसे कि **महात्मा बुद्ध, आचार्य शस्कर, महावीर स्वामी, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद सरस्वती, श्री माँ** इत्यादि के विचारों का चयन कर सकते हैं।

"स्वाध्याय के पहले क्रम में हम उन ग्रन्थों विचारों का चयन करते हैं, जिन्हें स्व की अनुभूति से सम्पन्न महामानवों ने सृजित किया है। ध्यान रखें कोई भी पुस्तक या विचार स्वाध्याय की सामग्री नहीं बन सकता। इसके लिये जरूरी है कि यह पुस्तक या विचार किसी महान् तपस्वी आध्यात्मवेदत्ता के द्वारा सृजित हो।"
(डाँ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

2. **द्वितीय चरण : आत्म–मूल्यांकन –** पाठकों, यह स्वाध्याय का अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। यही वह अवस्था है जिसमें स्वयं का स्वयं से परिचय होता है। यह आत्मविश्लेषण की अवस्था हैं जिसमें व्यक्ति उन चयनित ग्रन्थों एवं विचारों के परिप्रेक्ष्य में आत्म–मूल्यांकन करता है। आत्म–मूल्यांकन का अर्थ है अपने गुणों,कमियों का तटस्थ अवलोकन। अपने व्यक्तित्व में जो अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ हैं, दोनों को समान रूप से देखना और बुराइयों को पूरी निष्पक्षता एवं साहस के साथ स्वीकार करना। इसी चरण में व्यक्ति इस बात पर विचार करता है कि हमारा जीवन कैसा है? हम किस ढंग से जी रहे हैं और किस ढंग से हमें जीना चाहिये। इसी स्तर पर व्यक्ति अपने विचार तंत्र की विकृतियों से परिचय पाता है। इसलिये व्यक्ति को पूरी सजगता से अपनी कमियों को पहचानना चाहिये और इस बात के प्रति सावधान रहना चाहिये कि कोई भी विकृति दब न जाये, छिप न जाये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय चरण में विचार तंत्र की विकृतियों का निदान किया जाता है। निदान से आशय है समस्या को पहचानना और यह जानना कि इसके दुष्प्रभाव कहाँ – कहाँ पड़ रहे हैं और भविष्य में कहाँ – कहाँ पड़ सकते हैं?

3. **द्वितीय चरण : अपने दृष्टिकोण को संवारने की नीति निर्धारित करना –** द्वितीय चरण में विकृतियों के निदान के उपरान्त तृतीय चरण में उन्हें दूर करने के उपाय का चयन किया जाता है, उसकी पूरी प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जाता है कि व्यावहारिक रूप में इसे किस प्रकार से अपनाया जायेगा। इसकी पूरी योजना इस चरण में बनायी जाती है।

"स्वाध्याय चिकित्सा का तीसरा मुख्य बिन्दु यही है। विचार, भावनाओं, विश्वास, आस्थाओं, मान्यताओं, आग्रहों से संबधित अपने दृष्टिकोण को ठीक करने की नीति तय करना। इसकी पूरी प्रक्रिया को सुनिश्चित करना। हम कहाँ से प्रारम्भ करें और किस रीति से आगे बढ़े। इसकी पूरी विधि – विज्ञान को इस क्रम में बनाना और तैयार करना पड़ता है।"
(डाँ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

4. **चतुर्थ चरण : निर्धारित नीति का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग –** पाठकों, स्वाध्याय का यह चतुर्थ चरण अत्यन्त चुनौतीपूर्ण होता है, यही वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपनी विकृतियों को दूर करने का व्यावहारिक प्रयास करना होता है अर्थात अपने विकृत विचारों को दूर करने के लिये समाधान की जिस नीति का निर्धारण किया गया है, इस चरण में उस नीति के अनुसार आचरण करना होता है। उन

सद्विचारों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से अपनाना होता है। सद्विचारों के अनुरूप जीवन जीकर दिखाना होता है। जिसमें हमारे संस्कारों एवं पुरानी बुरी आदतों के रूप में अनेक बाधायें सामने आती हैं, किन्तु अपने साहस एवं जुझारूपन के द्वारा हम उन बाधाओं को पार कर सकते हैं और एक आदर्श जीवन जी सकते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, जब तक स्वाध्याय की यह योजना व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित नहीं होती है तब तक वह मात्र अध्ययन ही बना रहेगा। सद्ग्रन्थों में वर्णित आदर्श जीवन का व्यावहारिक प्रयोग ही इस स्वाध्याय चिकित्सा की सार्थकता है, जो इसे उद्देश्य की पूर्णता तक पहुँचाता है।

स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता –

प्रिय पाठकों, स्वाध्याय की उपयोगिता के विषय में जितना वर्णन किया जाये उतना ही कम है, क्योंकि यह एक ऐसी औषधि है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व के समग्र विकारों से मुक्ति पाकर स्वस्थ जीवन जिया जा सकता है।

प्रमुख रूप से स्वाध्याय चिकित्सा की महत्ता का विचेचन निम्नांकित बिन्दओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(क) नकारात्मक विचारों को दूर करना
(ख) दुर्भावनाओं से मुक्ति
(ग) व्यावहारिक विकृतियों को दूर करना
(घ) समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण
(ड़) स्वस्थ जीवन की प्राप्ति

इनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है –

(क) नकारात्मक विचारों को दूर करना – पाठकों, जैसा कि अब तक आप समझ चुके होंगे कि स्वाध्याय का संबध हमारे विचार तंत्र से है। यह विचार परिष्कार से जीवन परिष्कार की प्रक्रिया है। स्वाध्याय चिकित्सा का प्रथम परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का चिन्तन सकारात्मक होने लगता है। वह अब घटनाओं को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखता है। स्वाध्याय के द्वारा उसके चारों ओर एक सकारात्मक वैचारिक वातावरण बना रहता है और वह वैचारिक प्रदूषण से मुक्त रहता है।

'' सोच विचार या बोध के तंत्र को निरोग करने की सार्थक प्रक्रिया स्वाध्याय से बढ़कर और कुछ नहीं है।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

(ख) दुर्भावनाओं से मुक्ति– पाठकों, जैसा कि हम जानते है कि हमारे विचारों का प्रभाव हमारी भावनाओं पर भी पड़ता है। जैसे विचार हमारे अन्दर आते हैं, उसी के अनुरूप भाव भी उत्पन्न होने लगते हैं। ये दोनों (भाव एवं विचार) एक दूसरे से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि हम इनमें से किसी भी एक को दूसरे से तोड़कर नहीं देख सकते। विचार हमारी भावनाओं को प्रभावित करते हैं और भावनायें भी विचारों को अपने रंगों में रंगे बिना नहीं रहती।

अतः स्वाध्याय से हमारे विचारतंत्र के परिष्कृत होने के कारण भाव भी पवित्र होने लगते हैं, जो हमारे आध्यात्मिक विकास में अत्यन्त सहायक है।

(ग) व्यावहाररिक विकृतियों को दूर करना– स्वाध्याय मन की चिकित्सा के साथ – साथ व्यवहार की चिकित्सा भी करता है क्योंकि विचार हमारे व्यवहार को बहुत गहरे रूप में प्रभावित करते हैं और व्यवहार का प्रभाव भी विचारों पर पड़ता है।

जब व्यक्ति सद्‌विचारों को अपने जीवन में, आचरण में उतारने लगता है तो उससे स्वतः उसकी व्यवहारगत विकृतियाँ एवं परेशानियाँ दूर होने लगती है और उसका व्यवहार एक आदर्श के रूप में दूसरों को भी प्रेरणा प्रदान करता है।

''मानसिक आरोग्य की ओर ध्यान दिये बगैर शरीर को स्वस्थ करने की सोचना या व्यावहारिक दोषों को ठीक करना, कुछ वैसा ही है, जैसे – पत्तों को काटकर पेड़ की जड़ों को सींचते रहना। जब तक पेड़ की जड़ों को खाद – पानी मिलता रहेगा, तब तक पत्ते अपने आप ही हरे होते रहेंगे। इसी तरह से जब तक सोच – विचार के तंत्र में विकृति बनी रहेगी, शारीरिक एवं व्यावहारिक परेशानियाँ बनी रहेंगी।''

(डॉं0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

(घ) समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण– **प**ाठकों, हमारे व्यक्तित्व के तीन आयाम हैं – **संवेग, विचार एवं व्यवहार** और ये तीनों आयाम एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। भावनाओं (संवेग) से हमारे विचार एवं व्यवहार प्रभावित होते हैं तो विचारों का प्रभाव भी हमारे संवेगों एवं व्यवहारों पर पड़ता है। इसी प्रकार हमारे व्यवहार का प्रभाव संवेगों और विचारों पर पड़े बिना नहीं रहता। जिस प्रकार हमारे शरीर के विभिन्न संस्थान हैं, जैसे – **अस्थि तंत्र, पेशीय तंत्र, पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र** इत्यादि और इन सभी के अपने–अपने विशिष्ट कार्य है, फिर भी इनके कार्यो का प्रभाव परस्पर पड़ता है और एक भी तंत्र के अंगों के कार्यो में बाधा आने पर समूचा शारीरिक संस्थान प्रभावित होता है, उसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व का कोई भी आयाम यदि विकृत है तो वह समूचे व्यक्त्तिव को बुरी तरह प्रभावित करता है और यदि एक आयाम सुदृढ़ एवं स्वस्थ है तो समग्र व्यक्तित्व परिष्कृत होने लगता है।

अतः स्वाध्याय प्रत्यक्ष रूप से तो हमारे विचारों को प्रभावित करता है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से समग्र व्यक्तित्व (संवेग, विचार, व्यवहार) के रूपान्तरण में ही इसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।

(ड़) स्वस्थ जीवन की प्राप्ति– प्रिय पाठकगणों, स्वाध्याय स्वस्थ जीवन की प्राप्ति की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा है। इसके द्वारा पहले मन की चिकित्सा होती है, उसके बाद जीवन की चिकित्सा। वैज्ञानिकों के अनुसार रोगी मन समस्त जीवन को रोगी बना देता है इसलिये यदि जीवन को स्वस्थ बनाना है तो हमें पहले मन को निरोग बनाने का साहसिक कार्य करना होगा, जिसे हम स्वाध्याय चिकित्सा द्वारा सहज रूप से कर सकते है।

स्वस्थ जीवन का तात्पर्य है –समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति, जिसमें हमारा शरीर भी स्वस्थ हो, मन भी सकारात्मक दृष्टिकोण वाला हो, आत्मा भी संतुष्ट हो और सामाजिक दृष्टि से भी व्यक्ति का व्यवहार एक आदर्श व्यवहार हो और प्रेरणास्पद आदर्श व्यक्ति के रूप में उसकी छवि बने।

जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वाध्याय चिकित्सा का महत्व असाधारण है। इसके द्वारा हम एक स्वस्थ एवं सुखी जीवन व्यतीत कर सकते है।

स्वाध्याय की इसी महत्ता के कारण इसे योग साधना के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन के रूप में भी स्वीकार किया गया है। महान योग वैज्ञानिक **महर्षि पतंजलि** ने क्रियायोग के दूसरे अंग **(तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान)** के रूप में इसका अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया है

और अष्टांग योग में भी नियम के अन्तर्गत चतुर्थ नियम (**शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान)** के रूप में इसकी महत्ता का वर्णन किया है।

''स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता असाधारण है। इसके द्वारा पहले मन स्वस्थ होता है, फिर जीवन।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

इस प्रकार स्वाध्याय के द्वारा हम अपने समूचे जीवन का रूपान्तरण कर सकते हैं और साथ ही इस चिकित्सा की महत्ता इस कारण भी अत्यधिक बढ़ जाती है कि यह पद्धति अत्यन्त सहज है। इसे कोई भी व्यक्ति अपना सकता है, इसमें किसी प्रकार का कोई आर्थिक खर्च भी नहीं है और न ही इसके कोई दुष्प्रभाव है। वास्तव में यह स्वाध्याय चिकित्सा अपने आप में असाधारण है।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड – ख)

सत्य / असत्य

1. स्वाध्याय की प्रक्रिया के प्रथम चरण में आत्म – मूल्यांकन किया जाता है। (सत्य/असत्य)
2. स्वाध्याय केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है। (सत्य/असत्य)
3. स्वाध्याय के द्वारा समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण संभव है।(सत्य/असत्य)
4. स्वाध्याय का अर्थ है – पुस्तकों का अध्ययन करना। (सत्य/असत्य)
5. स्वाध्याय अपने बोध को संवारने की प्रक्रिया है। (सत्य/असत्य)

प्रिय विद्यार्थियों, अब तक हमने सूर्य चिकित्सा और स्वाध्याय चिकित्सा का अध्ययन किया है। अब हम चर्चा करते हैं, अगली चिकित्सा पद्धति **पिरामिड चिकित्सा** के बारे में।

3.3.3 पिरामिड चिकित्सा–प्रिय पाठको, आप सभी इस बात से सुपरिचित हैं कि **मिस्र के पिरामिड विश्वविख्यात हैं।** ये दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक हैं। आज वैज्ञानिक इस बात का रहस्य जानने में जुटे हुये हैं कि आखिर ऐसा क्या है, जिसके कारण हजारों साल पहले पिरामिड के नीचे रखी हुयी लाशें, जिनको **'ममी'** कहा जाता है, वो अभी तक भी खराब क्यों नहीं हुयी हैं?

प्रिय विद्यार्थियों, इस सन्दर्भ में हुयी विभिन्न खोजों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पिरामिड के अन्दर अद्भुत प्रकार की ऊर्जा तरंगे निरन्तर काम करती रहती हैं, जिनका प्रभाव जड़ एवं चेतन दोनों पर समान रूप से पड़ता है।

पाठकों, पिरामिड के अन्दर रखी हुयी इन ममी के ऊपर एवं नीचे विद्युत लहरें निरन्तर चलती रहती हैं, जिसके कारण ऊर्जा का प्रवाह सत्त बना रहता है और लाशे खराब नहीं होती हैं। पिरामिडों की इस शक्ति को वैज्ञानिकों ने **''पिरामिड पावर''** का नाम दिया है। पिरामिडों की इस शक्ति के कारण आज **''पिरामिड चिकित्सा''** के नाम से यह पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। स्वस्थ जीवन की प्राप्ति के लिये आज अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे देशों में अस्पतालों को पिरामिड जैसा आकार देने का प्रयास किया जा रहा है। पिरामिड सम्बन्धी विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि पिरामिडो की इस शक्ति का हम अपने दैनिक जीवन में भी लाभ उठा सकते है।

तो आइये, अब हम चर्चा करते हैं कि किस प्रकार इस चिकित्सा का उपयोग करके हम दैनिक जीवन में लाभान्वित हो सकते हैं।

पिरामिड क्या है ?

प्रिय पाठकों, क्या आप जानते है कि ग्रीक भाषा में **पायरा का अर्थ होता है – 'अग्नि' तथा मिड का अर्थ है – 'केन्द्र'** । इस प्रकार पिरामिड शब्द का अर्थ है – '**केन्द्र में अग्नि वाला पात्र**'। जैसा कि हम सभी जानते है कि प्राचीन काल से ही अग्नि को ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार पिरामिड का सामान्य शाब्दिक अर्थ है '**अग्निशिखा**'' अर्थात एक ऐसी अदृश्य ऊर्जा जो अग्नि के समान हमारी अशुद्धियों का नाश करके हमें निर्मल कर सकती है। पाठकों, क्या आप जानते हैं कि पिरामिड यंत्र अंतरिक्ष से आने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों को संग्रहित करके इन्हें कल्याणकारी किरणों के रूप में परिवर्तित कर देता है। पिरमिड यंत्र के पाँच शीर्षो से प्राण ऊर्जा सर्पाकार कुण्डल रूप में सदैव ऊपर बहती रहती है। वर्तमान समय में वास्तुदोष निवारण के लिये पिरामिड यंत्र को अत्यन्त महत्व दिया जा रहा है। वैदिक ज्यामिति के अनुसार त्रिकोण को स्थिरता एवं प्रगति का सूचक माना जाता है। पिरामिड में चार त्रिकोण मिलते हैं, जिससे स्थिरता एवं प्रगति चौगुनी हो जाती है। इस प्रकार वास्तुदोष निवारण हेतु पिरावास्तु अत्यन्त कारगर एवं प्रभावशाली उपाय है।

पिरामिड मंत्र

त्रिभुजाकारम् शिखर कोशम्,
उर्ध्वमूलम् प्रगच्छम्।
चत्वारात्मम् समभुजास्यम्,
आसनास्यास्य बद्धम्।।
ईशावास्यम् अग्निकेन्द्रम,
सौम्य ऊर्जा प्रवर्तकम्।
शक्ति स्तोत्रम्,
भव–भयहरम् सर्वपीड़ा।।

पिरामिड चिकित्सा के विभिन्न उपयोग –

प्रिय पाठकों, पिरामिड चिकित्सा हमारे दैनिक जीवन में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकती है। इस चिकित्सा पद्धति का उपयोग हम विभिन्न प्रकार से कर सकते हैं, जैसे कि–

1. यदि पिरामिड का प्रयोग सिर के ऊपर किया जाये तो इससे मस्तिष्क पर सकारात्क प्रभाव पड़ता है। नकारात्मक चिन्तन दूर होकर मन में अच्छे विचार उत्पन्न होने लगते हैं।
2. विद्यार्थियों के लिये भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। इससे उनकी सीखने की क्षमता, याद करने की क्षमता को काफी हद तक विकसित किया जा सकता है। यदि विद्यार्थी पिरामिड पहनकर कुर्सी के नीचे पिरामिड रखकर विषय को याद करें, तो इससे उन्हें अपना विषय जल्दी याद हो सकता है ओर उनकी बुद्धि का विकास हो सकता है।
3. पिरामिड को जल के पात्र के ऊपर रख देने से 12 घंटे के अन्दर ही जल अत्यधिक आरोग्यप्रद, मीठा और स्वादयुक्त हो जाता है।
4. खाद्य पदार्थ जैसे की फल, सब्जियाँ, दूध, दही, मिठाई इत्यादि के ऊपर पिरामिड रख देने से वे आरोग्यप्रद एवं अधिक स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा उनकी गुणवत्ता में भी अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और वे लम्बे समय तक ताजे बने रहते हैं।
5. विभिन्न प्रकार के रोगों में भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। शरीर के किसी भाग में दर्द होने पर पिरामिड रखने से दर्द दूर हो जाता है। कब्ज इत्यादि रोगों में पिरामिड का चार्ज किया हुआ गरम पानी पीने से भी रोग में लाभ मिलता है।

6. चेहरे की क्रान्ति बढ़ाने के लिये भी पिरामिड चिकित्सा का प्रयोग किया जा सकता है। पिरामिड द्वारा चार्ज किये हुये जल से प्रतिदिन आँखों और चेहरे को धोने से आँखों की ज्योति बढ़ती है तथा चेहरे पर चमक आती है।
7. मानसिक एकाग्रता को बढ़ाने में भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। उपासना, ध्यान, प्रार्थना करते समय पिरामिड पहनने से एकाग्रता बढ़ती है।
8. अनिद्रा रोग को दूर करने में भी पिरामिड का प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि रात को सोते समय पलंग के नीचे पिरामिड रखने से नींद बहुत अच्छी आती है।
9. प्रतिदिन पिरामिड को सुबह–शाम टोपी की तरह आंधे घंटे तक पहन कर रखने से तनाव, माइग्रेन, डिप्रेशन, बालों का झड़ना, बालों का सफेद होना इत्यादि समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है।
10. पौधों पर पिरामिड युक्त जल का सिंचन करने से उनकी वृद्धि तीव्र गति से होती है तथा वे रोगमुक्त रहते हैं।
11. ऑफिस इत्यादि में काम करते समय कुसी के नीचे पिरामिड रखने से निरन्तर सकारात्मक ऊर्जा मिलती है तथा आलस्य प्रमाद एवं नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती हैं
12. अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि पिरामिड–जल से तैयार तुलसी की पत्तियों के सेवन से सर्दी, खाँसी, बुखार इत्यादि रोगों में लाभ मिलता है।
13. वास्तुशास्त्र की दृष्टि से भी पिरामिड़ों का विशेष महत्व है।
14. यदि कब्ज रोग से पीड़ित व्यक्ति प्रातःकाल चार गिलास पानी पीकर अपने पेट पर पिरामिड रखें तो इससे मल निष्कासन में सहायता मिलती है।
15. वर्तमान समय में पिरामिड यंत्र को वास्तुदोष निवारण, गृहशांति में ंवृद्धि, किसी स्थान की शुद्धि जैसे भिन्न–भिन्न कार्यो में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहे है। आज बाजार में क्रिस्टल के पिरामिड विभिन्न रंगों में उपलब्ध हैं, नौ ग्रहों के नौ रंगों का पिरामिड सेट गृहशांति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगे कि पिरामिड यंत्र दैनिक जीवन में हमारे लिये कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न (खण्ड – ग)

<u>सत्य / असत्य</u>

1. पिरामिड का शाब्दिक अर्थ अग्निशिखा है। (सत्य / असत्य)
2. पिरामिड चिकित्सा अमेरिका की देन है। (सत्य / असत्य)
3. पिरामिड यंत्र में केवल रात्रि के समय ऊर्जा तरंगे प्रवाहित होती है। (सत्य / असत्य)
4. वास्तुदोष निवारण में पिरामिड यंत्र का उपयोग नहीं किया जा सकता। (सत्य / असत्य)
5. पिरामिड यंत्र पाँच त्रिकोण से मिलकर बनता है। (सत्य / असत्य)

3.4 सारांश –

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगे कि पूरक चिकित्सा पद्धति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्रस्तुत इकाई में तो आपको केवल कुछ चिकित्सा पद्धतियों की जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त भी विविध पूरक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं। जैसे –

एरोमा थैरेपी, एक्यूपंक्चर, एक्यूप्रेशर, रेकी चिकित्सा, नेचुरोपैथी, मुद्रा चिकित्सा, हास्य चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा, प्रार्थना चिकित्सा, चुम्बक चिकित्सा इत्यादि।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति यदि पूरी आस्था एवं विश्वास के साथ इनमें से किसी भी चिकित्सा पद्धति को पूरी सावधानी के साथ विधिपूर्वक अपनाता है तो उसे सुनिश्चित रूप से आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त होते हैं, चाहे वह सूर्य चिकित्सा हो, स्वाध्याय चिकित्सा हो अथवा कोई दूसरी पूरक चिकित्सा हो। मूल बात है विश्वास के साथ नियमपूर्वक अपनाने की, तभी हमें किसी भी कार्य के सकारात्मक परिणाम मिलते हैं।

3.5 शब्दावली –

पूर्वाभिमुख – पूर्व दिशा की ओर मुँह करना।
वक्षस्थल – छाती
विधेयात्मक – सकारात्मक
विकृति – विकार, रोग
इन्द्रियजन्य – इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होने वाला ।
आध्यात्मवेदता – अध्यात्म को जानने वाला।
सोपान – चरण या सीढ़ी।
अदृश्य – जो दिखाई न दे।
समग्र – सम्पूर्ण।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(खण्ड –क)

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य

(खण्ड –ख)

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

(खण्ड –ग)

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. असत्य
5. असत्य

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर उत्तरप्रदेश।

2 आध्यात्मिक चिकित्सा : एक समग्र उपचार पद्धति– डॉ0 प्रणव पण्ड्या, शांतिकुन्ज हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री –

1 वैकल्पिक चिकित्सा – डॉ0 आर0एस0 विवेक। डायमंड बुक्स नई दिल्ली।
2 वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ– राजकुमार प्रुथी। प्रभात प्रकाषन, नई दिल्ली।

3.9 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न – 1 – सूर्य चिकित्सा से आप क्या समझते है? सूर्य किरणों द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार की विधि का वर्णन कीजिए।

प्रश्न – 2– स्वाध्याय चिकित्सा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये इसकी प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न – 3– पिरामिड चिकित्सा का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 4– एक्यूप्रेशर का अर्थ, परिभाषाए एक्यूप्रेशर का इतिहास

4.1. प्रस्तावना
4.2. उद्देश्य
4.3. एक्यूप्रेशर
    4.3.1. एक्यूप्रेशर का अर्थ
    4.3.2. एक्यूप्रेशर की परिभाषा
    4.3.3. एक्यूप्रेशर का महत्व
4.4. एक्यूप्रेशर का इतिहास
    4.4.1. एक्यूप्रेशर– प्राचीन चिकित्सा पद्धति
    4.4.2. एक्यूप्रेशर का वर्तमान स्वरूप
4.5. सारांश
4.6. शब्दावली
4.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची
4.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री
4.10. निबंधात्मक प्रश्न

4.1. प्रस्तावना–

वर्तमान में, चिकित्सा की जिन प्रणालियों ने मनुष्य के शारीरिक व मानसिक दुखों को हरने की क्रिया में सफलता प्राप्त की है। वे सभी कहीं न कहीं पौराणिक भारतीय चिकित्सा पद्धति से ही ली गई है। बड़े–बुजुर्ग, दादी–नानी, आज भी कई रोग समस्याओं के समाधान स्वयं ही बता देते है।

समय के साथ–साथ वे क्रियाएं लुप्त होती चली गई और विज्ञान ने स्वास्थ्य सम्बन्धी कई–कई अविष्कार कर लिय, लेकिन वे औषधियॉ महंगी होने के कारण सामान्य लोग उसका लाभ नही ले पा रहे है।

आज भी अधिकतर लोग इन स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित है, क्योंकि भारत की अधिकांश जनता दूर–दराज स्थानों में निवास करती है, ऐसे में वह चिकित्सा प्रद्धति जो स्वंय की जा सके, जिससे धन, समय की बचत हो और कोई भी प्रति–परिणाम न हो उसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि शारीरिगत व मनोगत सभी रोगों के दूर करने के लिए मनुष्य ने सवसे पहले जो पद्धति अपनाई वह पद्धति एक्यूप्रेशर चिकित्सा ही है।

4.2. उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप–

- भारतीय इतिहास के पौराणिक चिकित्सा पद्धति को समझ पायेंगे।
- कम खर्चीली व सुर्वसुलभ चिकित्सा पद्धति को जान सकेगे।

- स्वयं की, परिवार की, व अन्य लोगो की चिकित्सा, बिना किसी प्रतिपरिणाम के कर पायेगें।
- आप जान जाऐगें की बिना औषधी के भी हम शरीर व मन को स्वस्थ्य रख सकते है।

4.3. एक्यूप्रेशर–

अंगुलियों या किसी कृन्द (तीखी) वस्तु द्वारा किसी बिन्दु पर उपचार देने की पद्धति को एक्यूप्रेशर कहते है, इसमें किसी विशेष स्थान पर प्रेशर देकर चिकित्सा की जाती है, प्रेशर देने से अवरूद्ध चेतना संचार होने लगता है।

4.3.1. एक्यूप्रेशर का अर्थ–

एक्यूप्रेशर दो शब्दों से मिलकर बना है, ACUS+PRESSURE. जिसमें ACUS लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है सुई प्रेशर PRESSURE अंग्रेजी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है दबाव डालना, अर्थात सुई समान किसी नुकीली चील से रोग प्रतिबिम्ब केन्द्र पर दबाव डालना।

यह एक प्राकृतिक किया है, इसे हम इस उदाहरण के आधार पर दर्शा सकते है कि जैसे जब किसी स्थान पर दर्द या परेशानी होती है तो अपने आप हमारा हाथ उस स्थान को दबाने लगता है और हम कुछ राहत भी महसूस करने है, इस एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका प्रभाव चमत्कारी होता है वर्षों पुराने रोग भी दिनों में दूर हो जाते है।

4.3.2. एक्यूप्रेशर की परिभाषा–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा वह पद्धति है जिससे पैरो, हाथों व चहेरे के कुछ खास केन्द्रो पर दबाव डाला जाता है इन केन्द्रो को Respopnse Center या Reflex Center भी कहते है हिन्दी में इसे प्रतिबिम्ब केन्द्र कहते है।

रोग की अवस्था में इन केन्द्रो पर जब प्रेशर देते है तो वहा पर बहुत तेज दर्द होता है। तब वहा पर दबाव देने से शरीर में रोग की प्रतिक्रिया शक्ति जागृत होती है, जिससे रोग दूर होता है।

4.3.3. एक्यूप्रेशर तथा मुद्राओं का महत्व–

यह एक्यूप्रेशर पद्धति अति–प्राचीन है, तथा भारतीय संस्कृति की ही देन है, क्योंकि इसका व्यापक वर्णन आयुर्वेद ग्रंथो में किया गया है। आयुर्वेद ने इन दबाव बिन्दुओं को **मर्म** की संज्ञा दी है तथा एक्यू–पंचर को शुचि–भेदक के नाम से वर्णित किया गया है।

हमारा जो यह साधारण दिखने वाला शरीर है यह मात्र हांड–मांस का बना नही है। इसके भीतर जो शक्ति कार्य करती है ,वह प्राणरूपी जीवनी शक्ति है इसे चीनी भाषा मे ची करते है उनके अनुसार इस ची नामक शक्ति में दो प्रकार के बल होते है। यिंग और यांग, यिंग ऋणात्मक बल है, और यांग धनात्मक बल है मुनष्य पूर्ण स्वस्थ्य रहता है जब ये दोनों बल अंसतुलित होते है तो वह असंतुलन रोग उत्पन्न करता है ये दोनों प्रकार के यिंग और यांग नामक जो बल है वे शरीर के भिन्न मार्गो से होकर जाती है ये दोनों शक्तियां शरीर के जिन–जिन मार्गों से होकर जाती है उन्हे एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति में मेरिडियन के नाम से जाना जाता है।

यदि हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से शरीर को समझे, तो भी यह बात स्पष्ट होती है कि जो पूरे शरीर में रक्त संचार, स्नायु संस्थान की सभी छोटी–बड़ी नस–नाड़ियां है। उनके अन्तिम सिरे हाथ और पैर के तलवे में ही होते है। ये अन्तिम सिरे शरीर में फैले किसी न किसी नस या नाड़ी से सम्बद्ध होते है। जब उनसे सम्बन्धित कोई विकार उत्पन्न होता है तो इन्ही अन्तिम सिरों पर दबाव अर्थात प्रेशर डालकर उस सम्बन्धित रोग का या पीड़ा का निदान किया जाता है।

यही बाते एक्यूप्रेशर के विशेष महत्व को बताती हैं कि बिना किसी औषधी के तथा न ही अनावश्यक धन खर्च करके, न समय बरबाद करके न ही मंहगी–मंहगी जॉच कराके चिकित्सा होती है। बल्कि मात्र हाथ की हथेली व पैर के तलवों में विशेष एक्यू बिन्दु को देखकर ही कुशल एक्यूप्रेशर चिकित्सक अपने रोगी को चिकित्सा करता है। इसके लिए रोगी व्यक्ति को कुछ भी परेशानी नही होती क्योंकि इसमें कष्टकारी किसी भी प्रक्रिया से उसे नही गुजरना पड़ता है यह महत्व उस समय और भी बढ़ जाता है जब रोगी व्यक्ति इस उपचार प्रकिया के बारे में पूर्ण आवश्स्त होता है। धौर्यवान होता है तथा वह हर समय अपने बारे में व दूसरों के बारे में सकरात्मक सोच रखता है विश्वासी व्यक्ति हर क्षेत्र में विजयी होता हैं।

प्राचीन समय में हर महिला इसके महत्व को जानती थी, वह स्वयं की तथा बच्चों की चिकित्सा अपने इसी ज्ञान के आधार पर कर लेती थी

वर्तमान की चिकित्सा पद्धति इतनी मंहगी है कि सामान्य वर्ग के लिए उसे अपनाना कठिन हो जाता है, ऐसे में इस चिकित्सा पद्धति की महत्ता और भी बड़ जाती है, क्योंकि इससे ना तो कोई प्रति प्रभाव ही पड़ता है, न ही धन व समय की हानि, इसे स्वंय सीख कर स्वंय को परिवार को तथा अन्य लोगों को स्वास्थ्य लाभ दिया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर तथा मुद्राऍ

	तत्व		प्रभावित अंग		
1.	अग्नि	–	हृदय	–	छोटी ऑत
2.	वायु	–	फेफड़े	–	बड़ी ऑत
3.	आकाश	–	यकृत	–	पित्ताशय
4.	पृथ्वी	–	आमाशय	–	प्लीहा
5.	जल	–	वृक्क	–	मूत्राशय

योग में मुद्राएँ करते समय कुछ विशेष अंगो पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है, तथा जो सम्पूर्ण शरीर का सही संतुलन बनाने में सहायक है तथा रोग सम्बन्धी स्थान में हल्का एक्यूप्रेशर देने से उस स्थान के सभी रोग व बीमारियां समाप्त हो जाती है।

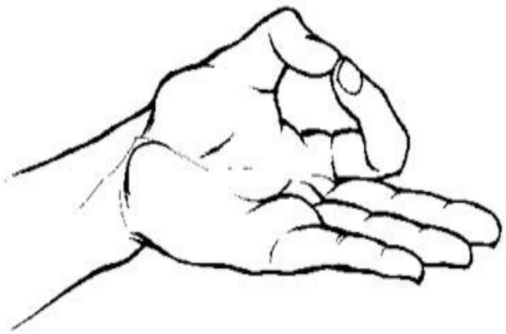

मुद्राओं के प्रकार

1. ज्ञान मुद्रा
2. आकाश मुद्रा
3. पृथ्वी मुद्रा
4. वरूण मुद्रा
5. वायु मुद्रा
6. शून्य मुद्रा
7. सूर्य मुद्रा
8. प्राण मुद्रा
9. अपान मुद्रा
10. अपान वायु मुद्रा
11. लिंग मुद्रा
12. शंख मुद्रा

1. ज्ञान–मुद्रा

हाथ की तर्जनी अंगुली (अंगूठे के पास) के अग्र भाग को अंगूठे के आगे के भाग से मिलाकर रखना चाहिए तथा अन्य अंगुलियॉ सीधी व सामान्य रहना चाहिए।

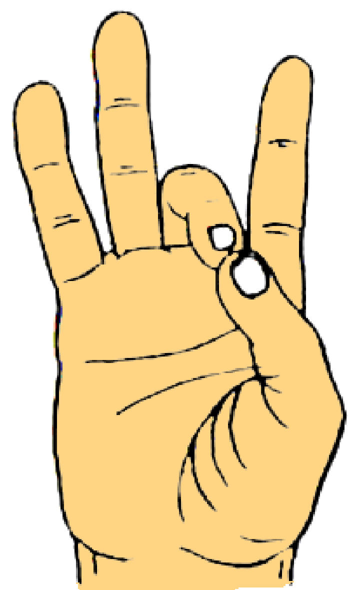

लाभ

इस मुद्रा द्वारा पिय्यूटरी, पीनियल व मस्तिष्क के बिन्दुओ पर दबाव उत्पन्न होता है। ऊर्जा का संचार तेजी से होता है और समस्त रोग इत्यादि व्याधियॉ दूर हो जाती है।

बीमारियॉ

सिर दर्द, अनिद्रा, के रोग जैसे अस्थमा, उच्च रक्तचाप, पेट, छाती, माइग्रेन आदि रोगो का सामाधान होता है।

2. आकाश–मुद्रा

मध्यमा को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाने पर यह मुद्रा बनती है। अन्य अंगुलियॉ सहज, सीधी व सामान्य अवस्था में होनी चाहिए तथा रीढ़ की हड्डी एंव गर्दन, सीधी होनी चाहिए।

आकाश मुद्रा से आकाश तत्व का संतुलन

बना रहता है।

लाभ

यह मुद्रा शरीर के विभिन्न अंगो की बीमारियों को दूर करती है यह विशेष रूप से कमर से ऊपरी भाग के सभी अंगो की बीमारियों से मुक्ति पाने का सही मार्ग है।

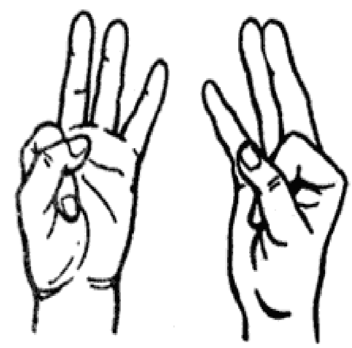

बीमारियॉ

तेज धड़कन थकान होना, हड्डी टूट जाना या हड्डियों का दर्द, हिचकी, उल्टी आना, कानों का दर्द, हृदय के रोग, कलाइयों का दर्द एंव सभी रोग जैसे मोच इत्यादि।

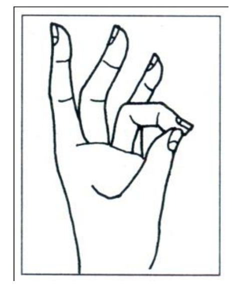

3. पृथ्वी मुद्रा

अनामिका के अग्र भाग को एवं अंगूठे के अग्र भाग को मिलाने से ही पृथ्वी मुद्रा बनाई जाती है। इस मुद्रा को करने से शरीर में पृथ्वी तत्व संतुलित होता है।

लाभ

पृथ्वी मुद्रा द्वारा मस्तिष्क, पिय्यूटरी व पीनियल आदि अंग प्रभावित होते है।

बीमारियॉ

पीठ दर्द, सीने का दर्द व शरीर गत अधिकतर व्याधियों आदि इसके द्वारा प्रभावित होते है।

4. वरूण मुद्रा

कनिषटिका के अग्र भाग को अंगूठे के अग्र भाग से मिलाने पर वरूण मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से जल तत्व का संतुलन होता है।

बीमारियॉ

रक्त की अशुद्धता, त्वचा के रोग जैसे मुहासे, एलर्जी व सभी रोग, शरीर में पानी की कमी, रक्त की प्रवाह में आई अनियमिततां आदि।

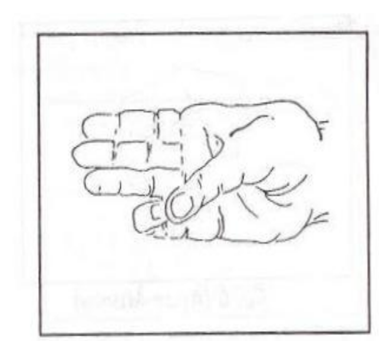

5. वायु मुद्रा

तर्जनी को मोड़कर अंगूठे की जड़ मे लगाकर उसे अंगूठे से दबाने पर वायु मुद्रा बनती है। इस मुद्रा को करने से शरीर मे वायु तत्व संतुलित होता है।

बीमारियॉ

गठिया रोग, वात, सर्दी, ज्वर शरीर के ऊपरी अंगो के सभी रोग व दर्द इत्यादि।

6. **शून्य मुद्रा**

मध्यमा अंगुली को अंगूठे की गद्‌दी पर शून्य मुद्रा बनती है।

आकाश तत्व यदि बढ़ जाए तो इस मुद्रा के अभ्यास द्वारा उसे नियन्त्रित किया जाता है।

रोग

कान दर्द, कलाई के सभी बिन्दु व यह शरीर के बढ़ते अभवा कम होते तापमान के लिए।

प्रभावित अंग

कान तथा मस्तिष्क के सभी भागों पर इस मुद्रा का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

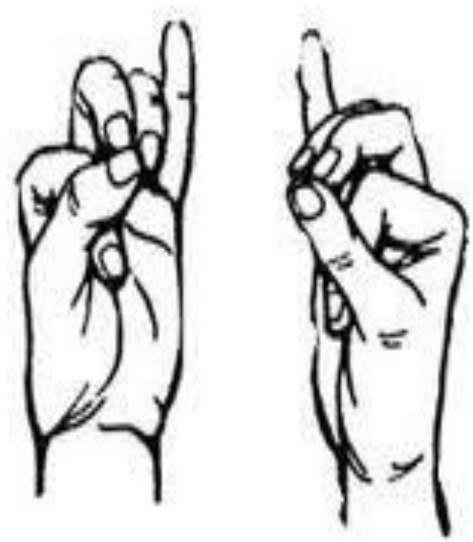

7. **सूर्य मुद्रा**

अनामिका अंगुली को अंगूठे की जड़ में लगाने पर तथा हल्का दबाव देने पर सूर्य मुद्रा बनती है।

विशेष

इस मुद्रा को बज्रासन मे करने से अधिक लाभ होता है।

बीमारियॉ

थाइराइड रोगो से सम्बन्धित सभी रोग इससे ठीक हो जाते है।

लाभ

वनज पर प्रभाव (ऋणात्मक), पीठ का दर्द, व अनिद्रा, तनाव से मुक्ति मिलती है।

8. **प्राण मुद्रा**

कनिष्ठिका व अनामिका के सिरों को अंगूठे से मिलाने पर प्राण मुद्रा बनती है।

विशेष

इस मुद्रा से प्राण शक्ति तीव्रता से बढ़ती है रक्त संचार से लाभदायक है व इससे अनिद्रा व थकान दूर होती है।

लाभ

इस मुद्रा से विशेष लाभ बड़ी ऑत व हृदय को मिलता है।

बीमारियॉ

ऑखों के सभी रोग, थकान, अनिद्रा, हृदय के रोग, कोहनी दर्द, गर्दन का दर्द व निष्क्रियता व सुस्ती आदि बीमारियों में प्राण मुद्रा से लाभ प्राप्त होता है।

9. **अपान मुद्रा**

मध्यमा व अनामिका के अग्रभाग को अंगूठे से मिलाने पर अपान मुद्रा बनती है। अन्य अंगुलियॉ सीधी व सहज रहती है।

लाभ

इस मुद्रा को करने से शरीर की उत्सर्जन क्रिया व्यवस्थित रहती है एंव प्राण व अपान वायु की स्थिति सम रहती है।

बीमारियॉ

गैस की समस्या, कब्ज, पाईल्स का रोग, पेट की सभी समस्याएँ, सिर दर्द, बदन दर्द आदि इस मुद्रा द्वारा दूर होते है।

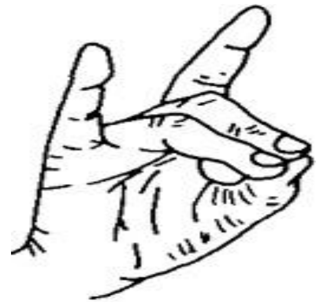

10. अपान वायु मुद्रा

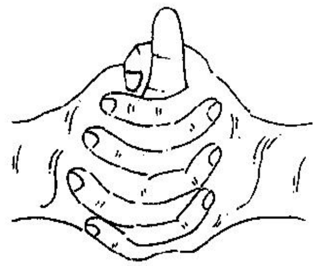

तर्जनी अंगुली को अंगूठे की जड़ मे लाकर व अंगूठे के सिरे को मध्यमा व अनामिका अंगुलियों से स्पर्श करने पर अपान वायु मुद्रा बनती है।

लाभ

मस्तिष्क, पिय्यूटरी व पीनियल ग्रन्थि व हृदय पर इस मुद्रा का विशेष प्रभाव पड़ता है।

बीमारियॉ

इस रोग, गैस, थकान, सिर दर्द, रक्तचाप व अनिद्रा आदि मे विशेष लाभ कारी मुद्रा।

11. लिंग मुद्रा

दोनो हाथों की अंगुलियों को आपस से फॅसाकर अंगूठे को सीधा रखने पर (कोई एक अंगूठा सीधे) लिंग मुद्रा बनती है।

लाभ

शरीर मे गर्मी व ऊर्जा मे बढ़ोत्तरी छोटी ऑत व बड़ी ऑत पर इस मुद्रा का विशेष लाभ पहुॅचता है।

बीमारियॉ

मोटापा, शरीर का दर्द, सर्दी, खॉसी, बहरापन, थकान, अनिद्रा व कब्ज मे उपयोगी मुद्रा ही लिंग मुद्रा है।

12. शंख मुद्रा

हाथ के अंगूठे को दाये हाथ की मुट्ठी में बंद करके, बायें हाथ की तर्जनी अंगुलि को दायें हाथ के अंगूठे से शंख मुद्रा बनती है।

लाभ

पिय्यूट्री व पीनियल, हृदय, बड़ी ऑत आदि पर विशेष लाभ।

बीमारियॉ

थाइराइड ग्रन्थि के रोग, घबराहट, सास लेने मे परेशानी, शरीर का दर्द, कोहनी का दर्द, ऑत के सभी रोग व पेट के सभी रोग में शंख मुद्रा का विशेष स्थान है।

4.4. एक्यूप्रेशर का इतिहास–

प्राचीन काल से ले कर आज तक शरीर के अनेक रोगों तथा विकारों को दूर करने के लिए जितनी चिकित्सा पद्धति प्रचलित हुई है उनमे एक्यूप्रेशर सबसे पुरानी पद्धति है,

विभिन्न देशों में इसे अलग–2 नाम दिये गये है अर्थ और परिभाषा के अध्यन से आप जान गये है कि यह एक पूर्ण प्राकृतिक पद्धति हैं।

एक्यूप्रेशर पद्धति कितनी पुरानी है तथ किस देश मे इस का अविष्कार हुआ इस बारे मे अलग–अलग विचार है, ऐसा माना जाता है कि 6000 वर्ष पूर्व भारत में इस का जन्म हुआ, आयुर्वेद मे भी इस पद्धति का वर्णन मिलता है।

जिस प्रकार हम देखते है कि आज विदेशी पर्यटक भारत भ्रमण पर आते रहते है और यहां कि कई चीजों से प्रेरित होकर उसे अपनाते है।

ठीक इसी प्रकार चीनी यात्री भारत भ्रमण पे आये और इस पद्धति को अपने साथ अपने देश ले गये, और वहां पर इसका खूव प्रचार–प्रसार किया, तब चीन के चिकित्सकों ने इस पद्धति के आर्श्चयजनक प्रभाव को देखते हुए इसे व्यापक तैर पर अपनाया और इस पद्धति के लिए काफी प्रयास किया इसी कारण यह चीनी चिकित्सा पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है, समय के साथ–साथ जब इस पद्धति का चीन में काफी प्रचार–प्रसार हो गया तब तक यह पद्धति भारत में लुप्त हो चुकी थी, इसके लुप्त होने के कारण थे कि इस पद्धति को जो कि सर्वसामान्य जनता के लिए सुलभ थी, उसे सरकारी मान्यता नही मिली न ही इस चिकित्सा पद्धति को सरकार की ओर से भी कोई बढ़ावा मिला, साथ–साथ इसका कारण यह भी रहा कि बदलते परिवेश में लोगों के सामाजिक राजनैतिक, व धार्मिक जीवन में परिवर्तन भी हुए।

कुछ नया पाने की चाह में जब हम पुरानी बातो, या चीजो को पीछे छोड़ देते है तो हमें स्वयं के दुखों का सामना भी करना पड़ता है।

कई प्रमाणित ग्रंथो का अध्ययन करने से पता चलता है कि सभी प्रसिद्ध विद्वानों की एक राय है। इन सबका मानना है कि एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति आज से 3000 वर्ष पहले भारतवर्ष में आयुर्वेद के उत्थान के समय उत्पन्न हुई थी। सुश्रुत–संहिता में शरीर के भीतर अनेक ऐसे बिन्दुओं का वर्णन है जिनमें प्रेशर देने से रोगों का निवारण किया जा सकता हैं। एक्यूप्रेशर विशेषज्ञ मानते है कि प्राचीन भारत में यह बहुत विकसित थी कई स्थानों में वर्णन है कि भगवान बुद्ध के चिकित्सक ''जिवक'' हाथो से दबाव से रोगियों की चिकित्सा करते थे। बाद मे जब मौर्य–वंश का साम्राज्य आया तब उस समय यह विद्या बौद्ध–भिक्षुकों द्वारा अपनाई गई और इसका स्वरुप बदल गया तब 9वीं सदी के अन्त में इसे डा0 फ्रिट्ज जेराल्ड ने पुर्नजीवित किया।

डा0 फ्रिट्ज जेराल्ड (Dr. William Fritzgerald) ये एक अमेरिकी चिकित्सक है, तथा इन्हे ही आधुनिक युग मे एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति को उजागर करने का श्रेय दिया जाता है। इन्होने अपने एक लेख में बताया है कि मनुष्य शरीर एक मशीन की तरह है। इस मशीन रूपी शरीर में कई संवेदनशील भाग हैं। जैसे– मस्तिष्क, पाचनतन्त्र, ऑख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, तंत्रिकातंत्र, रक्तसंस्थान, गुर्दे, फेफड़े आदि। ये सभी अंग, प्रत्यंग, संस्थान, अलग–अलग रहकर भी एक शरीर में एक साथ मिलकर काम करते है यह प्रकृति का चमत्कार ही है जैसे एक सफल मशीन में कई तरह के कलपुर्जे मिलकर एक विशेष कार्य को सम्पन्न करते है। लेकिन यदि कभी भाग में खराबी आ जाती है तो उस भाग से सम्बद्ध अद्श्य बटन को दबाने से मशीन का काम पुनः प्रारम्भ हो जाता है। ठीक उसी प्रकार शरीर के अन्तरिक अंगो से सम्बद्ध हाथ, पैर, चेहरे व कई अन्य स्थानों पर इनके अदृश्य स्विच (बटन) बिन्दु होते है। उन बिन्दुओं पर दबाव डालकर, अर्थात प्रेशर देकर, उससे सम्बन्धित अंग में उत्तेजना, गर्मी, चेतना, प्राण आदि भेजी जाती है। जिसके

फलस्वरुप वहा का अवरोध हट जाता है वह अंग स्थान पुनः क्रियाशील हो जाता है। तब वहा पर स्वास्थ्य रक्त संचार व प्राण संचार पुनः होने लगता है।

एक्यूप्रेशर उपचार पद्धति–प्रकृति प्रदन्त विज्ञान है। हमारे ऋषि–मुनि, गृहस्थ आदि सभी समय–समय पर इसका उपयोग करते आये है। यह मानव शरीर प्रकृति की ओर से एक दोषरहित मशीन है। यदि प्रकृति के अनुसार भोजन, श्रम और विश्राम में सन्तुलन न बनाया जाय, या प्राकृतिक नियमों का न माना जाय, तब उस स्थिति में विषैले तत्वों का संग्रह प्रारम्भ हो जाता है। इसके फलस्वरुप शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। शरीर में विजातिय तत्वों का संग्रह ही रोग कहलाता है।

आज भी अनेको आभूषण, वस्त्र, घर में किये जाने वाले कार्य, तथा श्रमशील कार्य एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के ही रुप है। हाथों मे कंगन, चूड़ी, घड़ी तथा पैरों में पायल, झांझर, गले मे हार, चेन तथा छोटे–छोटे बच्चों के गले में व कमर में काला धागा पहनाना, कान में जनेऊ, हाथ में कलावा बांधना, कपड़े धोना, कुँए से पानी निकालना, रोटी बनाना, आटा गूथना, बिंदी लगाना, तिलक लगाना, कर्ण छेदन करना,ये सभी कहीं न कहीं एक्यूप्रेशर चिकित्सा के ही तथ्य है।

भारत से लंका, चीन, जापान आदि देशों में बौद्ध भिक्षु इस ज्ञान को लेकर गये कहीं–कहीं उल्लेख मिलता है कि छटी शताब्दी में बौद्ध भिक्षुओं ने इस ज्ञान को जापान पहुचाया, जापान में यह पद्धति ''शिआस्तु'' के नाम से जानी पहचानी गई। वहां पर इसे पूर्ण मान्यता प्राप्त हूई इसके कई संस्थान स्थापित किये गये इसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण यहा रहा कि इस पद्धति के प्रति लोगो की पूर्ण सजगता ''शिआस्तु'' में शि का अर्थ है अंगुली और 'आत्सु'' का अर्थ है दबाव।

सिद्धान्ता के अर्न्तगत– एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति में शरीर को 10 भागो में बांटा हैं जिसे जोनोलाजी कहा गया है। शरीर के निदिष्ट जोन में दबाव देकर रोग को दूर भगाना जोनेथैरपी के नाम से जाना जाता है। बांए हाथ की अंगुलियो हथेलियों पर दाब देकर शरीर के बांए भाग की चिकित्सा की जाती है तथा इसी प्रकार दाहिने हाथ पर दबाव देकर शरीर के दाहिने भाग की चिकित्सा की जाती है, तब रोग की पहचान व उपचार पैर के तलवों द्वारा किया जाता है तो यह पद्धति ''फुट रिफ्लेक्सोलॉजी'' के नाम से जानी जाती है। तथा जब शरीर में स्थित दाब–बिन्दुओं के माध्यम से जब उपचार किया जाता है तब इसे शिआत्सु कहते हैं

4.4.1. एक्यूप्रेशर–प्राचीन चिकित्सा पद्धति–

वर्तमान में जब हम देखते है कि नई–नई चीजों का अविष्कार हो चुका है ऐसे में हर परेशानी का इलाज हो जाता है तब साधारण जन यही समझते है कि विज्ञान ने चमत्कार किया है, जबकि ये चमत्कार पुरातन पद्धतियों की ही देन है बस थोड़ा–बहुत उनके स्वरूप को बदल दिया गया है।

प्राचीन समय से लेकर आज तक शरीर के कई रोगों व विकारों को दूर करने के लिए जितनी भी चिकित्सा पद्धतियां प्रचलित हुई है उनमें से एक्यूप्रेशर सबसे अधिक प्रभावशाली पद्धति है व पूर्ण रूप से प्राकृतिक है प्राचीन ऐतिहासिक सभ्यता से पता चलता है कि क्षत्रीय पुरूष कई प्रकार के आभूषण धारण करते थे उन आभूषणों से जो उस विशेष स्थान पर दबाव पड़ता है वह शरीर के अंग विशेष को प्रभावित करता है। यद वद विधि है जिसमें बिना आपरेशन के रोग निवारण की शक्ति है इसके चमत्कारी प्रभाव को देखते हुए विदेशों में यह काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय हो रही है।

इस शरीर रूपी मशीन में भी कई कल पुजे है जिन्हें अंग–अवयव कहा जाता है, जब इन अंग–अवयव रूपी कार्य–प्रणाली प्रभावित होती है तो कई रोग उत्पन्न हो जाते है उन रोगो को दूर करने के लिए मनुष्य ने सबसे पहले जो पद्धति अपनाई वह पद्धति एक्यूप्रेशर चिकित्सा ही है।

आज जब भारतवर्ष में यह पद्धति लगभग खो सी रही है तो इसके कई कारण भी है जैसे–पश्चिमी सभ्यता का हमारे दैनिक जीवन पर प्रभाव, आध्यात्मिक गुणों का ह्रास तथा सरकारी मान्यताओं का अभाव।

4.4.2 एक्यूप्रेशर का वर्तमान स्वरूप–

सभ्य समाज व स्वस्थ नागरिक देश की उन्नति में सहायक है रोग की अवस्था में हम कही न कही अपने परिवार व समाज को प्रभावित करते है, इसलिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखना ही सब सामाजिक सद्‌गुणों का आधार है।

इसलिए आज जब हर व्यक्ति तर्क व तथ्यों पर विश्वास करता है तो वह महंगी दवाइयों के प्रतिप्रभाव को भी समझने लगा है जिससे धन, समय की बर्बादी ही होती है तब ऐसे में वह पद्धति जिससे समय बचता है, किसी भी प्रकार का दुष्परिणाम नही होता, तो उसे सभी अपनाना चाहते है। आज इसे सरकारी तौर पर बढ़ावा तो नही मिला है लेकिन व्यक्तिगत तौर पर कई स्थानों में इस चिकित्सा के केन्द्र खुल चुके है, जिनमें कुशल चिकित्सों द्वारा एक्यूप्रेशर चिकित्सा द्वारा रोगो का समाधान किया जा रहा है लोगो को इस चिकित्सा पद्धति के सत्परिणाम भी मिल रहे है।

अनुभवी चिकित्सा पूरे शरीर के क्रिया पद्धति को जानकर, समझकर ही चिकित्सा करते है रोग की स्थिति को देखते हुए, रोगी का पूरा–पूरा घ्यान रखा जाता है, साथ–साथ अन्य प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों का सहारा भी लिया जाता है, जैसे मिट्टी चिकित्सा, जल चिकित्सा, यौगिक चिकित्सा, आहार–विहार आदि। ये सभी वर्तमान में एक पूर्ण स्थायी चिकित्सा के रूप में उभर चुकी है। क्योंकि धीरे–धीरे ही सही पर लोग प्राकृतिक नियमो को समझने लगे है। प्रकृति के साथ चलना, प्रकृति को मानना, स्वंय के स्वास्थ्य की रक्षा करना ही है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. एक्यूप्रेशर का शाब्दिक अर्थ बताइये?
2. एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति, वर्तमान में किस देश मे फल–फूल रही है?
3. क्या एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति में, किसी भी प्रकार से औषधियों का प्रयोग किया जाता है?
4. प्रतिबिम्ब केन्द्र किसे कहते है?
5. एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के लुप्त होने के दो कारण बताइये?

4.5. सारांश–

हम यदि अपने पुराने इतिहास का अध्ययन करे तो चिकित्सा के सन्दर्भ में एक्यूप्रेशर चिकित्सा का महत्व ज्ञान होता है। पता चलता है कि यह चिकित्सा सबसे पुरानी है, यह एक्यूप्रेशर चिकित्सा एक प्रकार कि गहरी मालिश है, आज जब विज्ञान ने कई बुलन्दियों को छुआ है, तो मंहगी चिकित्सा पद्धति को जन्म भी दिया है, ऐसे में बिना औषधी के बिना धन खर्च किये यदि कोई चमत्कारी पद्धति है तो वह है एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति।

इस पद्धति के द्वारा हाथ–पैर व चेहरे के कुछ खास हिस्सों पर दबाव डालकर रोग को दूर करने का प्रयास किया जाता है, आयुर्वेद में एक्यू–पंचर को शुचि–भेदन के नाम से जाना जाता है। यह पद्धति पूर्ण रूप से प्राकृतिक है इसका किसी भी प्रकार का दुष्परिणाम नही होता।

4.6 शब्दावली–

स्थायी	–	हमेशा बने रहना
प्रतिप्रभाव	–	दुष्परिणाम (साइड इफेक्ट)
पौराण्कि	–	प्राचीन (पुराना)
शुचि–भेदन	–	सुई के समान छेदना
मर्म	–	संवेदन शील
मदती	–	अत्याधिक

4.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1. किसी तीखी या नुकीजी चीज से दबाव डालना।
2. चीन में।
3. औषधियों का प्रयोग नही किया जा सकता।
4. जो रोग से सम्बन्धित स्थान होता है।
5. (1) सरकारी मान्यता का आभाव।
   (2) बदलता परिवेश अर्थात पश्चिमी सभ्यता।

4.8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. डा0 अन्तर सिंह एक्यूप्रेशर प्राकृतिक उपचार
2. डा0 राजीव शर्मा एक्यूप्रेशर चिकित्सा कोर्स
3. डा0 गहराना इन्टरनेशनल एक्यूप्रेशर
4. जे0पी0 अग्रवाल सुजोक ऐक्यूप्रेशर
5. www.google.com

4.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री–

1. एक्यूप्रेशर सम्बन्धी पत्र–प्रत्रिकाएं।
2. जगह–जगह, कई प्रकार के पत्थरो से एक्यूप्रेशर बगीचा (गार्डन) बनाये गये है। यदि हो सके तो वहां पर भ्रमण करना चाहियें

4.10. निबंधात्मक प्रश्न–

1. एक्यूप्रेशर क्या है। इसके अर्थ व परिभाषा को बताते हुए इसके महत्व पर विस्तार से चर्चा कीजिए?
2. एक्यूप्रेशर का प्राचीन स्वरूप बतलाते हुए, वर्तमान स्वरूप की चर्चा स्वयं के शब्दों मे कीजिए?
3. क्या इस पद्धति के उपचार द्वारा धन व समय की बचत होती है, इस विषय पर एक लेख लिखिए?

इकाई 5– एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त, एक्यूप्रेशर की विधि व विभिन्न उपकरण

5.1. प्रस्तावना
5.2. उद्देश्य
5.3. एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त
  5.3.1. एक्यूप्रेशर के शारीरिक सिद्धान्त
  5.3.2. एक्यूप्रेशर के मानसिक सिद्धान्त
  5.3.3. एक्यूप्रेशर के नियम
5.4. एक्यूप्रेशर देने की विधि
  5.4.1. एक्यूप्रेशर उपचार में प्रयुक्त चिभिन्न उपकरण
  5.4.2. एक्यूप्रेशर उपचार कर्ता के गुण
5.5. सारांश
5.6. शब्दावली
5.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची
5.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री
5.10. निबंधात्मक प्रश्न

5.1. प्रस्तावना–

हम पड़ते आये है कि मनुष्य शरीर एक मशीन की तरह कार्य करता है। लेकिन सत्य तो यह है कि मनुष्य शरीर एक विशाल शक्ति का भंडार भी है, किसी न किसी कारण से यह शक्ति निःसारित भी होती रहती है, इस शक्ति को बचाने के लिए सभी स्त्री–पुरूष अपने हाथ कुछ विशेष बिन्दुओं को आप प्रतिदिन पेशर दें, तो वे अपनी क्षीण होती शक्ति को बचा सकते है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति केवल रोकियों को उपचार देने के लिए दी नही है, बल्कि यह गहरी मालिश का एक तरीका है, जिसके द्वारा लम्बे समय तक शारीरिक शक्ति को बचाया जा सकता है स्वस्थ रहा जा सकता है। इस पद्धति के द्वारा जहा तक हम उपचार की बात करते है, तो यह वह उपचार है जिसके द्वारा आपरेशन के बिना ही रोग को जड़ से समाप्त कर दिया जाता है इस पद्धति को रोग–निरोधक उपाय भी कह सकते है, इसमें औषधी दिये जाने का कोई प्रश्न ही नही होता, कुछ रबर, लकड़ी या प्लास्टिक उपकरणों के द्वारा ही इस पद्धति में उपचार किया जाता है।

5.2. उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप–

- ❖ एक्यूप्रेशर चिकित्सा के सिद्धान्तों को समझ सकेगें।
- ❖ एक्यूप्रेशर किस प्रकार दिया जाता है, उस विधि को समझ सकेगें।
- ❖ एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति में किन–किन उपकरणों का प्रयोग होता है इसे जानेगे।

❖ तथा उपचारकर्ता के गुणों को जानेगें।

5.3. एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का मुख्य सिद्धान्त यह है कि शरीर के विभिन्न भागो में अवरूद चेतना का संचार करना प्राण व रक्त के प्रवाह में गति लाना, दाब बिन्दुओं में प्रेशर देकर रोगी को रोगमुक्त करना।

इस चिकित्सा पद्धति के कई लाभ है।

- एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति किसी भी तरह से बहुत कठिन य बहुत जटिल प्रकिया नही है इसको कोई भी सामान्य ज्ञान व बुद्धि वाला व्यक्ति अपने आप कर सकता है।
- इस उपचार पद्धति द्वारा छोटी–मोटी घरेलू बीमारियों का स्वउपचार किया जा सकता है।
- दूर–दराज ग्रामीण क्षेत्र में, जहॉ पर किसी भी प्रकार की स्वास्थ्य सुविधा नही है। वहा पर अन्य उपचार के अभाव में यह चिकित्सा पद्धति रोगियों के लिए उत्तम साधन है।
- जब कहीं जा रहे हो, यात्रा कर रहें हो या ऑफिस स्कूल आदि में हो, अचानक कोई पीड़ा या परेशानी हो तो ऐसे में यह एक्यूप्रेशर चिकित्सा उपचार दिया या लिया जा सकता है।
- इस उपचार पद्धति का काई भी प्रतिप्रभाव नही होता है।
- यह सभी जानते है कि पूरे शरीर में प्राणिक ऊर्जा विघुत की तरह फैली हुई है इस पद्धति की सहायता से शरीर के अव्यवस्थित ऊर्जा प्रवाह को व्यवस्थित किया जा सकता है।
- यह पद्धति अत्यन्त सरल, प्राकृतिक व प्रभावशाली, रोग निवारक चिकित्सा पद्धति है।
- इसकी सहायता से मनुष्य शरीर में अदृश्य व सुषुप्त कई शक्तियों को जागृत किया जा सकता है।

5.3.1. एक्यूप्रेशर के शरीरिक सिद्धान्त–

वैज्ञानिक आधार पर स्नापुसंस्थान व रक्तवाहिकाओं की छोटी–छोटी नाड़ियो के आखिरी हिस्से हाथो तथा पैरो में होते है, अर्थात हाथ–पैर की नाड़ियो का शरीर के सारे अंगो से सम्बन्ध है इसलिए विशेष रूप से हाथ व पैरों में ही प्रेशर देकर रोगी का इलाज किया जाता है।

कुशल एक्यूप्रेशर चिकित्सकों के अनुसार प्रेशर देने से शरीर में कुछ प्रमुख प्रभाव पड़ते है। जो निम्न है–

- एक्यूप्रेशर प्रणाली से त्वचा से त्वचा में स्फूर्ति उत्पन्न होती है।
- शरीर की मांस पेशीयॉ जो पूरे शरीर को ढके हुए है। यह एक्यूप्रेशर उसमें लचक पैदा करता है।
- यह शरीर के आवश्यक तत्वों की वृद्धि करता है।

- यह स्नायु संस्थान को स्वस्थ्य बनाता है तथा आस्थियों की विकृति भी इससे दूर होती है।
- शरीर में स्थित समस्त अन्तः स्रावी ग्रथिंयों का कार्य नियमित हो जाता है।
- जहॉ तक हो सके प्रेशर ऐसे स्थान पर बैठकर देना चाहिये जो स्थान हवादार हो।
- चिकित्सा लेते समय रोगी को अपना शरीर ठीला छोड़ देना चाहियें।
- रोगी को गहरे व लम्बे–लम्बे श्वास–प्रश्वास करने चाहियें।
- एक्यूप्रेशर केवल रोगो को दूर करने की ही पद्धति नही है। बल्कि इससे रोगो को दूर भी रखा जा सकता है इसलिए हर स्वास्थ व्यक्ति को प्रतिदिन हाथ–पैर व सभी प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर प्रेशर देना चाहियें। इससे एक अच्छे स्वास्थ्य को लम्बे समय तक बचाये रखा जा सकता है।
- यह एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति न केवल शारीरिक रोगो को बल्कि मानसिक रोग की स्थिति में भी लाभदायी होता है।

5.3.2. एक्यूप्रेशर के मानसिक सिद्धान्त–

तनाव, अवसाद, या अन्य किसी भी प्रकार की मानसिक परेशानी का सम्बन्ध भी किसी न किसी ग्रंथि (अन्तः सावी ग्रंथि) से तथा किसी विशेष अंग अवयव से होता है। कुशल चिकित्सक उस विशेष स्थान पर प्रेशर देकर रोगी को मानसिक लाभ पहुचाते है।

5.3.3. एक्यूप्रेशर–नियम

- प्रेशर देने के लिए अधिकतम दर्द संवेदना वाले स्थान को ढूडना चाहिये।
- नये रोगो में सामान्यतः 2 मिनट व अधिकतम 6–8 मिनट तक दबाव देना चाहिये।
- दबाव की मात्रा, रोगी की आयु, अवस्था, तथा सहनशक्ति के अनुसार कम, मध्यम अथवा तेज दी जा सकती है।

सीमाएं–

कभी–कभी कुछ परिस्थितियॉ ऐसी भी उत्पन्न हो जाती है कि रोगी का उपचार मात्र एक्यूप्रेशर द्वारा संभव नही हो पाता। इसलिए कुछ सीमांए है नियम है जिनको ध्यान में रखना आवश्यक है–

- यदि रोगी जीर्ण स्थिति में है लम्बे समय से बिमार चल रहा है तथा गंभीर व जटिल रोगों से घिरा है तो एक्यूप्रेशर उपचार से पूर्ण लाभ नही हो सकता।
- केंसर, मोतियाबिंद, ट्यूमर, स्नायुओं की सूजन, पुराने गठिया ऐसे रोगों में भी एक्यूप्रेशर पूरा–पूरा लाभ नही दे पाता ऐसे में रोगी को पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति का ही सहारा लेना चाहियें।
- गर्भवती महिला को भी यह उपचार नही देना चाहियें।
- यदि दबाव देने के स्थान पर घाव है, मस्सा है, सूजन या त्वचा जलकर झुर्रीदार हो गई है तो उस रागी का उपचार नही करना चाहियें।
- पसीने से भीगा हुआ, दिल की धड़कन तेज होने, खाली पेट होने, या कोई दवा लेने के बाद या टूटी हड्डी वाले स्थान पर एक्यूप्रेशर पद्धति से उपचार नही करना चाहियें।
- संक्रामक रोग में भी यह पद्धति कार्य नही करती।

- एक्यूप्रेशर उपचार को इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि उसे रोगी व्यक्ति को दबाव कब, कहॉ और कैसे देना है।
- रोग की सही दिशा व दशा व उससे सम्बन्धित एक्यू बिन्दुओं की सर्वप्रथम खोज करें, फिर दबाव देना प्रारम्भ करें।
- रोगी व्यक्ति में इस चिकित्सा पद्धति के प्रति विश्वास जगायें।
- प्रेशर देने के बाद दबाव छोड़ते समय हल्का झटका देते हुए उसे छोड़ना चाहिये।
- यदि किसी व्यक्ति का आपरेशन हुआ है तो चिकित्सक से पूछने के बाद 2 या 3 माह बाद ही एक्यूप्रेशर चिकित्सा दे सकते है।
- जो व्यक्ति रोगी है उसे भी कुछ नियम व सावधानी का ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा चिकित्सक की मेहनत का कोई लाभ नही होगा।
- इस उपचार पद्धति में रोगी व्यक्ति को शराब पीना सख्त मना है।
- गरम मसाले एंव चटपटे पदार्थ तथा उत्तेजित करने वाली वस्तुओं का सेवन उपचार के दौरान नही करना चाहिये।
- खट्टी खाद्य चीजों का सेवन भी वर्जित है।

5.4. एक्यूप्रेशर देने की विधि–

विभिन्न प्रतिबिम्ब बिन्दुओं पर कितना प्रेशर दिया जाय यह उस अंग और रोगी की सहनशक्ति पर निर्भर करता है, प्रेशर देने की कई विधि है।
जैसे–

- **हल्का दबाव**–नाजुक जगहो पर एक अंगुली या अंगूठे से बिल्कुल हल्का दबाव देना चाहिये।
- **दो अंगुलियों का दबाव**–एक अंगुली के ऊपर दूसरी अंगुली रखकर फिर दोनों अंगुलियों से दबाया जाता है।
- **हथेली का दबाव**–शरीर के किसी अंग विशेष पर एक हथेली से या दोनो हथेली से दबाव दिया जाता है।
- **रोटेटिंग**–अर्थात अंगूठे या जिम्मी से एक दिशा में घुमाते हुए दबाव देना।
- **पुश एण्ड पुल**–किसी बिन्दु पर दबाव देना व छोड़ना, इसी क्रिया को दोहराना।
- **रबिंग (Rubbing)**–किसी बिन्दु पर घिसते हुए दबाव देना।

विधि के अर्न्तगत इन सब बातों को जानना आवश्यक है कि बिन्दुओं को पहचाना कैसे जाय, उन बिन्दुओं पर दबाव कितना दिया जाय देने से पहले व प्रेशर देने के बाद क्या किया जाय आदि। इसके अर्न्तगत कुछ मुख्य बाते मुख्य हैं।

- प्रत्येक एक्यू बिन्दु पर एक समान दबाव दें। जितना रोगी सहन कर सकें।
- दिन मे दो–तीन बार संबंधित बिन्दुओं पर दबाव देना चाहियें।
- दबाव देते समय यदि एक्यू बिन्दु के आस–पास सूजन या लाली दिखाई पड़े जो अनावश्यक दबाव देना छोड़ दे।
- दबाते समय अंगूठे को स्थिर रखते हुए थोड़ा घुमाव रखना चाहियें।

- ध्यान रखें, एक बिन्दु पर तब तक दबाव दें जब तक वहा पर थोड़ा दर्द का अनुभव न हों।
- ध्यान रखें, फिर दबाव तब तक बनाये रखें, जब तक पीड़ा समाप्त न हो जाय, उस स्थान पर पीड़ा समाप्त होने का अर्थ है रोग का समाप्त हो जाना।
- यदि रोज दबाव न दिया जाय तो एक दिन छोड़कार भी दबाव दिया जा सकता है।
- किसी भी स्थान पर अधिक देर तक या बार–बार प्रेशर देना उचित नहीं है किसी पीड़ा या रोग को ठीक करने के लिए प्रयास, व उत्साह आवश्यक है लेकिन अतिरिक्त उत्साह दिखाना उचित नही है।
- ह्रदय से सम्बन्धित एक्यू बिंदु सिर्फ बाई ओर स्थित होते है।
- समान्यतः 7–10 सेकेण्ड तक दबाव देना पर्याप्त देना होता है। इतनी देर दबाव से स्वचलित तंत्रिका तंत्र उत्तेजित हो जाता है। अनुभवी उपचारक इस समय सीमा को अपने अनुभव के आधार पर भी निश्चित कर सकता है। 7–10 सेकेण्ड के दबाव को कई बार दे सकते है जिसका समय 10 से 15 मिनट, प्रतिदिन प्रातः, सांय या आवश्यकतानुसार दोपहर में भी दे सकते हैं।
- अंगूठे या हथेली से दबाव देने के अतिरिक्त रगड़ लगाकर अर्थात हल्की मालिश विधि से भी यह किया जा सकता है। इसमें सर्वप्रथम प्रभावित प्रतिबिम्ब केन्द्र पर आगे–पीछे, अंगूठे–अंगुली, हथेली आदि से रगड़ा जाता है। पांवो के तलवों को भी दोनो हथेली से रगड़ा जाता है। इससे प्रतिबिम्ब केन्द्र उत्तेजित हो जाते है इसके बाद दबाव देने से उस प्राण प्रवाह के मार्ग में आई हुई बांधा दूर हो जाती है। ताप्पर्यं यह है कि उस अंग विशेष से सम्बद्ध रोग दूर हो जाता है।
- कभी–कभी एक्यूप्रेशर बिन्दुओं को दबाने के बदले यदि हल्के से पकड़कर खीचें या हिलाये तो यह भी उपचार की एक विधि है इसमं रोग से सम्बनिधत क्षेत्र को दो अंगुली से पकड़कर कम्पन देते हुए हिलाते है मांस–पेशियों को गोलाई से घुमाते है।
- एक विधि के अनुसार एक्यूप्रेशर देने के पूर्व एक्यू बिंदु पर थोड़ा टेलकम पाउडर छिड़क लिया जाय तो उस स्थान पर अच्छा दबाव दिया जा सकता है। पाउडर डालने से उस स्थान की त्वचा को नुकसान नही होता।
- एक्यूप्रेशर उपचार को किसी खुले, साफ व हवादार कमरे में करें।

5.4.1. एक्यूप्रेशर उपचार मे प्रयुक्त विभिन्न उपकरण–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा देते समय चिकित्सक को कुछ उपकरणों की आवश्यकता होती है। इन उपकरणों के द्वारा रोगी, सीखकर, समझकर स्वंय भी लाभ ले सकता है। वर्तमान में ये सभी उपकरण बाजार में उपलब्ध है। कुछ मुख्य–मुख्य उपकरण इस प्रकार है–

- ❖ हाथ –पैरो में प्रेशर देने के लिए रबर, लकड़ी या प्लास्टिक के उपकरण। ये देखने में पैन, पैन्सिल की तरह होते है, इन्हें **जिम्मी** कहते है।
- ❖ खेलने वाली गेंद के समान एक उपकरण होता है यह गोल होने के साथ–साथ कई कोनो वाला होता है। जब इसे इथेली मे गोल–गोल घुमाते है तो इसका प्रभाव जादू की तरह होता है, अर्थात एक साथ कई दोष दूर हो सकते है, क्योंकि इसके

कई कोनो से एक साथ कई प्रेशर बिन्दु दुखते है, इसे **एक्यूप्रेशर मैजिक मशाजर** कहते है

❖ रोटी बेलने वाले रोलर की भांति धारीदार कई कोनों वाला भी एक उपकरण होता है। जिसे कुसी, चारपाई या कही भी ऊँचे स्थान पर बैठकर हाथ आरामदायक स्थिति में रखकर दोनों पैरो के तलवों पर इसे रखकर आगे–पीछे घुमाया जाता है, इसे **फुटरोलर** कहते है।

❖ इनके अतिरिक्त अंगूठी नुमा, फिंगर रोलर, कपड़े सुखाने की पिन, (अंगूलियों के लिए) तथा विभिन्न आकृति के एक्यूप्रेशर मैट, एक्यूप्रेशर कार सीट, एक्यूप्रेशर सौन्डिल, एक्यूप्रेशर सू सोल, रीठ की हड्डी के लिए (स्पाइनल केयर मशाजर) आदि उपकरण प्रयोग मे लाये जाते है।

एक्यूप्रेशर छलला

जिम्मी

ऐक्यूप्रेशर सीट

एक्यूप्रेशर मैट

फुट रोलर

एक्यूप्रेशर चप्पल

एक्यूप्रेशर मैजिक बॉल मसाजर

5.4.2. एक्यूप्रेशर उपचाकर्ता के गुण एवं उपचार प्रतिक्रियाएँ–

एक्यूप्रेशर के द्वारा उपचार करने वाला व्यक्ति भी चिकित्सक ही होता है, जो भी व्यक्ति उपचार के लिए आते है, वे उसे कुशल चिकित्सा के रूप मे उस उपचारकर्ता के कुछ गुण होने आवश्यक है–

जैसे–

1. उपचारकर्ता अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार होना चाहियें।
2. उपचारकर्ता सेवाभावी व संतोषी होना चाहियें।
3. उपचाकर्ता को शरीर क्रिया विज्ञान का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।
4. विभिन्न रोगो में उपचार देने हेतु वह कुशल होना चाहिये।
5. उपचारकर्ता सरल स्वभाव का होना चाहिये।
6. सबसे मुख्य गुण व समय का पाबंद होना चाहिये।
7. वह अपने रोगियों के प्रति सकारात्मक सोच रखता है। उन्हे हिम्मत बधाता हो कि वे शीघ्र दी लाभ को प्राप्त करेगे।
8. उपचारकर्ता के मन में द्वैष भावना न हो।
9. उपचार देते समय वह अच्छे, बुरे सम्बन्धों को प्राथमिकता न दे, अपितु सभी के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें।

10. उपचारकर्ता मुख्यतः स्वंय के प्रति दृढ़निश्चयी, कर्तत्यनिष्ठ व अनुशासित हो।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के अर्न्तगत जब कोई भी व्यक्ति, किसी भी प्रकार की उपचारात्मक चिकित्सा लेता है।

तो उस समय शरीर के विजातीय द्रव्य बाह्व निकलते है या निकलने का प्रयास कर रहे होते है। उस समय हो रही प्रतिक्रियाओं से घबराना नही चाहियें। उस समय उपचार कर्ता

पर पूरा विश्वास रखना चाहिये धौर्य नही खोना चाहिये। ये प्रतिक्रियात्मक लक्षण निम्न हो सकते हैं– जैसे–

- उपचार के समय शरीर सहज होने के कारण नींद आने लगती हैं।
- ऑतो से उत्सर्जी पदार्थो का निष्कासन होता है।
- स्त्रियों में उपचार के समय श्वेतप्रद जैसा स्त्राव होने लगता है।
- उपचार के समय उत्सर्जी तत्व फोड़े–फुन्सी, दानें जैसे बनकर उभरते हैं।
- उपचार के दौरान रोगी शांत व गहरी निद्रा में सो जाता है।
- कभी–कभी रोगी अपने आंसुओ के माध्यम से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। उसका आंसुओं को रोकना लगभग असंभव है।
- कभी–कभी रोगी अपनी बिमारियों के उपचार के दौरान बिस्तृत व्याख्या करने लगते हैं।
- परिणाम स्वरूप यूरिन की मात्रा बढ़ जाती है।
- कभी–कभी दस्त जैसी स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है।
- छीक आने लगती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–निम्न प्रश्नों के संक्षित्त मे उत्तर दीजिए–

1. मनुष्य शरीर किसकी तरह है?
2. एक्यूप्रेशर चिकित्सा को और क्या कह सकते है?
3. एक्यूप्रेशर का मुख्य सिद्धान्त क्या है?
4. ज्ञान उपचार पद्धति के मुख्य उपकरण को क्या कहते है?
5. उपचार देने की किन्ही दो विधियों को बताइये?

5.5. सारांश–

जब एक मशीन को दिन भर चलाते जायेगे तो क्या होगा, तब यही होगा कि उसके कल पुर्जे ढीले हो जायेगें या अधिक रगड़ खाने से मशीन का कोई हिस्सा खराब हो जायेगा या अधिक रगड़ खाने से मशीन का कोई हिस्सा खराब हो जायेगा ठीक इसी प्रकार शरीर का हाल भी होता है इसलिए शरीर रूपी मशीन को समय–समय पर आराम चाहिये। पौष्टिक आहार चाहिये तथा शारीरिक शक्ति व पौरूष्टव को बनाये रखने के लिए कुछ प्रभावशाली उपचार चाहियें।

यह तभी हो सकेगा जब व्यक्ति प्रकृति के नियमों का पालन करेगा प्राचीन उपचार की पद्धति पर पुनः विश्वास को स्थापित करेगा। इन सबके लिए मात्र यह जानने की आवश्यकता है कि एक्यूप्रेशर देने की विधि क्या है तथा उस उपचार के उपकरणों को किस प्रकार से प्रयोग करते है। इन सब बातो को जानने के बाद व्यक्ति पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है एक गौरवशाली जीवन जी सकता है

जिस दिन हम अपनी प्राचीन पद्धतियो पर विश्वास करना सीख जायेगें, उस दिन हम अपने भारत का गौरव पुनः प्राप्त कर सकते है

5.6. शब्दावली–

निःसारित	=	निकलना
क्षीण	=	नष्ट होना

निरोधक	=	रोकने वाला
जिम्मी	=	एक्यूप्रेशर देने का एक उपकरण
सौहार्द पूर्ण	=	प्रेमपूर्वक
कदापि	=	कभी भी

5.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मनुष्य शरीर एक मशीन की तरह है।
2. एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति को हम रोग–निरोधक उपाय भी कह सकते है।
3. दाब–बिन्दुओं मे प्रेशर देकर रोगी को रोगमुक्त करना।
4. जिम्मी।
5. प्रश एण्ड पुल तथा रोटेटिंग।

5.8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1.	डा0 गहराना	–	इन्टरनेशनल एक्यूप्रेशर
2.	ड0 अन्तर सिंह	–	एक्यूप्रेशर प्राकृतिक उपचार
3.	रविन्द्र बागे	–	एक्यूप्रेशर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण
4.	डा0 राजीव शर्मा	–	एक्यूप्रेशर चिकित्सा कोर्स
5.	डा0 राजीव रस्तोगी	–	एक्यूप्रेशर चिकित्सा कोर्स

5.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री–

एक्यूप्रेशर के विभिन्न उपकरण व सम्बन्धित चार्ट्य आदि।

5.10. निबन्धात्मक प्रश्न–

1. एक्यूप्रेशर की व्यवहारकता को समझाते हुए उसके सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए?
2. एक्यूप्रेशर चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के बारे मे बताइयें?
3. एक्यूप्रेशर देने व लेने की विधि को विस्तार से समझाइये? तथा नियमों की विवेचना कीजिए?
4. यदि आप एक एक्यूप्रेशर उपचार कर्ता होते तो आप अपने चिकित्सक होने के गुणों की व्याख्या कीजिए?

इकाई 6—एक्यूप्रेशर द्वारा उपचार व सावधानियॉ—

6.1. प्रस्तावना
6.2. उद्देश्य
6.3. एक्यूप्रेशर द्वारा उपचार
6.3.1. स्त्री रोगो मे एक्यूप्रेशर चिकित्सा द्वारा उपचार
6.3.2. पुरूष रोगो मे एक्यूप्रेशर चिकित्सा द्वारा उपचार
6.3.3. मस्तिष्क तथा स्नायु संस्थान मे सम्बन्धित रोग
6.4. एक्यूप्रेशर – सावधानियॉ
6.4.1. आहार सम्बन्धी सावधानी
6.4.2. विभिन्न आयु, लिंग सम्बन्धी सावधानी
अभ्यास हेतु प्रश्न
6.5. सारांश
6.6. शब्दावली
6.7. अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
6.8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री
6.10. निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना—

आधुनिक युग में चिकित्सा की कई पद्धतियॉ प्रचलित है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा के तहत एक्यूप्रेशर चिकित्सा भी काफी लोकप्रिय चिकित्सा पद्धति है। पिछले कुछ समय से यह पद्धति चीन से कई देशों में फैली है, यह पद्धति पूर्णत सुरक्षित है, इसमें किसी भी प्रकार से नुकसान नही है।

इस बात को हम जानते है कि एक्यूप्रेशर एक गहरी मालिश है जब यह गहरी मालिश मस्तिष्क व स्नायुसंस्थान से सम्बन्धित बिन्दुओं पर दी जाती है तो परिणामस्वरूप मस्तिष्क की क्रिया विधि तीव्र हो जाती है। मस्तिष्क की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है स्नायुसंस्थान स्वस्थ होकर शरीर की कार्यप्रणली को बदल देते है।

यह प्रकृति के अनुरूप क्रिया है, इसमें पूर्णरूप से विश्वास रखना चाहिये उपचार के समय धैय रखना चाहिये तथा कभी भी उकताना नही चाहिये, यदि ऐसा हुआ तो समय के साथ—साथ यह पद्धति पुनः अपना स्थान ले लेगी। जन सामान्य स्वयं अपना व परिवार का स्वास्थ्य रक्षक बन सकता है जो सबके हित मे होगा।

6.2. उद्देश्य—

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आर्य—

1. एक्यूप्रेशर द्वारा उपचार की क्रिया विधि को समझेगे।
2. महिला सम्बन्धी परेशानियो को इसके द्वारा ठीक कर सकने के प्रभाव को जानेगे।
3. एक्यूप्रेशर द्वारा पुरूष सम्बन्धी रोगो की चिकित्सा को जान सकेगें।
4. आप जानेगे कि एक्यूप्रेशर के साथ अन्य प्रकृति प्रदत्त उपचार भी लाभकारी है।
5. उपचार के समय आयु, लिंग, सम्बन्धी सावधानियो को समझ सकेगें।

6.3. एक्यूप्रेशर द्वारा उपचार—

हर कुशल चिकित्सक उपचार करते समय अपनी चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध मे कुछ आधार प्रस्तुत करते है, ऐसे ही एक्यूप्रेशर चिकित्सक भी कुछ विशेष आधार भूत तथ्यों को जानकर चिकित्सा करता है।

जैसे– एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति का यह मत है कि मनुष्य के रोगी होने का कारण है। किसी अंग विशेष मे रक्त प्रवाह का ठीक न होना या उस अंग से सम्बन्धित स्नापुसंस्थान का ठीक से काम न करना, इससे रक्त वाहिकाओं में विकृति आ जाती है। इस स्थिति में शरीर का वह अंग या तो ठंडा हो जाता है या गरम, ये दोनो ही कारण रोग होने का बोध कराते है। इसलिए एक्यूप्रेशर उपचार पद्धति का यह उद्देश्य रहता है कि प्रेशर देकर उस स्थान के रक्त का प्रवाह ठीक किया जाय जिससे रोग दूर हो जाय।

प्रसिद्ध एक्यूप्रेशर चिकित्सक एफ0एम0होस्टन के अनुसार पैरो, हाथो तथा शरीर के विभिन्न अंगो पर स्थित जो केन्द्र दबाने से दर्द करते है वहॉ से सम्बन्धित अंगो की शक्ति क्षीण हो रही होती है। इसी के परिणमस्वरूप उससे सम्बन्धित अंग में विकार आ जाता है जब उन केन्द्रो पर प्रेशर दिया जाता है तो उस शक्ति क्षीण होना स्थगित हो जाता है जिससे परेशानी दूर हो जाती है।

6.3.1. स्त्री रोगो मे एक्यूप्रेशर चिकित्सा द्वारा उपचार–स्त्री शरीर मे कुछ विशेष लक्षण व क्रियाएं होती है जो स्वस्थ रहने पर पूर्ण शारीरिक व मानसिक सौन्दर्य को बनाये रखने में सहायक है इन प्राकृतिक क्रियाओं में जब किसी भी प्रकार का अवरोध आ जाता है तो वह रोग की अवस्था कहलाती है इनमे से कुछ प्रमुख क्रियाए निम्न है–

- **मासिक धर्म–**यह मासिक धर्म लगभग चार–पॉच दिन का होता है, यदि इससे अधिक समत तक रहे तो हारमेन की असमानता तथा रोग के लक्षण समझने चाहिये। यह एक प्राकृतिक क्रिया है यह न तो कोई रोग है नही कोई अपवित्र कार्य इसलिए इसे धर्म का नाम दिया गया है, इसका नियमित होना अच्छे स्वास्थ का सूचक है इस समय शरीर में हल्की थकान, स्तनो में सूजन, अनिद्रा आदि का अनुभव होता है।

  यदि यह देर से आये, या बिल्कुल न आये, अनियमित आये या वेदना के साथ आये, या इस दौरान किसी भी प्रकार से कष्ट का अनुभव हो तो पिट्यूटरी ग्रंथि, निपल ग्रंथि व मस्तिष्क के प्रतिबिम्ब केन्द्र तथा स्नापुसंस्थान के केन्द्रो पर विशेष लम्बर व सैक्रम भाग से सम्बन्धित केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिये।
- **श्वेत पदर–**इस स्थिति में ऋतुसाव के कुछ दिन पहले या कुछ दिन बाद बिना रक्त के पानी सा आता है, यह दुर्गन्धपूर्ण होता है, इस स्थिति के रोगिणी को चक्कर आता है, हाथ–पैर दुखते है। ऐसी स्थिति में स्नायुसंस्थान के केन्द्रो पर प्रेशर देने के बाद आडिनल ग्रंथि से सम्बन्धित स्थान पर प्रेशर देना चाहिये, इसके अतिरिक्त उन अंग विशेष पर भी प्रेशर देना चाहिये जो जननांगो से सम्बन्धित है।
- **विशेष–**स्त्री सम्बन्धी सभी रोगो में मस्तिष्क, पिट्यूटरी, पीनियल, थायरॉयड, पैराथाइरॉइड तथा आड्रिनल ग्रंथी सम्बन्धी प्रतिबिम्व केन्द्रो पर प्रेशर देना आवश्यक है।

6.3.2. पुरूष रोगो मे एक्यूप्रेशर चिकित्सा द्वारा उपचार–

स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों मे इस प्रकार के रोग बहुत कम होते है, संक्रमक रोगो को छोड़कर अन्य सभी पुरूष सम्बन्धी रोगो का एक्यूप्रेशर द्वारा उपचार सम्भव है।

पुरूष सम्बन्धी विशेष रोग के दो मुख्य कारण है शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएॅ ये वे समस्याएॅ है जो युवावर्ग को तथा पुरूषों के वैवाहिक जीवन को प्रभावित करते है। **जैसे–**
नपुसंकता, शीघ्र पतन, अनैच्छिक वीय पात, शुकमेद, उत्पादन क्षमता हीनता, संमाग प्रति उदासीनता, पुरस्थ ग्रंथि का बढ़ जाना तथा अण्डकोषो के रोग आदि।

ये सभी पुरूष गर्दन के पीछे मध्य भाग में हाथ के अंगूठे से कुछ सेकण्ड के लिए प्रेशर दें, बाद मे हाथ व पैरो के अंगूठो तथा सारी अंगुलियों के अग्रभागों पर मस्तिष्क सम्बन्धी केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहिये, यह इसलिए क्योंकि पुस्षों के बहुत से रोगो का कारण मानसिक होता है इसके लिए मानसिंक शक्ति को प्रबल बनाना बहुत आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त हाथ व पैरों में स्नापुसंस्थान नभिच्रक व डायाफ्राम के प्रतिबिन्ब केन्द्रो पर भी प्रेशर दे पुरूष रोगो मे पिट्यूटरी थॅायरॉयड पैरा–थाइरॉयड ग्रंथियों के केन्द्रों पर भी प्रेशर देना जरूरी है।

6.3.3. मस्तिष्क तथा स्नायु–संस्थान से सम्बन्धित रोग–

मस्तिष्क तथा स्नायु संस्थान में यदि कुछ विकार आ जाय तो शरीर का कोई भी अंग अपना कार्य करना बन्द कर देता है, एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के द्वारा ऐसे कई रोगो का इलाज किया जा सकता है इस चिकित्सा से लाभ भी पहुचता है इन संस्थान से सम्बन्धित कुछ रोग प्रमुख है–

लकवा पक्षाघात–शरीर विज्ञान की दृष्टि से एक या अनेक तन्तुओं की संचालन शक्ति का रूक जाना, लकवा कहलाता है। जब मस्तिष्क में भली भॉति रक्त संचार नही होता या मस्तिष्क, रीढ़ की हड्डी तथा स्नायु–संस्थान में जब विकृति आ जाती है तब लकवा हो जाता है इस रोग का शरीर पर कितना प्रभाव पड़ा है। इस बात पर निर्भर करता है कि मस्तिष्क तथा स्नायुसंस्थान का कौन सा भाग कितना प्रभावित हुआ है।

सर्वप्रथम तो यह ध्यान रखना चाहिये कि तुरन्त डाक्टरी सलाह लेनी चाहिये तथा हाथ–पैरो में मस्तिष्क व स्नायु–संस्थान सम्बन्धी बिन्दुओं पर प्रेशर देना चाहिये इस रोग में जितनी जल्दी डाक्टरी उपचार व साथ–साथ जितनी, जल्दी एक्यूप्रेशर किकित्सा दी जा सके उतने ही शीघ्रता से रोगी को लाभ पहुचाया जा सकता है।

पोलियो–यह रोग बच्चों को होता है उनायक वायरस के आक्रमण के कारण होता है पहले सिरदर्द, गले का दर्द और बुखार होता है। बाद में मांसपेशिया दुखती है, बाद में मासपेशियॉ सूखने लगती है जिस कारण चलना कठिन हो जाता है।

इसके लिए हाथ व पैर के सभी प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहियें तथा मस्तिष्क, स्नायुसंस्थान, जिगर, आमायश, फेफड़े, ह्रदय, गुर्दे व अन्य साथी ग्रंथियो के प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर अवश्य ही देना चाहिये।

मिरगी–मूर्च्छा–यह कोई बड़ा रोग नही है बल्कि रोग का एक लक्षण है जब मस्तिष्क मे अचानक कोई बाधा आ जाती है तब मिरगी का दौरा पड़ता है।

कई चिकित्सकों का मानना है कि यह रोग मस्तिष्क मे कोशिकाओं की खराबी, अनुववांशिक, ऑत या पाचन की गड़बड़ी, असदनीय सदमा, सिर में चोट लगने, लम्बी बिमारी या मद्यपान के कारण होता है यह दौरा तब पड़ता जब विषाक्त पदार्थ इकट्ठा होकर ह्रदय तथा मस्तिष्क पर दबाव डालता है।

इस रोग को हमेशा दूर करने के लिए मस्तिष्क, स्नायुसंस्थान, जिगर, आमाशय तथा ऑत के प्रतिबिम्ब केन्द्रो पर प्रेशर देना चाहियें तथा पीठ व रीढ़ की हड्डी के दोनो तरफ प्रेशर देने से भी लाभ मिलता है।

नाक के नीचे तथा पैर के तलवे के नीचे ठीक मध्य में, हथेली के मध्य मे प्रेशर देने से दौरा एकदम ठीक हो जाता है। ऐसे रोगी को कच्ची सब्जियॉ, व फल खाने चाहिये। लहसुन का सेवन करना चाहिये व दिमाग पर बोझ नही पड़ने देना चाहिये।

6.4. एक्यूप्रेशर सावधानियॉ–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा देते समय व लेते समय कई सावधानियों को घ्यान मे रखना आवश्यक है–

- रोगी चिकित्सा लेते समय हाथ व पैरो को आपस में क्रास न करे।
- दबाव इतना ज्यादा हो कि रोगी को बर्दाश्त न हो, इतना कम भी न हो कि लाभ ही न मिलें।
- दिमागी परेशान व्यक्तियो को पहले बातो से सामान्य करे फिर दबाव दे।
- थके हुए व किसी भी प्रकार के नशा किये हुए व्यक्तियों को उपचार न दे।
- सादृश्य बिन्दुओ पर मेथी एवं मटर, पेपेर हेप द्वारा रोग के अनुसार 4 धंटे या पूरी रात बॉध सकते है।
- बिन्दुओं पर दबाव देने के बाद थोड झटका देकर छोड़ना चाहिये इससे खून का दौरा बढ़ता है।
- गर्भवती महिलाओं व मासिक धर्म के समय उपचार न दे।
- आपरेशन, फोडे व घाव के निशान पर उपचार नही करना चाहियें।
- बॉया हाथ व बॉया पैर पहले, फिर दांये हाथ, पैर की ओर चिकित्सा करें।

जब हम अपने चारों ओर वातावरण को देखते है तो आभास होता है कि कोई न कोई शक्ति इस दिव्य वातावरण मं निरन्तर प्रवाहित हो रही है। जो सम्पूर्ण संसार को क्रियान्वित कर रही है। तभी तो बिना किसी व्यवधान के प्रकृति के हर कार्य समय पर होता है। उसमें कभी भी कोई व्यवधान उपस्थित नही हाता। यही दिव्य प्रक्रिया हमारे जीवन में, अर्थात हमारे शरीर में एक चक्र की भांति घूमता है। हमारे शरीर में प्राणिक जीवनी शक्ति एक विद्युतीय प्रक्रिया की तरह निरन्तर प्रवाहमान रहती है। यह शरीर जब प्राकृतिक नियमों का पालन करता है तो प्रकृति भी अपना कार्य सही प्रकार से करती है। जब हम स्वयं ही शरीर में स्थित प्रकृति से छेड़छाड़ करते है उन नियमों का उलंघन करते है तो भला परिणामस्वरुप शरीर रूपी प्रकृति प्रतिउत्तर कैसे नही देगी। इसलिए प्रतिउत्तर के रूप में, उससे छेड़छाड़ करने के दण्ड स्वरुप ही वह हमें रोगी बनाती है इसी से हमारे अंगविशेष में पीड़ा होती है। मनुष्यों की तरह प्रकृति बिल्कुल नही हैं। वह दयावान है वह रोग या पीड़ा देने से पहले हमे चेताना चाहती है हमें सावधान करती है लेकिन हम उस संकेत को नही समझते या ऐसे मानिये कि हम समझना ही नही चाहते क्योंकि हम कोरी दौड़ में इतने आगे निकल आये हैं कि पीछे संवेदना की आहट हम तक नही पहुंच पाती।

ऐसे में जो कुशल चिकित्सक होता हैं वह बहुत सावधानीपूर्वक अपने रोगी की पूर्ण जॉच करने के पश्चात ही उसका उपचार करता है। पीड़ा या परेशानी होना सामान्य कारण नही हैं। उसके ठीक–ठीक कारणों का पता लगाना आवश्यक है तथा उस अंग से सम्बन्धित बिन्दु को जानना भी आवश्यक हैं। कुशल चिकित्सक उपचार देने के पूर्व एक काउन्सलिंग करता है जिसमें उसके रहन–सहन, खान–पान आदि सभी तथ्यों सम्बन्धित प्रश्न उत्तर होते है। इससे उपचार करने में सरलता होती है।

उपचार देते समय और महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस बिन्दु में दबाव देना हो वहा पर पहले सूखी मालिश कर लेनी चाहिये। यह सूखी मालिश एक प्रकार की ऐसी स्पर्श चिकित्सा होनी चाहिये कि दोनों के बीच एक आत्मीय संबंध बन जाय। उस स्थान पर सूखी मालिश करने के बाद रोगी का पूरा ध्यान उसी स्थान पर लगा रहता है। चिकित्सक जिस अंग में दबाव दे रहा हों उसे चाहियें कि वह उस बिन्दु से सम्बन्धित अंग का मन ही मन ध्यान करें। इस समय उसका मन पूर्ण रुप से शांत और तनाव रहित होना चाहियें।

6.4.1. आहार सम्बन्धी सावधानियॉ–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा पूर्णतः प्राकृतिक चिकित्सा ही है प्राकृतिक नियमों को ध्यान में रखते हुए ही इस पद्धति को अपनाया जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति में आहार–विहार का पूरा–पूरा ध्यािन रख जाता है क्योंकि चिकित्सा के समय–

- शाकाहारी भोजन लिया जाना चाहिये।
- भोजन में उम्र के आधार पर प्रोषण तत्व होने चाहियें।
- भोजन गुणवत्तापूर्ण होना चाहिये।
- भोजन तला, भुना, मिर्च–मसाले वाला न हो।
- बिना भूख लगे, अनावश्यक भोजन करना अहितकर है।
- भोजन में तरल पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये।

6.4.2. विभिन्न आयु, लिंग सम्बन्धी सावधानी–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति में बिमार, बूढ़े व बच्चों को हल्के हाथो से दबाव दिया जाता है–

- स्त्री सम्बन्धी रोगो में दबाव देते समय कुशल निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।
- बाल्यवस्था में एक्यूप्रेशर उपचार नही देना चाहिये।
- शारीरिक कमजोरी वाले व्यक्तियों के यदि उपचार लेते समय, सिर में भारीपन या चक्कर आये तो, उस स्थान पर प्रेशन देना या वहा पर लगा मैग्नेट आदि तुरन्त हटा लेना चाहिये।
- उमृदराज व्यक्तियों को $1^{1}{}_{2}$–$1^{1}{}_{2}$ मिनट में पुश या पुल विधि द्वारा ही रोगी के सामार्थ्यनुसार, व कुशल निर्देशन में प्रेशर देना चाहियें।
- मासिक धर्म व गर्भावस्था में प्रेशर द्वारा उपचार नही लेना चाहिये।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

निम्न प्रश्नों के उत्तर हॉ या नही मे दीजिए–

1. एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति क्या भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति है?
2. शारीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंगो मे रक्त संचार बाधित होने से शरीर मे विजातीय द्रव्य एकत्र होते है?
3. शरीर का कोई अंग ठंडा या गरम होना रोग का लक्षण है?
4. इस पद्धति में उपचार के लिए धन की आवश्यकता होती है?
5. क्या इस पद्धति के द्वारा आपरेशन भी होते है?
6. गर्भावस्था व मासिकधर्म मे एक्यूप्रेशर उपचार दिया जाता है?
7. मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों मे इसका उपचार संभव है?

6.5. सारांश–

वर्तमान में ऐशोआराम के जितने भी साधन है वे सभी समाज के शांति व स्वास्थ्य देते है ऐसा नही ह। इन सबको पाने की चाह में व्यक्ति इती आपाधापी में रहता है कि उसे अपने खाने–पीने व स्वास्थ्य को सहेजकर रखने का समय ही नही है।

ऐसे में एक्यूप्रेशर चिकित्सा ऐसी उपचार पद्धति है जिसमें न तो धन खर्च होता है न ही समय की बर्बादी। इस एक्यूप्रेशर उपचार पद्धति को व्यक्ति स्वयं सीख कर कही भी कभी भी ले सकता है। इसके लिए बाहर से कुछ भी खरीद कर लाने की आवश्यकता नही होती लकड़ी के एक पैनसिलनुमा यंत्र से ही प्रत्येक प्रकार के रोग का इलाज हो जाता है।

यदि व्यक्ति अपने आहार–विहार को ध्यान में रखे कुछ स्वास्थ्यवर्धक प्रेशर बिन्दुओं को प्रतिदिन गहरी मालिश करे, तो स्वास्थ्य उत्तम रहेगा जीवन सुखमय रहेगा जो परिवार समाज दोनों के लिए श्रेष्ठ कर्तव्य सिद्ध होगा अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना ही समाज की सबसे बड़ी सेवा है।

6.6. शब्दावली–

उकताना	=	थकना
क्षीण होना	=	कम होना
आपाधापी	=	अस्त–व्यस्त
सहेज कर	=	संभालकर
मैग्नेट	=	चुम्बक
बर्दाश्त	=	सहने योग्य
विकृति	=	खराबी
संक्रामक	=	फैलने वाला

6.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1. हॉ 2 हॉ 3 हॉ 4 नही 5 नही 6 नही 7 हॉ

6.8. सन्दर्भ ग्रथं सूची–

1. डा0 राजेश दीक्षित– मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान
2. डा0 गणेश नारायण चौहान– भोजन के द्वारा चिकित्सा
3. डा0 गणेश नारायण चौहान– क्या खायें, और क्यो?
4. डा0 राजीव शर्मा– एक्यूप्रेशर चिकित्सा कोर्स
5. डा0 शर्मा और चौधरी– एक्यूप्रेशर

6.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री–

एक्यूप्रेशर को समझने के लिए किताबो के अतिरिक्त, विभिन्न एक्यूप्रेशर उपकरण आदि।

6.10. निबन्धात्मक प्रश्न–

1. एक्यूप्रेशर से आप क्या समझते है, इसके द्वारा किये जाने वाले उपचार इसके द्वारा किये जाने वाले उपचार को स्त्री रोग के सम्दर्भ में समझाइये?
2. मस्तिष्क सम्बन्धी रोगो में क्या इस पद्धति का पूरा–पूरा होता है, अपने तथ्यों के द्वारा स्पष्ट कीजिए?
3. आहार–विहार को स्पष्ट करते हुए एक्यूप्रेशर सम्बन्धी सावधनियों को बताइये?
4. एक्यूप्रेशर एक सम्पूर्ण उपचार पद्धति है, इस सन्दर्भ में एक निबन्ध लिखिए?

इकाई – 7 एक्युपंक्चर का अर्थ एवं इतिहास

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 एक्युपंक्चर का अर्थ एवं परिभाषा
7.4 एक्युपंक्चर का इतिहास
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर स्व उपचार की एक सहज विधा है तथा उपचार बहुत ही सरल, सस्ता तथा उपयोगी है। इस उपचार का कोई खास प्रति प्रभाव भी नहीं है। एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर के द्वारा सभी प्रकार के रोगों का उपचार संभव है। भारत एक गरीब एवं उन्नतशील देश है। देश की एक तिहाई जनता अर्थात् 45 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं। ये लोग बीमार होने पर बिना उपचार के कष्ट पाने को विवश है। देश की एक तिहाई जनता मध्य आय वर्ग की है। ऐसे में एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर उपचार सबको स्वास्थ्य प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में एक्युपंक्चर के अर्थ एवं विभिन्न ग्रन्थों के परिभाषाओं से परिचित होंगे। एक्युपंक्चर के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा एक्युपंक्चर के तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें एक्युपंक्चर के सिद्धान्तों का निर्माण करने वाले पृथक–पृथक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि एक्युपंक्चर के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको एक्युपंक्चर के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1. एक्युपंक्चर के शाब्दिक व गूढ़ अर्थो का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2. एक्युपंक्चर के विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
3. विभिन्न ग्रन्थों में एक्युपंक्चर के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
4. एक्युपंक्चर के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

7.3 एक्युपंक्चर का अर्थ एवं परिभाषा

एक्युप्रेशर में शरीर के कुछ बिन्दुओं पर दबाव देकर उपचार करते हैं। इन बिन्दुओं को Acupoints कहते हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर जब सुई डालकर उपचार किया जाता है तो उसे Acupuncture कहते है। इन्हीं बिन्दुओं पर जब मेथी दाना और अन्य seed लगाकर उपचार करते हैं तो इसे Seed therapy कहते हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर जब

छोटे–छोटे magnet लगाकर उपचार करते हैं तो उसे Magnet therapy कहते हैं। इन्हीं बिन्दुओं पर जब colour लगाकर उपचार करते है तो इसे Colour therapy कहते हैं। उपचार का तरीका कोई भी हो उपचार इन्हीं Acupoints पर दिया जाता है।

एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति पुरातन भारत वर्ष में पैदा हुई, चीन में पली बढ़ी तथा पाश्चात्य जगत में आधुनिक काल में लोकप्रिय हुई। भारत वर्ष में जहाँ महिलायें बिन्दी लगाती हैं, जहाँ माँग भरती है, जहाँ नाक, कान छेदे जाते हैं, जहाँ बिछिया, अणत, चूड़ियाँ आदि पहने जाते हैं ये सब एक्युपंक्चर उपचार के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। महावत का छोटा सा लड़का विशालकाय हाथी का नियंत्रण अंकुश द्वारा हाथी के Acupoints को दबाकर करता है।

विगत पांच हजार वर्षों से चीन में एक्युप्रेशर एवं एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति से सफलतापूर्वक उपचार किया जा रहा है। समय–समय पर एक्युपंक्चर के विद्वानों ने शोध ग्रन्थ लिखे। ये शोध ग्रन्थ आधुनिक एक्युपंक्चर चिकित्सा का आधार है। चीन में 2500 वर्षों पूर्व Huang Di नामक सम्राट हुए। सम्राट Huang Di एक्युपंक्चर के मर्मज्ञ थे। सम्राट अपने Court physian Bo से एक्युपंक्चर पर चर्चा किया करते थे। ये चर्चाएं अकबर बीरबल संवाद की तरह चीन में बहुत प्रसिद्ध हुई। सम्राट Huang Di चीन में Yellow Emperor के नाम से विख्यात हुए एवं court physion Bo के संवादों को चीन की गीता रामायण के समान है। इसी प्रकार एक्युपंक्चर के विद्वानों ने समय–समय पर अपने अनुभवों को ग्रन्थ रूप में लिखा।

भारत वर्ष में Ayurvedic Acupuncture पर चरक, सुश्रुत आत्रेय आदि विद्वानों ने महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी। वेदों में भी एक्युपंक्चर यानि मर्मभेदन का विस्तृत वर्णन मिलता है।Acupoints को आयुर्वेद में मर्म बिन्दु कहते हैं। ऊर्जा प्रवाह पथ (Meridian) को आयुर्वेद में नाड़ी कहते हैं।

चीन में 1950 के दशक में चेयरमैन माओं ने लाखों लोगों को एक्युपंक्चर का प्रशिक्षण दिलवाया तथा एक्युपंक्चर किट देकर चीन के गांव–गांव में उपचार करने को भेज दिया। इन एक्युपंक्चर के डाक्टरों के पास पहनने को जूते तक न थे। पाश्चात्य देशों के लोग इनको Bare footed doctors के नाम से पुकारते थे। 1962 में अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन ने चीन की यात्रा की। महामहिम राष्ट्रपति के साथ गये एक पत्रकार के पेट में appendicitis का भयंकर दर्द होने लगा। राष्ट्रपति के डाक्टरों ने पत्रकार के एपेन्डिक्स का तत्काल आपरेशन करने की सलाह दी। चीन के प्रधानमंत्री की सलाह पर पत्रकार को एक्युपंक्चर का उपचार दिया गया। $St36^{1/2}$ बिन्दु पर दाहिने पैर में एक सुई डालते ही पत्रकार का एपेन्डिक्स का दर्द आश्चर्यजनक रूप से ठीक हो गया। राष्ट्रपति निक्सन प्रभावित हुए। लेडी निक्सन ने यात्रा के बाकी तीन दिनों तक एक्युपंक्चर के बारे में विस्तृत जानकारी ली। अमेरिका लैटते समय राष्ट्रपति निक्सन कुछ एक्युपंक्चर विद्वानों को अमेरिका अपने साथ ले गये। इसके बाद धीरे–धीरे चीनी एक्युपंक्चर का ज्ञान पाश्चात्य

देशों में फैल गया। अंग्रजी में एक्युपंक्चर की पुस्तकें लिखी जाने लगी। एक्युपंक्चर का विशेष साहित्य पाश्चात्य देशों के माध्यम से भारत में भी आने लगा।

प्राचीन काल से ही हमारे देश में एक्युप्रेशर, एक्युपंचर पद्धति का उपयोग स्वास्थ्य अर्जन हेतु किसी न किसी रूप में सदियों से होता रहा है। ऋषि मुनियों द्वारा शरीर के विभिन्न बिन्दुओं पर दबाव देकर अथवा मालिश द्वारा उपचार किया जाता रहा है। इन बिन्दुओं का उल्लेख हमारे प्रचीन ग्रंथ आयुर्वेद में 'मर्म' के रूप में हुआ है। कालांतर में सुची भेदन के द्वारा भी उपचार होता रहा, बाद में यह पद्धति बौद्ध धर्म के अनुयायी द्वारा लंका, चीन व जापान ले जाई गई और इसका सम्पूर्ण एवं सम्यक् विकास चीन देश में हुआ। आज विभिन्न देशों जैसे–अमेरिका में रिफलेक्सोलॉजी, जापान में शियात्सु, चीन में एक्युपंचर, जर्मनी में इलेक्ट्रो एक्युपंचर, कोरिया एवं रूस में सर पार्क जी द्वारा प्रतिपादित सुजोक एक्युपंचर के रूप में।

एक्युपंचर दो शब्दों के योग से बना है। एक्यु = सूचिका एवं पंचर = भेदन। अर्थात शरीरस्थ विभिन्न बिन्दुओं का सूचिका भेदन द्वारा स्वास्थ्य अर्जित करना। इन बिन्दुओं पर अंगुलियों का प्रयोग करके पंचर के स्थान पर दबाव दिया जाना एक्युप्रेशर कहलाता है तथा इन्हीं बिन्दुओं पर केवल रंगों का प्रयोग कर उपचार करना ही रंग चिकित्सा है।

परिभाषाएँ :– विभिन्न विद्वानों ने एक्युप्रेशर की अलग–अलग परिभाषायें प्रस्तुत की है, जो निम्न है :–

डॉ. पार्क जे.वु. :– अपनी पुस्तक 'सुक्ष्म अभिनव एक्युप्रेशर–एक्युपंचर' में लिखते हैं कि प्रकृति ने हमारे हाथों एवं पैरों की संरचना इस ढ़ग से की है कि उनमें शरीर के सभी अंगों एवं अवयवों से सादृश्यता है। इन सादृश्य केन्द्रों पर दबाव देकर या अन्य माध्यमों से शरीर की ऊर्जा शक्ति को उद्वेलित करके शारीरिक असहजता का निवारण किया जा सकता है।

डॉ0 फिट्जजेराल्ट :– इनका मानना है कि पैरों के तलुवों और हथेलियों में स्थित ज्ञान तन्तु ढक जाते हैं जिससे शरीर की विद्युत चुम्बकीय शक्ति का भूमि से सम्पर्क नहीं हो पाता, किन्तु इस विधि के उपचार से ज्ञान तन्तुओं के छोर पर हुआ जमाव दूर हो जाता है और शरीर की विद्युत चुम्बकीय तरंगों का पुनः मुक्त संचरण होने लगता है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य :– शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जीवनी शक्ति एक विशेष अदृश्य रेखाओं से आती है जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीर से है। उन बिन्दुओं पर सुई का स्पर्श (एक्युपंचर) या थोड़ा सा दबाव (एक्युप्रेशर) से दर्द या रोग तुरंत समाप्त हो जाता है। जटिल शल्य चिकित्सा से उत्पन्न दर्द को भी इन दबाव से आराम मिल सकता है।

(प्राणशक्ति एक दिव्य विभूति पृ. 4.30)

डॉ. जे. पी.अग्रवाल :– 'एक्युप्रेशर/एक्युपंचर वह विधा है जिसमें शरीर के किसी बिन्दु पर उपचार देकर ऊर्जा का विनिमयन किया जा सके।'
(चरक आयुर्वेदिक एक्युप्रेशर)

एम.पी. खेमका जी :– शरीर के रक्त (Blood), व Body fluids के स्थानान्तरण की विधा को एक्युप्रेशर/एक्युपंचर कहते हैं।

शरीर के किसी निश्चित बिन्दुओं पर उपचार देकर ऊर्जा के रुकावट को नियमित करना व ऊर्जा को सन्तुलित कर शरीर को ठीक करने की विधा को एक्युप्रेशर/एक्युपंचर कहते हैं।

(Adwance Acupressure/Acupuncture - I)

अभ्यास प्रश्न – क

1. सम्राट ……….. चीन में …………. के नाम से विख्यात हुए।
2. शरीर के रक्त (Blood), व Body fluids के स्थानान्तरण की विधा को ……………… …..कहते हैं।
3. एक्युपंक्चर में 'एक्यु' का अर्थ है –

   क. जीमी ख. रोलर

   ग. सुई घ. इनमें से कोई नहीं

7.4 एक्युपंक्चर का इतिहास –

जब से मनुष्य का सभ्य समाज के रूप में विकास हुआ है तब से ही चिकित्सक लगातार इस कोशिश में हैं कि अधिक से अधिक प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों तथा औषधियों की खोज की जाए ताकि मनुष्य लम्बे समय तक निरोग रह सके और अगर रोगग्रस्त हो भी जाए तो शीघ्र स्वस्थ हो सके।

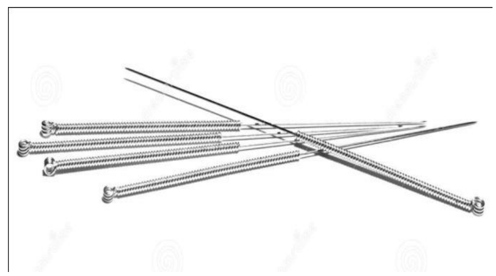

पुरातन काल से लेकर आधुनिक समय तक शरीर के अनेक रोगों तथा विकारों को दूर करने के लिए जितनी चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हुई है उनमें एक्युप्रेशर–एक्युपंक्चर सबसे पुरानी तथा सबसे अधिक प्रभावशाली पद्धति है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति का उद्भव स्थल या प्रथम अविष्कारक भारतवर्ष ही है। प्राचीन काल से ऋषि–मुनि इस चिकित्सा पद्धति का प्रयोग करते रहे हैं। एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति पूर्णतया प्राकृतिक चिकित्सा है। मर्म चिकित्सा या नाड़ी शास्त्र हमारी संस्कृति की अनुपम देन है, इनमें नाड़ियों या मर्म बिन्दुओं के अंतिम, मध्य तथा आरम्भिक बिन्दुओं पर दबाव डालकर नाड़ी तंत्र को उत्तेजित व अनुत्तेजित कर सभी प्रकार के रोगों का इलाज किया जाता था। मालिश चिकित्सा पद्धति का मूल आधार एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा को ही माना जाता है।

इतिहास विदों का मानना है कि भगवान बुद्ध के समय में यह चिकित्सा पद्धति अपनी उन्नति के चरम पर थी। बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ इसका भी विस्तार चीन, जापान, कोरिया आदि पूर्वोत्तर देशों में हुआ तथा वे वहाँ के लोगों के रहन–सहन में रस बस गई जो कि एक्युपंचर के नाम से प्रसिद्ध है। यही कारण है कि एक्युपंचर में उन्हीं बिन्दुओं का प्रयोग किया जाता है जो एक्युप्रेशर के मूल में विद्यमान है। विद्वानों का मत है कि लगभग 4000 वर्ष पूर्व यह चिकित्सा भारत वर्ष में अपने सर्वोत्तम विकास पर थी तथा

यहाँ से इस चिकित्सा का विकास पूर्वोत्तर देशों में फैला जहाँ पर इसे आधुनिक विकास के साथ जोड़कर एक्युपंचर का नाम दे दिया गया ।

डॉ. एंटन जयसूर्या के अनुसार इस चिकित्सा पद्धति के श्रीलंका तथा भारत में ऐसे शिलालेख तथा प्रमाण मिले हैं जो लगभग 2000 वर्ष से 4000 वर्ष पुराने हैं। ये शिलालेख विभिन्न एक्युपंचर बिन्दुओं को दर्शाते हैं तथा इन शिलालेखों के माध्यम से न केवल मानव मात्र की चिकित्सा के प्रमाण मिलते हैं बल्कि पशुओं की चिकित्सा के भी प्रमाण मिलते हैं जिन्हें युद्ध में घायल हाथी, घोड़ों की चिकित्सा के लिए प्रयोग किया जाता था। (एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह)

एक्युपंक्चर पद्धति कितनी पुरानी है तथा इसका किस देश में आविष्कार हुआ, इस बारे में अलग–अलग मत हैं। आयुर्वेद की पुरातन ग्रन्थों में प्रचलित एक्युपंक्चर पद्धति का वर्णन है, इसे आयुर्वेद में सुचिभेदन के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में चीन से जो यात्री भारतवर्ष आए, उनके द्वारा इस पद्धति का ज्ञान चीन में पहुँचा जहाँ यह पद्धति काफी प्रचलित हुई। चीन के चिकित्सकों ने इस पद्धति के आश्चर्यजनक प्रभाव को देखते हुए इसे व्यापक तौर पर अपनाया और इसको अधिक लोकप्रिय तथा समृद्ध बनाने के लिए काफी प्रयास किया। यही कारण है कि आज सारे संसार में यह चीनी चिकित्सा पद्धति के नाम से मशहूर है।

डॉ. आशिमा चटर्जी, भूतपूर्व एम.पी. ने 2 जुलाई 1982 को राज्य सभा में यह रहस्योद्घाटन करते हुए कहा था कि एक्युपंक्चर का अविष्कार चीन में नहीं अपितु भारतवर्ष में हुआ था। इसी प्रकार 10 अगस्त, 1084 को चीन में एक्युपंचर सम्बन्धी हुई एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में बोलते हुए भारतीय एक्युपंचर संस्था के संचालक डॉ. पी.के. सिंह ने तथ्यों सहित यह प्रमाणित करने की कोशिश की थी कि एक्युपंक्चर का अविष्कार निश्चय ही भारतवर्ष में हुआ था।

समय के साथ जहाँ इस पद्धति का चीन में काफी प्रचार बढ़ा, भारतवर्ष में यह पद्धति लगभग लुप्तप्राय सी हो गयी। इसके कई प्रमुख कारण थे। विदेशी शासन के कारण जहाँ भारतवासियों के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया वहाँ सरकारी मान्यता के अभाव के कारण एक्युपंक्चर सहित कई अन्य प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धतियाँ पुष्पित–पल्वित न हो सकी।

यद्यपि आधुनिक युग में चिकित्सा के क्षेत्र में कई नई पद्धतियाँ प्रचलित हो गई है पर चीन में एक्युपंक्चर काफी लोकप्रिय पद्धति है। गत कुछ वर्षों में चीन से इस पद्धति का ज्ञान संसार के अनेक देशों में पहुँचा है। भारत सहित कई देशों में चिकित्सक इस पद्धति का चीन से ज्ञान प्राप्त करके आए हैं।

ऐसा अनुमान है कि छठी शताब्दी में इस पद्धति का ज्ञान सम्भवतः बौद्ध भिक्षुओं द्वारा चीन से जापान में पहुँचा। जापान में इस पद्धति को शियात्सु (SHIATSU) कहते हैं। शियात्सु जापानी शब्द है जो दो अक्षरों 'शि' 'SHI' अर्थात अँगुलि तथा 'ATSU' आतसु अर्थात दबाव से बना है। शियात्सु पद्धति के अनुसार केवल हाथों के अँगूठों अथवा अँगुलियों के साथ ही विभिन्न मान्यता 'शियात्सु' केन्द्रों पर प्रेशर दिया जाता है।

7.5 सारांश –

एक्युपंक्चर चिकित्सा की एक ऐसी आश्चर्यजनक चिकित्सा पद्धति है। जिसमें चिकित्सा औषधि रहित होती है और इस औषधि रहित चिकित्सा पद्धति में कई रोगों का उपचार आश्चर्यजनक रूप से प्राप्त हुआ है। यह एक वैकल्पिक चिकित्सा विधा की शाखा है।जिसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न बिन्दुओं पर वैज्ञानिक विधि द्वारा पंक्चर कर चिकित्सा की जाती है।

एक्युपंक्चर चिकित्सा में हमारे शरीर के निर्दिष्ट बिन्दुओं पर निश्चित दबाव देकर ऊर्जा प्रवाह का संतुलन स्थापित किया जाता है। इसके द्वारा रोगग्रस्त अंग के ऊर्जास्तर को घटा–बढ़ाकर रोगों का उपचार सहज स्वाभाविक रूप से किया जाता है। अतः यह चिकित्सा पद्धति एक निरापद व प्रतिप्रभाव मुक्त है।

7.6 शब्दावली

अंकुश – लोहे का छोटा सा हथियार जो कि महावर के पास होता है।
सम्यक् – ठीक–ठीक ।
सादृश्यता – समरूप, के समान, वैसा ही, प्रतिरूप, तुलनात्मक।
शिलालेख – प्राचीन काल में पत्थरों पर लिखा गया वाक्य या शब्द।
विनिमयन – आदान–प्रदान।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. Huang Di , Yellow Emperor 2. एक्युप्रेशर/एक्युपंचर 3. सुई
अभ्यास प्रश्न – ख	1. भारतवर्ष 2. सूचिभेदन

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह
2. एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
3. एडवांस एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भाग 1 – माता प्रसाद खेमका
4. एक्युप्रेशर, जीर्ण रोगों का सफल प्राकृतिक उपचार – डॉ एल.एन.कोठारी, डॉ अमृत गुर्वेंद्र

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक्युपंक्चर क्या है ? एक्युपंक्चर के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2. एक्युपंक्चर के अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाओं का सविस्तार वर्णन करें ?
3. एक्युपंक्चर के मूल उत्पत्ति स्थान को सुस्पष्ट करें ?
4. एक्युपंक्चर के इतिहास का सविस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ?

इकाई – 8 एक्युपंक्चर के सिद्धान्त व विधियाँ

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 एक्युपंक्चर के सिद्धान्त
  8.3.1 यिन–यांग सिद्धान्त
  8.3.2 पंचतत्व का सिद्धान्त
8.4 एक्युपंक्चर द्वारा रोग निदान विधि
  8.4.1 एक्यु बिंदु मापन विधि
  8.4.2 उपचार विधि
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर का जन्मस्थल भारत देश को ही माना जाता है। अत्यन्त प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में इसके सूत्र बिखरे हुए मिलते हैं। जहाँ एक ओर उपचार से सम्बन्धित प्राचीन गन्थों में **''मर्मभेदन''** शब्द का प्रयोग एक्युपंक्चर की ओर संकेत करता है वहीं महाभारत काले के प्रसिद्ध प्रसंग **''भीष्मपितामह का शरशय्या पर लेटकर इच्छा मृत्यु का वरण करना''** इस बात का द्योतक है कि इस समय तक यह विधा उपचार की एक सक्षम विधा के रूप में व्यवस्थित हो चुकी थी। इन सब महत्वपूर्ण उद्धरणों के होते हुए भी प्राचीन काल में उपचार की एक व्यवस्थित विधा के रूप में एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भारत में प्रचलित नहीं रहा। इस विधा को उपचार की एक व्यवस्थित विधा के रूप में अपनाकर इसे जीवन्त बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य चीन देश के विद्वानों/उपचरकों ने किया। आज जिस रूप में एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर पूरे विश्व में पुनः प्रसारित हो रहा है उसके मूल में चायनीज एक्युपंक्चर का वह व्यवस्थित रूप है जो सैकड़ों वर्षों तक चीन में उपचार की एकमात्र विधा के रूप में प्रतिस्थपित रहा। अतः आधुनिक चिकित्सा जगत में एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर का आधार परम्परागत चायनीज औषधि (Traditional Chinese Medicine) ही है। उपचार की इस विधा को समझने के लिए परम्परागत चायनीज औषधि (T.C.M.) का विस्तृत अध्ययन करना अनिवार्य है।

प्रस्तुत इकाई में एक्युपंक्चर के सिद्धान्त व विधियों से परिचित होंगे। एक्युपंक्चर के विभिन्न सिद्धान्तों का अवलोकन होगा तथा उनके विधियों का तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। इसमें एक्युपंक्चर के यिन–यांग एवं पंचतत्वो का निर्माण व विध्वंस करने वाले पृथक–पृथक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि एक्युपंक्चर के इन विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन कर आपको इसके विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1 एक्युपंक्चर के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2 एक्युपंक्चर के विभिन्न तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
3 निर्माण व विध्वंस चक्रों के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
4 एक्युपंक्चर के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

8.3 एक्युपंक्चर के सिद्धान्त –

एक्युपंक्चर विज्ञान एक निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों पर आधारित है। इनमें प्रथम सिद्धान्त है – यिन–यांग की चिकित्सा का।

8.3.1 यिन–यांग सिद्धान्त :–

चायनीज एक्युपंक्चर के अनुसार सम्पूर्ण बह्माण्ड का संतुलन स्थूल रुप से दो परस्पर विरोधी स्वरुप के होते हुए भी एक दूसरे के पूरक बलों पर आधरित है। इसे यिन यांग की संज्ञा दी है। सृष्टि की सर्जना किसी भी धर्म के अनुसार दो परस्पर विपरीत बलों के समागम के फलस्वरुप हुई है। यह प्रकृति नियमन का प्रमुख नियम है। सृष्टि के प्रत्येक वस्तु को हम यिन–यांग (Yin Yang) के अन्तर्गत विभाजित कर सकते हैं। यिन और यांग चीनी भाषा के दो शब्द हैं। ये दोनों शब्द कुछ विशिष्ट गुणों को अभिव्यक्त करते हैं। यिन शब्द लगातार, क्रमिक, अंधेरा, ज्ञात होना, छुपा रहना आदि एक समान गुणों वाले समूह को व्यक्त करता है किन्तु यांग इसके विपरीत प्रवृत्तियों के समूह जैसे–अनियमित, अज्ञात, अचानक, खुला हुआ, दिन आदि को व्यक्त करता है। यिन–यांग दो ऐसी विपरीत प्रवृत्तियाँ हैं जिनके बिना प्रकृति का नियमन संभव नहीं है। जैसे दिन के बाद रात का होना।

चायनीज एक्युपंक्चर के अनुसार यिन वह बल है जो क्षमता के रूप में किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति में विद्यमान है दूसरी तरफ यांग वह बल है जो कार्य के रूप में अथवा अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हो चुका है। यिन–यांग एक सापेक्ष अवधारणा है। प्रकृति में निरपेक्ष रूप से केवल यिन अथवा निरपेक्ष रूप से यांग का अस्तित्व संभव नहीं है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति में इन दोनों बलों का किसी न किसी अनुपात में रहना अनिवार्य है। चायनीज एक्युपंक्चर में इस स्थिति को व्यक्त करने के लिए सृष्टि को निम्न चित्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।

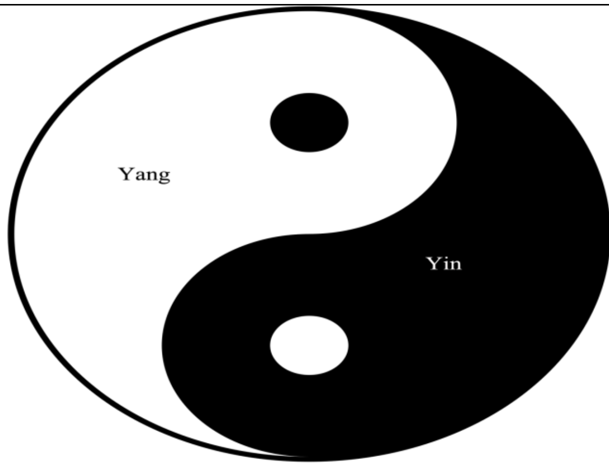

अतः सम्पूर्ण जगत् के भौतिक एवं पराभौतिक गतिविधियों को निम्न प्रकार Yin Yang के रूप में जान सकते हैं।

यिन और यांग में अन्तर

	यिन (Yin)	**यांग** (Yang)
1.	इसमें ठोस अंग (Solid Organ) आते हैं।	इसमें खोखले अंग (Hollow Organ) आते हैं।
2.	मादा (Female)	नर (Male)
3.	जीर्ण अवस्था (Chronic)	तीव्र अवस्था (Acute)
4.	हाथ तथा पैर में अन्दर की तरफ स्थित रहते हैं।	इसमें बाहर की तरफ स्थित रहते हैं।
5.	रात या काला	दिन या सफेद
6.	निर्बल	बलवान
7.	नीचे	ऊपर
8.	स्थिर	अस्थिर
9.	क्षैतिज	उर्ध्व
10.	दांयें	बांयें
11.	शीततर	ऊष्णतर

यिन और यांग के अंग

	यिन	**यांग**
1.	जिगर, यकृत (Liver)	पित्ताषय (Gall Bladder)
2.	हृदय (Heart)	छोटी आंत (Small Intestine)
3.	प्लीहा (Spleen)	जठर (Stomach)

4. फेफड़े (Lung) बड़ी आंत (Large Intestine)
5. मूत्रपिंड गुर्दा (Kidney) मूत्राषय (Urinary Bladder)
6. हृदयावरण (Pericardium) **तीनखाली जगह**(Triple Warmer)

ऊपर लिखित यिन तथा यांग अवयवों का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रहता है। यिन–यांग दो परस्पर विपरीत संज्ञाएँ हैं परन्तु एक–दूसरे के पूरक भी हैं। इन्हें हम चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं। यिन काला हिस्सा तथा यांग सफेद हिस्सा दर्शाता है। अतः यिन या यांग सम्पूर्ण रूप से रह नहीं सकता। प्रत्येक यिन में कुछ यांग होता है और प्रत्येक यांग में कुछ यिन होता है। तभी इस सृष्टि का संतुलन संभव है। उदाहरण : मौसम में सर्दी यिन है और गर्मी यांग है। अतः यदि निरन्तर सर्दी/गर्मी बनी रहे तो प्रकृति असंतुलित हो जायेगी। इसी प्रकार हमारे शरीर में यिन–यांग समान रूप में विद्यमान हैं। जैसे अमाशय यांग क्योंकि वह तभी काम करता है जब भोजन आता है परन्तु वह निरन्तर खून के दौरे से प्रभावित रहता है, उसकी संरचना निश्चित रहती है। अतः वह यिन है। किसी भी व्यक्ति/वस्तु के कार्य को यांग दर्शाता है और उसके आकार को यिन दर्शाता है।

जैसे – Stucture is Yin & Function is Yang

यिन–यांग के सिद्धान्त को हम दो के सिद्धान्त से भी समझ सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति/ वस्तु एक समय पर यिन हो तो दूसरी व्यक्ति/वस्तु के सापेक्ष वह यांग हो जाती है। जैसे कुर्सी, पलंग की तुलना में यांग है और पलंग बड़े आकार के कारण यिन है। अतः बड़ा यिन और छोटा यांग। इसी कुर्सी को यदि हम एक डिब्बे से तुलना करें तो कुर्सी यिन और डिब्बा यांग होगा। अतः एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु की तुलना में यिन या यांग हो सकती है।

इसी प्रकार हम अपने शरीर में Yin Yang Duality के सिद्धान्त को पहचान सकते हैं। उदाहरण हृदय का कार्य है रक्त को पूरे शरीर में संवितरित करना जो हृदय की यांग क्रिया है। साथ ही हृदय रक्त को पूरे शरीर से वापस एकत्र करता है अतः ये यिन क्रिया भी दर्शाता है। हृदय में हम दोनों क्रियाओं को देख सकते हैं परन्तु मुख्यतः हृदय निरन्तर कार्य करता है अतः यह एक यिन अंग है। यदि हृदय की वास्तविक संरचना में कोई परिवर्तन आता है तो उसका यिन प्रभावित है और यदि उसके क्रियाशीलता या कार्य में अनियमितता आई तो उसका यांग प्रभावित हुआ है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति/वस्तु में यिन और यांग अपना स्थान बदलता रहता है। इसका उपचार सरल रूप में प्रतिबिम्ब केन्द्रों द्वारा किया जाता है। मनुष्य की स्वस्थ अवस्था में 'ची' अर्थात जीवनीय शक्ति का बिना किसी रुकावट के शरीर में अविरत संचार होता रहता है। इसकी शुरूआत फेफड़ों से होती है। ये शक्ति सभी मेरेडियान में बहती रहती है। 'ची' के संचार में रुकावट होने से ही रोग उत्पन्न होते हैं।

यिन और यांग का शरीर में संतुलित स्थिति में रहना ''स्वास्थ्य'' है और इनमें से किसी एक का कम होना और दूसरे का अधिक प्रमाण में रहना ''रोगावस्था'' कहलाती है।

एक्यूप्रेषर और एक्यूपंचर के द्वारा इस जीवनीय शक्ति के संचार को संतुलित किया जाता है।

यिन–यांग सिद्धान्त का प्रयोग हम अनेक बीमारियों के उपचार में कर सकते हैं। जैसे यिन – लगातार काम करने वाले अंग यकृत, हृदय, मस्तिष्क, प्लीहा, फेफड़े, गुर्दा आदि हैं। वैसे ही कभी–कभी काम करने वाले अंग यांग कहलाते हैं जैसे– पित्ताशय, छोटी आंत, रीढ़, आमाशय, बड़ी आंत, मूत्राशय आदि। इनका उपचार इन प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर दबाव देकर करते हैं। यदि यकृत के सादृश्य पर दबाव देने से दर्द हो तो यकृत (Liver) का रोग हो सकता है। इसी प्रकार यदि गुर्दा (Kidney) के सादृश्य बिन्दु पर दबाव देने से दर्द महसूस हो तो गुर्दे के रोग की सम्भावना होती है। अतः इन बिन्दुओं पर नियमित दबाव देकर हम किसी भी गम्भीर यिन रोग के प्रवेश से बच सकते हैं। अतः यिन और यांग हमारे शरीर में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि यांग तकलीफ या बिमारी पर नियन्त्रण न पाया गया तो वह यिन में परिवर्तित होकर एक गम्भीर रूप धारण कर लेती है। जैसे – साधरण सर्दी–खांसी यांग रूप में होती है परन्तु यदि ये नियमित बनी रहे तो यिन अंग फेफड़े की बिमारी में परिवर्तित होकर टी.बी., अस्थमा आदि बन जाती है।

अभ्यास प्रश्न – क

1. यिन–यांग एक .... अवधारणा है।
2. यिन ऊर्जा की प्रकृति है –

   क. ठण्डा   ख. गर्म
3. पित्ताशय किस प्रकार के अंग है –

   क. यिन   ख. यांग

8.3.2 पंचतत्व का सिद्धान्त :–

एक्युपंक्चर एवं एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त के अनुसार हमारा शरीर ही नहीं बल्कि समस्त संसार पंच तत्वों से निर्मित है। शरीर के प्रमुख 12 अवयव भी इन्हीं पंच महाभूतों से निर्मित है। चीन का ग्रन्थ Nei Jing के अनुसार ये पंच तत्व हैं, लकड़ी (Wood) अग्नि (Fire), पृथ्वी (Earth), जल (Water) एवं धातु (Metal)। इन्हीं पंच तत्वों से सृष्टि के सारे पदार्थ निर्मित हैं। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ इन पंच तत्वों में से एक या अनेक से सम्बन्धित रहते हैं।

भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में भी पंच तत्वों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। ये पंच तत्व वायु, अग्नि, जल पृथ्वी और आकाश है। इन पंचतत्वों का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद में निम्न प्रकार से मिलता है।

आत्मनो आकाषः सम्भूतः। आकाषात वायुः।
वायोरग्निः अग्नेः आप । अदभ्यः पृथ्वी ।
प्रथिव्यो औषधयः। औषधीभ्योन्नं। अन्नात् पुरुषः।।

अर्थात आत्मा से आकाश पैदा हुआ तथा आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न तथा अन्न से पुरुष मात्र की उत्पत्ति हुई। अर्थात यह सम्पूर्ण मानवीय देह इन पंच महाभूतों का ही संधात याने समन्वित रूप है।

पंच तत्त्व सिद्धान्त ,एक्युप्रेशर उपचार पद्यति का प्रमुख आधार है। ये पांच तत्त्व, शरीर के नियामक है। इन तत्त्वों से बना शरीर यिन–यांग के सिद्धान्त एवं इन तत्त्वों से सम्बन्धित ऊर्जाएँ – वायु (चंचलता), उष्णता, आद्रता, भावुकता (रूखापन) एवं शीतलता पर आधारित है। चीन देश के दार्शनिकों ने पंच तत्त्वों में थोड़ा सा परिर्वतन करके वायु के स्थान पर काष्ठ (Wood) तथा आकाश (Space) के स्थान पर धातु (Matel) प्रस्थापित किया है। इन पांचों ऊर्जाओं के समवेद स्वरूप को जैव ऊर्जा (Bio energy) कहते हैं जो विभिन्न देशों में विभिन्न नामों जैसे– चीन में 'ची', जापान में 'की', भारत में 'प्राण' तथा पाश्चात्य देशों में 'Vital force' से जाना जाता है। इस प्रकार एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्यति पूर्णतया प्रकृति के सिद्धान्तों पर आधरित है।

इस चक्र द्वारा तत्त्व व ऊर्जा दो विभिन्न यिन–यांग रूपों में प्रकट होती है। प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति जिस तत्त्व से निर्मित हैं, वही ऊर्जा प्रकट करते हैं। अतः हम कह सकते हैं **'तत्त्व'** यिन गुण है और **'ऊर्जा'** यांग गुण है। जहाँ तत्त्व किसी वस्तु के **निर्माण** (Structure) का ज्ञान कराता है वहीं ऊर्जा उसकी **क्रियाशीलता** (Function) दर्शाती है। अतः तत्व–ऊर्जा यिन–यांग सिद्धान्त के समरूप हैं व पंचतत्व सिद्धान्त का प्रकृति संतुलन में विशेष भूमिका प्रमाणित करते हैं।

पंच तत्त्व सिद्धान्त का सार –

1. हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित है।
2. पंच तत्त्वों की सम्यावस्था ही स्वास्थ्य है।
3. इनमें से किसी एक या एक से अधिक तत्वों के असंतुलन ही रोग का कारण है।

प्राचीन समय से ऐसा माना जाता है कि मनुष्य का शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना हुआ है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश। प्रत्येक तत्वों का हमारे शरीर में अपनी तरह से अलग–अलग प्रभाव है। प्रत्येक व्यक्ति में इन पांच तत्वों में से किसी एक तत्व का प्रभाव ज्यादा होता है। इसलिये प्रभावी तत्वों का असर उस व्यक्ति के गुण व्यवहार में दिखाई देते हैं। जब इनमें से कोई भी तत्व शरीर में असंतुलित हो जाता है यानि उस तत्व विशेष की मात्रा शरीर में आवश्यकता से कम अथवा अधिक हो जाती है तो शरीर बीमार हो जाता है और व्यक्ति असहज महसूस करने लगता है। ऐसे में असंतुलित तत्व को यदि संतुलित कर दिया जाये तो बीमारी पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि शरीर में जल तत्व बढ़ जाये तो शरीर के विभिन्न अंगों में सूजन आ सकती है और उन अंगों को दबाने से वहाँ गड्ढा पड़ने लगता है। इसका उपचार शरीर में जल तत्व की मात्रा को घटाकर और संतुलित कर शरीर के अंगों की सूजन को मिटाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि शरीर में पृथ्वी तत्व बढ़ गया है तो व्यक्ति मांसल तथा मोटा हो जाता है। ऐसे में पृथ्वी तत्व का संतुलन कर मोटापा घटाया जा सकता है। आवश्यकता है जानने की उन एक्युप्रेशर–एक्युपंक्चर बिन्दुओं की, जिन पर उपचार कर इन पाँच तत्वों को संतुलित किया जा सके। इसी का सम्यक् ज्ञान कराता है – पंच तत्वों का सिद्धान्त (Five Element Theory)

आवश्यकता है जानने की, हमारे शरीर के उन अवयवों की, जो इन पांच तत्वों से सम्बन्ध रखते हैं। इन Organs का उपचार कर हम शरीर में पाँच तत्वों का संतुलन स्थापित कर सकते है। साथ ही उन अन्तःग्रन्थियों की जो इन पाँच तत्वों का हमारे शरीर में Hormonal स्राव द्वारा संतुलन बनाये रखती है।

इन पाँच तत्वों के संतुलन से हम शरीर की पुरानी तथा घातक बीमारियों का उपचार कर सकते हैं। भविष्य में बीमारी न आये, इसके लिये रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास भी कर सकते है। यहाँ तक कि आने वाली शताब्दी की घातक से घातक बीमारियों उपचार भी इस पंच तत्व नियमन सिद्धान्त में समाहित है। आवश्यकता है इन तत्वों को भली भांति जानने की तथा शरीर संचालन में इनकी महत्ता को समझने की। उन लक्षणों को जानना जरूरी है जिनसे पता चलता है कि कौन सा तत्व हमारे शरीर में असंतुलित हुआ है ? असंतुलन कितना है ? असंतुलन किस प्रकार का है ? क्या यह असंतुलन पुराना है अथवा नया ? अगर असंतुलन पुराना है तो क्या उपचार होगा तथा अगर असंतुलन Acut है तो क्या उपचार होगा।

चीन में पाँच तत्व जिनसे स्वर्ग, पृथ्वी और मनुष्य बने हैं वे इस प्रकार है जल (Water), काष्ठ (Wood), अग्नि (Fire), पृथ्वी (Earth), और धातु (Metal) । इसमें आकाश तत्व को धातु के रूप में एवं वायु तत्व को काष्ठ के रूप में माना गया है। इसमें काष्ठ तत्व को प्रधान तत्व माना जाता है। अब हमें यह जानना है कि हमारे शरीर का कौन सा Organ इन पांच तत्वों में किससे संबन्धित है।

इसकी तालिका निम्न प्रकार है –

Yin Organs	Yang Organs	Related element
1 Liver	Gall Bladder	Wood
2 Heart	Small Intestine	Fire
3 Spleen/Pancreas	Stomach	Earth
4 Lungs	Large Intestine	Metal
5 Kidney	Urinary Bladder	Water

लीवर Wood Element (काष्ठ) है। इसलिये इसे Master of Metabolic Organ कहा गया है। लीवर ही अपने आप में एक ऐसा अंग है जिससे पुर्नउत्पन्न शक्ति (Regenerative Power) है।

चीन में Wife Organ को Yin कहते है तथा Husband Organ को Yang कहते है। ये Wife Organ जिन्हें Solid Organ भी कहते है वे इस प्रकार हैं –

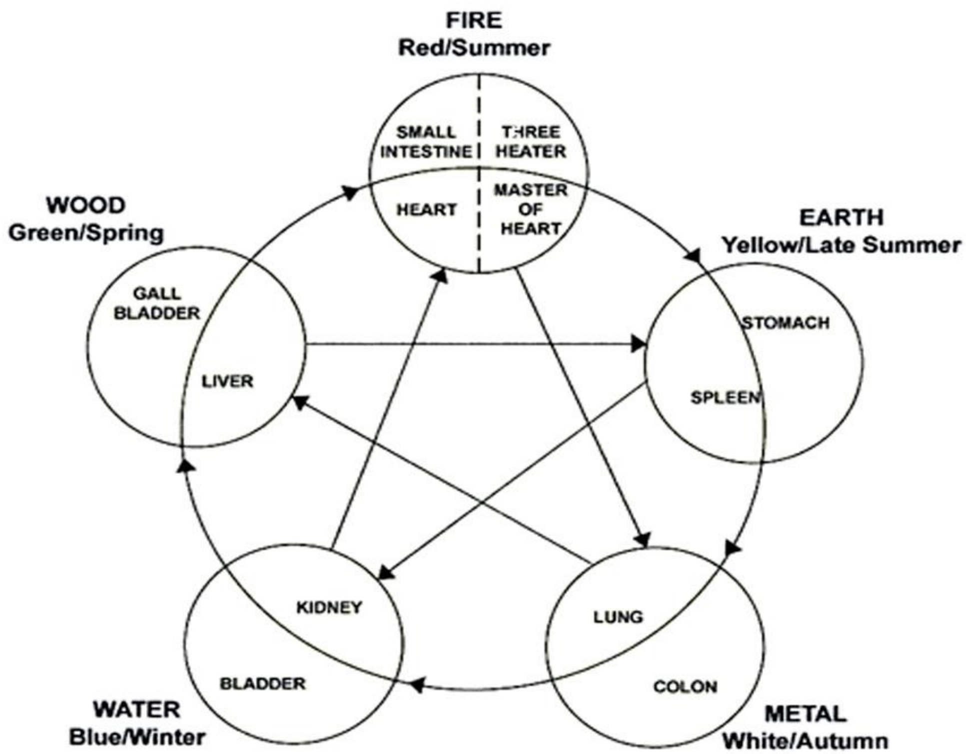

gs, Kidney & Liver, ये Organs मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक अनवरत बिना रूके कार्य करते रहते है और जब ये Organs कार्य करना बंद कर देते है तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। जैसे हृदय–जब हम पैदा हुए थे, तब से हमारे हृदय ने धड़कना प्रारम्भ कर दिया था तथा यह लगातार धड़कता रहता है और जब यह धड़कना बंद कर देता है तब हम मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। यानि हृदय एक ऐसा Organ है जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त बिना रूके चौबीसों घंटे लगातार प्रतिपल कार्य करता रहता है।

जो Husbend Organ उन्हें Hollow Organs भी कहते है। ये इस प्रकार हैं, Stomach, Large Intestine, Urinary Bladder आदि। इन Husbend organs के पास जब जब कार्य करने को आता है तो यह कार्य करते है और जब कार्य करने को नहीं रहता है तो ये विश्राम करते है। जैसे जब हम भोजन करते हैं तो वह पेट में पाचन के लिये जाता है। पेट उसे चार घंटे ते पचाने का कार्य करता है और इसके बाद उसे आगे Small Intestine में भेज देता है तथा स्वयं पेट विश्राम करने लगता है। फिर हम खाते हैं तो फिर पेट काम करने लगता है। जिस दिन हम उपवास करते हैं उस दिन पेट विश्राम करता है इस प्रकार इन Husbend organs के पास काम आया तो कर दिया और अगर काम नहीं आया तो विश्राम करते हैं।

इन पाँचों तत्वों में दो प्रकार के चक्र होते हैं –

1. निर्माणकारी चक्र (Creative Cycle)
2. विनाशकारी चक्र (Destructive Cycle)

इन चक्रों द्वारा तत्व, ऊर्जा, और अंग का संबंध बतलाया गया है

5 Elements - Wood, Fire, Earth, Metal, Water

5 Energy - Wind, Heat, Humidity, Dryness, Coldness

5 Pairs of Organs _ Liv/GB, H/Si, Sp/St, Lu/Li, K/UB

1 निर्माणकारी /सृजनात्मक चक्र (Creative Cycle) :–

प्रत्येक तत्व में सृजन की क्षमता या Creative Power होता है। जिसे अंतः स्थित ऊर्जा कहा गया है। यह विशेष गुण हर एक तत्व, ऊर्जा व अवयव का होता है। इन पाँचों तत्वों का आपस में एक दूसरे से संबंध हैं, इस चक्र में एक तत्व से दूसरे तत्व उत्पन्न होता है। जैसे काष्ठ अग्नि से जलकर राख बनता है। राख अर्थात पृथ्वी तत्व के अन्दर धातु तत्व होते हैं और धातु उच्चतम ताप पर गर्म होकर द्रव में परिवर्तित हो जाते है। जो पौधे की पोषण एवं विकास के लिये आवश्यक होता है। इस प्रकार से ब्रह्माण्ड में यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। इसे Creative Cycle अथवा Generative Cycle (उत्पादक चक्र) कहते हैं। Creation Cycle के अनुसार Wood या काष्ठ तत्व अग्नि तत्व को जन्म देता है। अतः Wood को Fire की माता कहा गया और Fire को Wood तत्व का पुत्र। इससे माता–पुत्र या Mother-Son Low की स्थापना हुई। ये चित्र नं. 2. में दर्शाया गया है।

चिकित्सकीय उपयोग :– एक्यूपंचर तथा एक्यूप्रेशर के सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा की दृष्टि से इस रचनात्मक चक्र का उपयोग किया जाता है। रोगों की जीर्ण अवस्था में रचनात्मक चक्र का उपयोग करते हैं। रोगों को जीर्ण अवस्था में रचनात्मक चक्र का उपयोग करते हैं। उदाहरण जीर्ण दमा रोग (Chronic Asthma) यह फेफड़े का रोग है। फेफड़े अवयव धातु के अन्तर्गत आते हैं। धातु तत्व का निर्माण पृथ्वी तत्व से होता है। इसलिए इस चक्र के अनुसार लंग मेरीडियान के धातु प्वाइंट (Earth Point i.e. Lu.9.) का प्रयोग किया जाता है।

2 **विनाशकारी चक्र (Destructive Cycle) :–** इन पाँच तत्वों में कुछ तत्व एक दूसरे के नियंत्रक हैं। जल अग्नि को बुझा देता है, अतः जल अग्नि का नियन्त्रक है। अतः जल तत्व से संबंधित organs kidney तथा urinary bladder अग्नि तत्व से संबंधित

organs heart एवं small intestine के नियन्त्रक है।

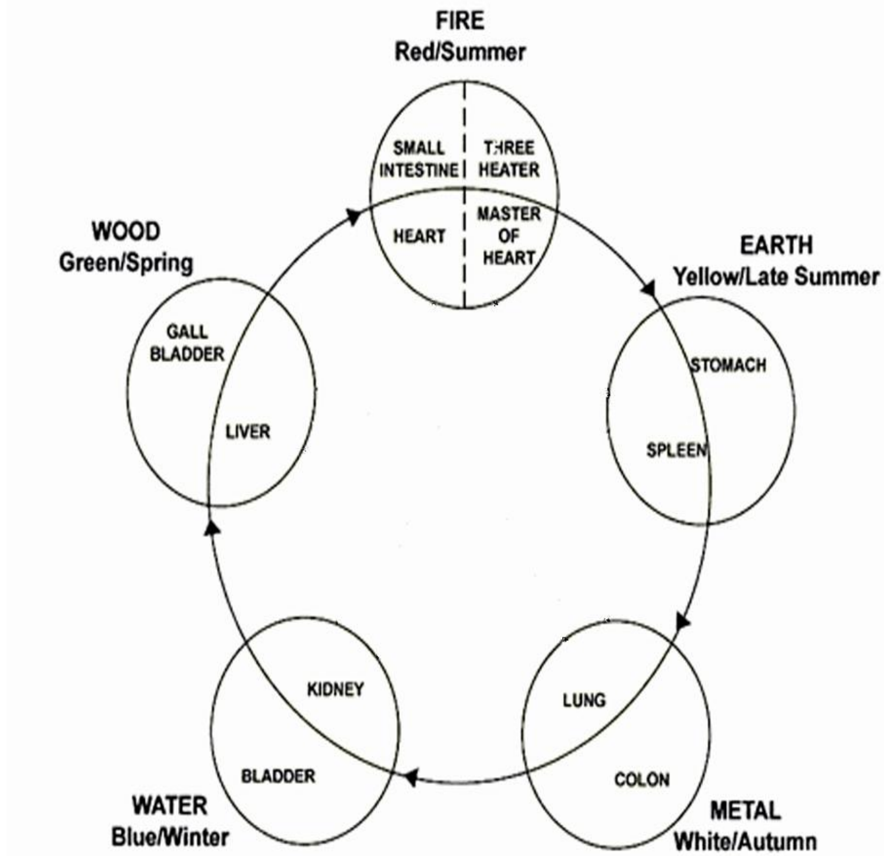

इसी प्रकार पेड़ (काष्ठ) पृथ्वी को ढक लेते है। अतः काष्ठ पृथ्वी का नियन्त्रक है। अतः काष्ठ तत्व से संबंधित organs, liver &gall bladder पृथ्वी तत्व से संबंधित organ, spleen,& stomach के नियन्त्रक है।

अग्नि धातु को गला देती है। अतः Fire is controller of Metal.

धातु की आरी पेड़ को काट देती है अतः Metal is controller of Wood.
पृथ्वी से जल (नदी) पर बाँध बाँधा जाता है अतः Earth is the controller of Water.

इन पाँचों तत्वों का संबंध चित्र नं. 3 पर दिखाया गया है।

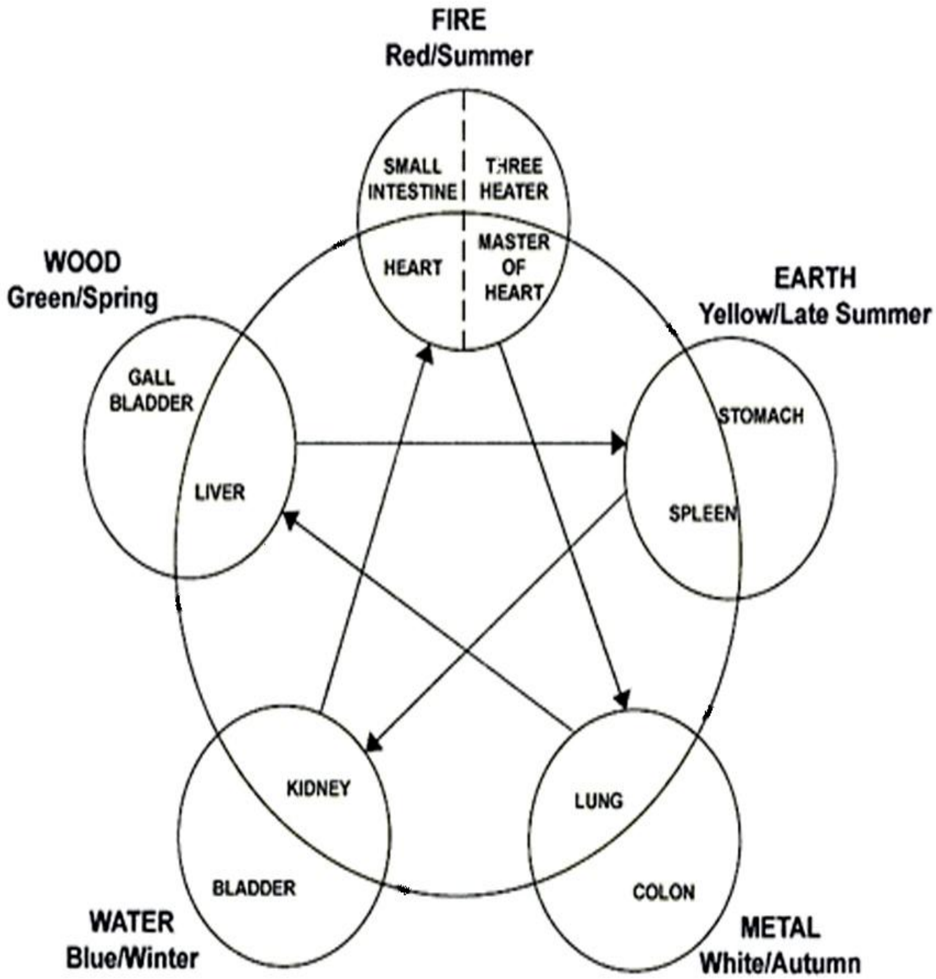

चिकित्सकीय उपयोग :– रोग की तीव्र अवस्था (Acute Disease) में विनाशकारी चक्र का उपयोग किया जाता है। उदाहरण दमा की तीव्र अवस्था में विनाशकारी चक्र का प्रयोग करते हैं। दमा फेफड़े से सम्बन्ध रखता है और फेफड़े यह अवयव धातु तत्व के अन्तर्गत आते हैं और धातु का विनाश अग्नि से होता है। इसलिए तीव्र दमा में फेफडे के अग्नि बिन्दु (Fire Point i.e. Lu. 10) का प्रयोग करते हैं।

THE FIVE ELEMENT POINTS IN THE YIN CHANNELS

Five Element Point	Wood	Fire	Earth	Metal	Water
Lung	Lu.11	Lu.10	Lu.9	Lu.8	Lu5
Pericardium	P.9	P.8	P.7	P.5	P.3
Heart	H.9	H.8	H.7	H.4	H.3

Spleen	Sp.1	Sp.2	Sp.3	Sp.5	Sp.9
Liver	Liv.1	Liv.2	Liv.3	Liv.4	Liv.5
Kidney	K.1	K.2	K.3	K.7	K.10

THE FIVE ELEMENT POINTS IN THE YANG CHANNELS

Five Element Point	Wood	Fire	Earth	Metal	Water
Large Intestine	LI.1	LI.2	LI.3	LI.5	LI.11
Sanjiao	SJ.1	SJ.2	SJ.3	SJ.6	SJ.10
Small Intestine	S.I.1	S.I.2	S.I.3	S.I.6	S.I.8
Stomach	St.45	St.44	St.43	St.41	St.36
Gall Bladder	G.B.44	G.B.43	G.B.41	G.B.38	G.B.34
Urinary Bladder	U.B.67	U.B.66	U.B.65	U.B.60	U.B.40

''अवयव घड़ी सिद्धान्त'' (ORGAN CLOCK THEORY)

मेरिडियान में जीवनीय शक्ति संचार सतत होता रहता है। 12 अवयवों में से प्रत्येक अवयव में निश्चित समय पर जीवनीय शक्ति का आधिकता रहती है। उस निश्चित समय पर उन अवयवों के रोग का निर्धारण और चिकित्सा करने पर रोगी को अधिक उपशमन मिलता है। उदाहरण. के लिए फेफड़ों (Lung) में जीवनीय शक्ति का प्रवाह सुबह 3 से 5 बजे तक अधिक रहता है। अर्थात यह वही समय है, जिसमें फेफड़े के रोग के लक्षण बढ़े हुए रहते हैं। इस समय आसानी से रोग निदान किया जा सकता है तथा इस समय पर उस रोग की चिकित्सा करने से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। समय अवधि के इस शक्ति का प्रवाह को अवयव घड़ी सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है।

यहां प्रत्येक अवयव, उसके सम्बद्ध मेरिडियान का नाम तथा जिस समय पर शक्ति का प्रवाह अधिक हो वह समय निम्न आकृति में दर्षाया गया है।

	मेरिडियान	**समय**	**तत्व बिन्दु**
1.	फेफड़े (Lung)	3 से 5 प्रातः	Lu 8
2.	बड़ी आंत (Large Intestine)	5 से 7 प्रातः	Li 1
3.	जठर (Stomach)	7 से 9 प्रातः	St 36

4.	प्लीहा (Spleen)	9 से 11 दोपहर	Sp 3
5.	हृदय (Heart)	11 से 1 दोपहर	H 8
6.	छोटी आंत (Small Intestine)	1 से 3 दोपहर	Si 5
7.	मूत्राशय (Urinary Bladder)	3 से 5 दोपहर	UB 66
8.	मूत्रपिंड (Kidney)	5 से 7 शाम	K 10
9.	हृदयावरण (Pericardium)	7 से 9 शाम	P 8
10.	ट्रिपल वॉर्मर (Tripple Warmer)	9 से 11 रात्रि	Tw 6
11.	पित्ताशय (Gall Bladder)	11 से रात्रि 1.00 रात्रि	GB 41
12.	यकृत (Liver)	1 से 3 रात्रि	Liv 1

इस प्रकार जीवनीय शक्ति का प्रवाह अवयवों से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। अन्य चिकित्सा पद्धतियों में केवल सूक्ष्म शरीर पर ही ध्यान दिया जाता है। जबकि एक्यूपंचर में सूक्ष्म शरीर पर भी ध्यान दिया जाता है। नाडी द्वारा निदान करते समय भी हमें इस समय अवधि का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि निश्चित समय पर निश्चित ढग से मेरिडियान में जीवनीय शक्ति का प्रवाह अधिक रहता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. पांचों ऊर्जाओं के समवेद स्वरूप को .... कहते हैं ।
2. दोपहर 9–11 का समय किस अंग का है –

   क. आमाशय　　ख. लिवर

   ग. प्लीहा　　घ. वृक्क

8.4 एक्युपंक्चर द्वारा रोग निदान विधि

जब शरीर का कोई अवयव रोगग्रस्त होता है तब उस अवयव के पैर के तलुवे एवं हाथ की हथेली पर स्थित प्रतिनिधि बिन्दुओं पर दर्द होता है जो बिन्दु को दबाने पर विशेषतः महसूस होता है। कई बार रोग के आरम्भ के दिनों में कोई प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई नही देते। ऐसी परिस्थिति में रोग का निदान करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में एक्युपंक्चर का उपयोग सही मायने में होता है। एक्युपंक्चर बिंदु रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही वेदनाग्रस्त हो जाते हैं और यह बात रोग निदान करने के लिये महत्वपूर्ण होती हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही निदान हो जाने से तुरन्त उपचार शुरू किया जा सकता है तथा रोग के लक्षण धीरे–धीरे कम किए जा सकते हैं।

8.4.1 एक्यु बिंदु मापन विधि

यदि कोई अवयव रोगग्रस्त हैं तो उससे सम्बन्धित बिन्दु अत्यन्त संवेदनशील और वेदना युक्त हो जाती है। बिंदु के आसपास का भाग कम वेदनायुक्त रहता है। बिंदु का सही स्थान निश्चित करना उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी रोग को मापने के लिए निम्नांकित विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

1. रोगी के अंगूठे के पहले जोड़ की चौड़ाई को 1 च्युन माना जाता है।
2. दो उंगलियां (तर्जनी और मध्यमा, अनामिका) की चौड़ाई के प्रमाण को 1.5 च्युन माना जाता है।
3. तीन अंगुलियों (तर्जनी, मध्यमा, अनामिका) की चौड़ाई के प्रमाण को 2 च्युन माना जाता है।
4. चार अंगुलियों (तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका) की चौड़ाई के प्रमाण को ''3च्युन कहते हैं।

यह च्युन का नाप लेने के लिए ''च्युनोमीटर नामक एक उपकरण मिलता है। किन्तु सर्वसाधारण तौर पर रोगी की अंगुली से च्यून का मापना अधिक युक्तिसंगत और सही मापदण्ड है।

- बिन्दु के ऊपर की त्वचा पर कभी कभी सूजन रहती है।
- बिन्दु के ऊपर का तापमान अन्य स्थान की अपेक्षा अधिक हो सकता है।
- बिन्दु का सही स्थान निश्चित करने के लिये कुछ विशेषज्ञ ''प्वाइंट डिटेक्टर'' का प्रयोग करते हैं।

8.4.2 उपचार विधि

उपचार की मुख्यतः 3 क्रम होते हैं :–

1. पूर्व कर्म 2. प्रधान कर्म 3. पश्चात् कर्म

1. पूर्व कर्म :– मुख्य विधि करने से पूर्व की जाने वाली क्रिया को पूर्व कर्म कहते हैं। इसके मुख्यतः 2 भाग होते हैं।

क. रोगी सम्बन्धित ख. विशेषज्ञ सम्बन्धित

रोगी को सांत्वना देकर 3–5 मिनट तक आराम करने दें। हो सके तो योगासन में वर्णित मकरासन एवं शवासन का अभ्यास करायें। उसके पश्चात रोगानुसार तय किये गए बिन्दुओं का निश्चितीकरण करते हैं। रोगी की शारीरिक स्थिति आरामदायक तथा सुखकारक होनी चाहिए। रोगी तथा विशेषज्ञ की सुविधानुसार बैठाकर या लिटाकर उपचार कर सकते हैं। उपचार शुरू करने से पूर्व रोगी को सबसे प्रभावशाली ''सिम्पैथी'' (Sympathy) देनी चाहिए। जिससे कि रोगी का मनोबल बढ़े एवं उसका रोग अवश्य ही इस पद्धति से दूर होगा, ऐसा उसे विश्वास हो जाये।

2. प्रधान कर्म :– एक्युपंक्चर रोगी के शरीर के जिस स्थान पर करना हो वह स्थान विशेषज्ञ के करीब होना चाहिए। इसमें बिन्दु की स्थिति, रोगी की शारीरिक स्थिति, संघटन, बल, आयु और रोग के प्रकार, इन सब बातों पर विशेषतः ध्यान देना चाहिए।

काल अवधि :– प्रत्येक बिंदु पर 10 से 15 मिनट तक सुई लगाना चाहिए। यह क्रिया दिन में दो बार दे सकते हैं।

एक्युपंक्चर निम्न स्थितियों में नहीं लेना चाहिए

1. बहुत ज्यादा पसीना बह रहा हो या फिर बहुत से पैदल चलकर आने पर जब सांस फूल रही हो और नाड़ी भी तेज हो तो थोड़ी देर रूक कर उपचार करायें।
2. बहुत तेज भूख लगी हो या उपवास के दिन हो तब न लें।
3. भोजन करने के तुरन्त बाद भी न लें।
4. किसी प्रकार की दवाई के सेवन करने के 1 या 2 घण्टे के पश्चात ही एक्युपंक्चर लेना चाहिए।

5. ठंडे या गर्म पानी से स्नान करने के तुरन्त बाद न लें।
6. गर्भावस्था में एक्युपंक्चर का उपचार लेना लाभप्रद है। क्योंकि इस काल में अन्य औषधि एवं उपचार वर्जित होते हैं। यही प्राकृतिक एवं सरल विधि है, जो इस काल में उपयुक्त है।
7. जल जाने पर, त्वचा पर आघात होने पर या किसी हड्डी के टूट जाने पर भी यह उपचार नहीं लेना चाहिए।

एक्युपंक्चर लेने के प्रारम्भिक काल में कभी–कभी रोगी को कुछ अस्थायी लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे सिर दर्द, सर्दी आदि। यह लक्षण कुछ दिनों के बाद स्वतः शान्त हो जाते हैं। विशेषज्ञ उनको शुभ संकेत मानते हैं। किसी–किसी रोगी में यह लक्षण उत्पन्न भी नहीं होते हैं।

अभ्यास प्रश्न – ग

3. रोगी की अंगुली से .... का मापना अधिक युक्तिसंगत और सही मापदण्ड है।
4. ''सिम्पैथी'' (Sympathy) उपचार की कौन सी क्रम है –

क. पूर्व ख. प्रधान

ग. पश्चात् कर्म घ. इनमें से कोई नहीं

8.5 सारांश –

मानव ने आरम्भ से ही प्रकृति की रचना और उसके क्रियाकलापों के रहस्य को जानने का प्रयास किया है। संसार के कई हिस्सों में सोच के आधार पर उन्नत सभ्यताओं का विकास हुआ है। इनमें से सबसे पुरानी सभ्यताएँ भारत, मिस्र एवं चीन की मानी जाती है।

चीन की सोच का एक महत्वपूर्ण परिणाम एक्युपंक्चर विधा का विकास है। उनके अनुसार इस ब्रह्माण्ड की रचना और क्रियाकलाप दो बलों –Yin एवं Yang के फलस्वरूप चलता है। (अ) यांग बल का वह पहलू है, जो हमेशा अव्यक्त से व्यक्त का कारण है। (ब) यिन– बल का वह पहलू है, जो अव्यक्त और व्यक्त दोनों में स्थिरता/समानता का कारण है।

यांग बल के कारण ही दो मनुष्य एक जैसे नहीं मिलते। यही वह बल है, जिसके कारण संतानोत्पत्ति नया जन्म, नई सूरत, नया आकार–प्रकार, नयी सोच, संख्या, परिमाप और गुणवत्ता सम्भव होती है। यिन वह बल है, जिसके कारण वह सारी चीजें जो व्यक्त नहीं हुई, अव्यक्त है, यही वह बल है, जिसके कारण मनुष्य की संतान, पशु की संतान, वस्तुओं के आकार–प्रकार, जीव–जन्तुओं की सोच, व्यवहार और आदतों में स्थिरता और समानता होती है। इसी बल के कारण हमारी पहचान और संज्ञा का निर्धारण हो पाता है।

यिन–यांग के आपसी क्रिया, प्रतिक्रिया के फलस्वरूप संसार के उत्पत्ति विकास और विनाश में एक निश्चित क्रम मिलता है। इन क्रमों को चायनीज विद्वानों ने अच्छी तरह समझा और उपचार में उसका उपयोग किया। इस क्रम को प्रकृति में और शरीर में पंचतत्व सिद्धात के रूप में जाना जाता है।

8.6 शब्दावली

संवितरित – समान मात्र में वितरण।
नियन्त्रक – एक का दूसरे के ऊपर कन्ट्रोल।
सिम्पैथी – सहानुभूति
च्यून – शरीर की एक्यु बिन्दु का माप इकाई।
सापेक्ष – एक दूसरे के अन्दर विद्यमान होना।

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. सापेक्ष 2 ठण्डा 3 यांग
अभ्यास प्रश्न – ख	1. जैव ऊर्जा (Bio energy) 2. प्लीहा
अभ्यास प्रश्न – ग	1. च्यून 2. पूर्व

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह
2 एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
3 एडवांस एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भाग 1 – माता प्रसाद खेमका
4 एक्युप्रेशर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण – डॉ रविन्द्र बागे
5 पंचतत्व विज्ञान – के. के. मिश्र
6 एक्युप्रेशर, जीर्ण रोगों का सफल प्राकृतिक उपचार – डॉ एल.एन.कोठारी, डॉ अमृत गुर्वेंद्र

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 यिन–यांग के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2 एक्युपंक्चर चिकित्सा में यिन–यांग की भूमिका का सविस्तार वर्णन करें ?
3 पंचतत्व के सिद्धान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजियें ?
4 पंचतत्व सिद्धान्त के विभिन्न सृजनात्मक व विध्वंसात्मक चक्रों का सविस्तार वर्णन करें ?

इकाई – 9 एक्युपंक्चर चिकित्सा के लाभ, सावधानियाँ एवं सीमाएँ

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मेरिडियन्स Meridiyans
9.4 **Yin** और **Yang organ** के कार्य
9.5 एक्युपंक्चर की लाभ
9.6 एक्युप्रेशर की सावधनियाँ
9.7 एक्युप्रेशर की सीमाएँ
9.8 एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर द्वारा बिमारियों का उपचार
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा एक ऐसी वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति है। जिसमें चिकित्सा औषधि रहित होती है और इस औषधि रहित चिकित्सा पद्धति में कई रोगों का निदान आश्चर्यजनक रूप से प्राप्त हुआ है। यह एक सत्य है कि प्रत्येक विधाओं की अपनी सीमायें होती है। सिद्धान्ततः यह पद्धति अन्य प्रचलित विधाओं के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप न करते हुए अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुए हैं। इस चिकित्सा के अन्तर्गत शरीर के विभिन्न एक्यु बिन्दुओं पर वैज्ञानिक विधि द्वारा विशेष प्रकार की सुई से पंक्चर किया जाता है। यह पद्धति हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित है। इसे द्वारा हमारे शरीर के निर्दिष्ट बिन्दुओं को उद्वेलित कर ऊर्जा प्रवाह का संतुलन स्थापित किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में एक्युपंक्चर चिकित्सा के लाभ, सावधानियाँ एवं सीमाओं से परिचित होंगे। एक्युपंक्चर के बृहद् स्वरूप मेरिडियन का अवलोकन होगा तथा एक्युपंक्चर के तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें एक्युपंक्चर का निर्माण करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि एक्युपंक्चर के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको एक्युपंक्चर के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1 एक्युपंक्चर के लाभ, सावधानियाँ एवं सीमाओं से ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2 एक्युपंक्चर के विभिन्न प्रवाह पथ से परिचित हो सकेंगे।
3 विभिन्न आयु वर्गों के लिए एक्युपंक्चर के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।

4 एक्युपंक्चर के तात्विक अंगों का रहस्योद्‌घाटन हो सकेंगे।

9.3 मेरिडियन्स Meridiyans

मेरिडियन्स शरीर के अन्दर जैविक ऊर्जा की काल्पनिक रेखायें हैं। इन रेखाओं में (Bio Energy) जैविक ऊर्जा का निरन्तर प्रवाह बना रहता है जिसे चैनल के नाम से जानते हैं। ये चैनल शरीर की जिन मुख्य अंगों से होकर गुजरती है उस अंग के नाम से मेरिडियन का नामकरण किया गया है।

चायनीज एक्युपंक्चर के अनुसार शरीर में ऊर्जा के आने–जाने के कुछ निश्चित मार्ग है जिन्हें मेरीडियन या ऊर्जा प्रवाह पथ कहा जाता है। ऊर्जा शरीर में होने वाले असंतुलन को दूर करने के लिए इन्हीं ऊर्जा प्रवाह पथों अथवा मेरीडियन्स का सहारा लिया जाता है। वैसे तो ये मेरीडियन असंख्य है तथापि उपचार की दृष्टि से चायनीज एक्युपंक्चर में शरीर के अवयवों पर आधारित बारह मेरीडियन तथा इनकी दो नियन्त्रक मेरीडियन मानी गयी है। अतः शरीर में कुल 14 मेरिडियन चैनल है जिसमें 12 जोड़े में (Paired) एवं दो मेरिडियन चैनल स्वतन्त्र है। इनमें 6 मेरिडियन (Yin) यिन ऊर्जा एवं 6 मेरिडियन यांग ऊर्जा (Yang) से संबंधित है एवं दो स्वतन्त्र मेरिडियन शरीर के मध्य भाग से गुजरती है। इनमें एक शरीर के मध्य भाग सामने की ओर से और एक मध्य भाग में पीछे की ओर से गुजरती है।

उपरोक्त मेरिडियन को Yin-Yang Organ के अनुसार निम्न तरह से बांटा गया है।

Yin Prgan यिन मेरिडियन :–

सभी शरीर के अंग जो डायफ्राम से ऊपर होते हैं वे Yin Organ है। ये निम्न हैं –

1- Lung
2- Pericardium
3- Heart

ये तीन मेरिडियन Yin चैनल है जो शरीर के हाथ में होते हैं। प्रत्येक Yin Channels के 3 Yang साथी चैनल (Paired Channel) होते हैं। इस प्रकार हाथ में तीन Yin और तीन Yang Channal होते है।

Yin Channel हाथ के अग्र भाग में हृदय से शुरू होकर अंगुलियों पर समाप्त होते हैं। जबकि Yang चैनल हाथ के पृष्ठ भाग में अंगुलियों से शुरू होकर चेहरे पर समाप्त होते हैं। इस प्रकार हाथ में तीन Yin Meridian और तीन Yang Meridian होते हैं। जो निम्नानुसार जोड़े में दर्शाये गये हैं :–

Yin		Tang
Lung (Lu)	-	Large Intestine (Li)
Pericardium (P)	-	Triple Warmer (TW)
Heart (H)	-	Small Intestine (Si)

शरीर में डायफ्राम से नीचे के सभी अंग Yang Organ होते हैं। ये निम्न हैं –

1- Stomach (St)

2- Urinary Bladder (UB)

3- Gall Bladder (GB)

ये तीन Yang Channel शरीर में चेहरे से शुरू होकर पैरों के बाह्य भाग से गुजरते हुए पैरों की अंगुलियों पर समाप्त होते हैं। प्रत्येक Yang Channel के तीन साथी ल्पद मेरिडियन होते हैं। जो इसके विपरीत पैरों के अंदरूनी भाग से शुरू होकर पेट के ऊपर भाग पर समाप्त होते हैं। जो निम्नानुसार जोड़े में दर्शाये गये हैं :–

Yin		**Tang**
1- Spleen (Sp)	-	Stomach (St)
2 Kidney (K)	-	Urinary Bladder (UB)
3 Liver (Liv)	-	Gall Bladder (GB)

9.4 Yin और Yang organ के कार्य

Yin Organ – ये हमारे शरीर जैविक अंग है। Lung (Lu), Pericardium (P), Heart (H), Spleen (Sp), Kidney (K), Liver (Liv) Yin Organ है। इनका मुख्य कार्य संग्रहण करना है। ये ठोस अंग होते हैं जो ऊर्जा को संग्रहित करते हैं।

Yang Organ – Large Intestine (Li), Triple Warmer (TW), Small Intestine (Si) Stomach (St), Urinary Bladder (UB), Gall Bladder (GB) यांग organ है। खोखले होते हैं। ये Organ ऊर्जा को Yin organ से प्राप्त कर शरीर के सभी अंगों में वितरित करते हैं।

ऊर्जा आवेष – प्राचीन चिकित्सा पद्धति के अनुसार ऋणात्मक व धनात्मक आवेश में दो परस्पर और एक दूसरे के अनुपूरक शक्तियाँ है। जो शरीर में हमेशा क्रियाशील रहती है। प्रत्येक स्वस्थ शरीर में प्राण ऊर्जा

का बहाव स्वतन्त्र और बिना अवरोध के होना चाहिए। यह प्राण ऊर्जा फेफड़े से शुरू होकर क्रमानुसार निश्चित व्यवस्थित अवस्था में मेरीडियनों में बहती रहती है। किसी कारण से यदि ऋणात्मक व धनात्मक शक्ति में असन्तुलन आ जाये जिसके कारण मेरीडियनों में ऊर्जा के बहाव में अवरोध उत्पन्न हो जायेगा तो शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। चायनीज चिकित्सा पद्धति के अनुसार भी सम्पूर्ण सृष्टि ऋणात्मक व धनात्मक नामक दो विपरीत शक्तियों में संतुलित है। ये शक्तियाँ आपस में एक –दूसरे के अन्दर आती जाती रहती है और इन्हें चुम्बक की भांति अलग नहीं किया जा सकता है। मनुष्य सृष्टि की सूक्ष्म इकाई है।यही कारण है कि मनुष्य के शरीर का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है। कोई भी वस्तु न तो बिल्कुल निगेटिव है और न ही पॉजेटिव । अतः प्रत्येक निगेटिव में सदा कुछ पॉजेटिव रहता है और इसी प्रकार प्रत्येक पॉजिटिव में सदा कुछ निगेटिव अवश्य रहता है। या यह भी कह सकते हैं कि निगेटिव की अधिकता में पॉजिटिव की कमी और पॉजिटिव की अधिकता में निगेटिव की कमी रहती है। ऋणात्मक व धनात्मक में ही प्राण ऊर्जा शक्ति व्याप्त है। यही सारी सृष्टि का बेसिक सिद्धान्त है।

ऋणात्मक व धनात्मक अंग

ऋणात्मक अंग–जो अंग एनर्जी को जमा रखते है वे अंग हैं – लीवर, हृदय, पेरीकार्डियम, प्लीहा, फेफड़े, और किड़नी। इनको ठोस अंगों से संबोधित करते हैं।

धनात्मक अंग – जो अंग एनर्जी देते हैं वे अंग हैं – पित्ताशय, छोटी आंत, ट्रिपल वार्मर, आमाशय, बड़ी आंत, मूत्राशय । ये खोखले अंगों के अन्तर्गत आते हैं। इनकी संख्या 6 होती है। यह भोजन का पाचन, पोषण और बचे भाग का उत्सर्जन करते है। ये सारे आंतरिक अंग आपस में सहयोग से कार्य करके शरीर को नियमित रूप से चलाते हैं।

अभ्यास प्रश्न – क

4. शरीर के प्राण ऊर्जा प्रवाह पथ को क्या कहा जाता है ?
5. यिन अंग होता है –

क. खोखला ख. ठोस

ग. द्रव घ. इनमें से कोई नहीं।

फेफड़ा Lungs Meridian - यह श्वसन तन्त्र का अंग है। जो जोड़े में होता है। यह पसलियों के पिंजरे में स्थित होता है। यह शरीर में ऑक्सीजन ग्रहण करता है और कार्बन डाई ऑक्साइड को बाहर निकालता है। इस प्रकार से यह हृदय के पम्प द्वारा पूरे शरीर में ऑक्सीजिनेटेड रक्त की लगातार पूर्ति करता है।

फेफड़े से संबंधित बीमारी :– टी. बी. (क्षय) रोग, अस्थमा, निमोनिया, सांस की तकलीफ, त्वचा के रोग।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Lu 11
अग्नि (Fire)	Lu 10
पृथ्वी (Earth)	Lu 9
धातु (Metal)	Lu 8
जल (Water)	Lu 5

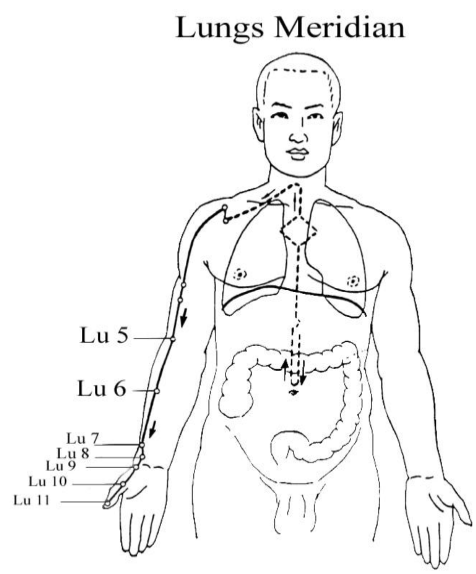

हॉरेरी पॉइन्ट – Lu 8 इस पाइन्ट को सुबह 3 बजे से 5 बजे के बीच लेने से परिणाम जल्दी मिलते हैं।

बड़ी आंत Large Intestine Meridian - छोटी आंत को गुदा तक जोड़ने वाला भाग बड़ी आंत कहलाता है। इसका मुख्य कार्य छोटी आंत के तत्वों से जल का अवशोषण करना है, वहाँ से जल किडनी को भेज दिया जाता है और ठोस उत्सर्जी पदार्थ मल के रूप में गुदा से बाहर निकाल दिये जाते हैं।

बड़ी आंत से संबंधित बीमारी :– कब्ज, गैस का बनना, पेट का दर्द।

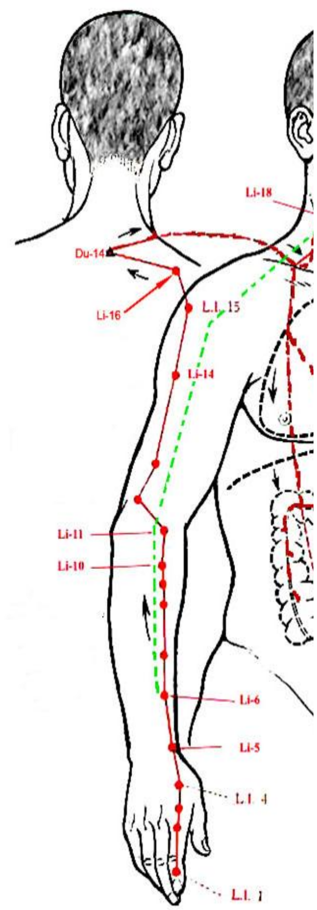

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Li 3
अग्नि (Fire)	Li 5
पृथ्वी (Earth)	Li 11
धातु (Metal)	Li 1
जल (Water)	Li 2

हॉरेरी पॉइन्ट – Li 11 इस पाइन्ट को सुबह 5 बजे से 7 बजे के बीच लेने से परिणाम जल्दी मिलते हैं।

हृदय Heart Meridian - हृदय एक मुट्ठी के आकार का मांस का खोखला अंग होता है। यह शरीर में छाती में बांयीं ओर फेफड़ों के बीच में स्थित होता है। हृदय पेरीकॉर्डियम से ढ़का रहता है। हृदय शरीर का महत्वपूर्ण अंग है।

हृदय से संबंधित बीमारी :– Heart Failure एन्जाइना , घबराहट, डर Rheumatic heart diseases.

Heart Meridian

तत्व **(Element)**	बिन्दु **(Point)**
काष्ठ (Wood)	H 9
अग्नि (Fire)	H 8
पृथ्वी (Earth)	H 7
धातु (Metal)	H4
जल (Water)	H 3

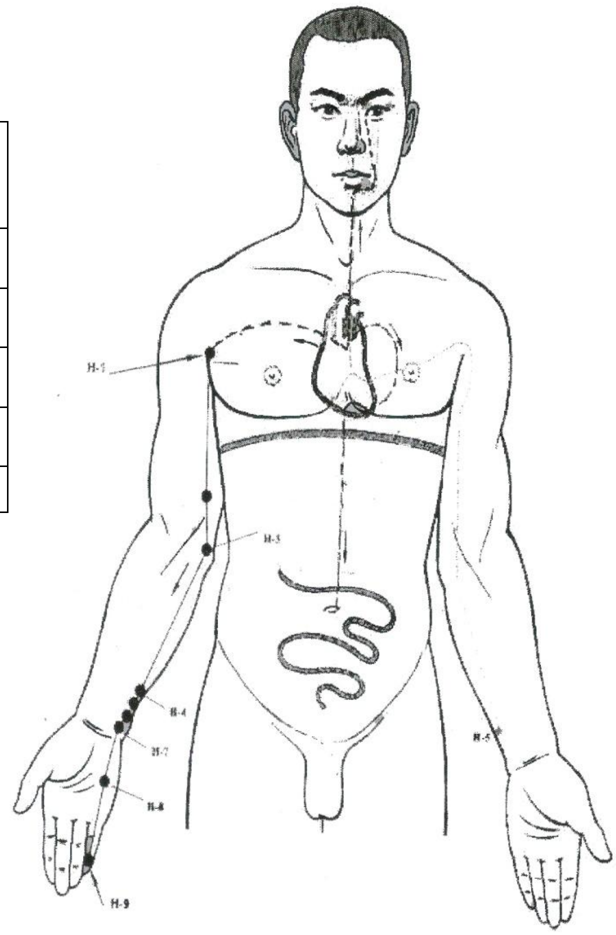

हॉरेरी पॉइन्ट – H 8 इस पाइन्ट को सुबह 11 बजे से 1 बजे के बीच लेने से परिणाम जल्दी मिलते हैं।

छोटी आंत Si Meridian - छोटी आंत शरीर के अन्दर पेट से पायलोरस से निकलकर बड़ी आंत के Caecum से जुड़कर समाप्त होती है। इसके तीन भाग हैं – 1. Duodenum 2. Jejunum 3. Ileum.

छोटी आंत के कार्य – यह अन्न का पाचन करती है और अन्न को शोषित करती है। यह अन्न में से आवश्यक तत्व को अलग करती है और अनावश्यक को Large Intestine में भेजती है।

छोटी आंत से संबंधित बीमारी :– छोटी आंत में घाव, मरोड़।

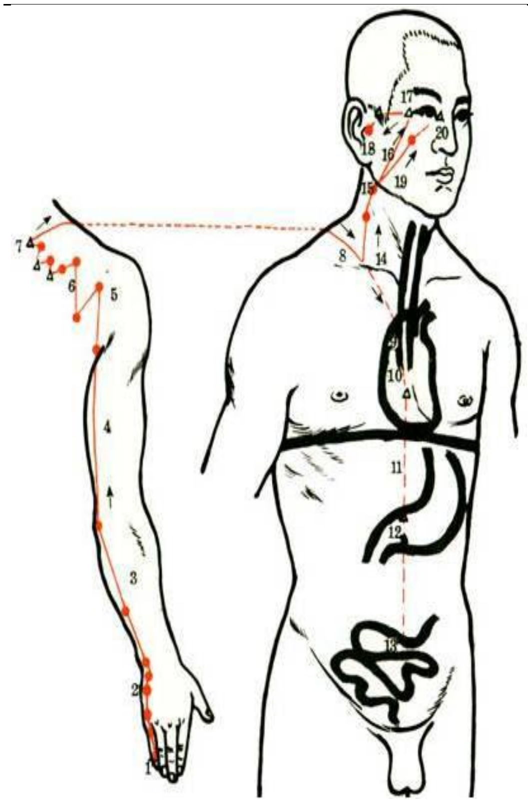

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Si 3
अग्नि (Fire)	Si 5
पृथ्वी (Earth)	Si 8
धातु (Metal)	Si 1
जल (Water)	Si 2

हॉरेरी पॉइन्ट – Si 5 इस पाइन्ट को सुबह 1 बजे से 3 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

पेरिकार्डियम P Meridian - यह हृदय का संरक्षक कहा जाता है। यह एक झिल्ली होती है जो भ्मंतज हृदय के ऊपर होती है और हृदय की खास ब्लड वेसल्स को भी घेरे रहती है। यह तन्तुओं और सीरमी तत्वों दोनों से मिलकर बनी होती है।

यह Heart Channel की तरह रक्त को नियमित करती है। यह मानसिक एवं बौद्धिक स्तर के कार्यों को नियन्त्रित करती है।

पेरिकार्डियम से संबंधित बीमारी :– पेरिकार्डियम की झिल्ली की सूजन (Pericardities), पेरिकार्डियल केविटी में पानी का भर जाना (Pericardial effusion)

हॉरेरी पॉइन्ट – P 8इस पाइन्ट को सुबह 7 बजे से 9 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

ट्रिपल वार्मर TW Meridian - यह मेरिडियन

तत्व (Element)	**बिन्दु (Point)**
काष्ठ (Wood)	P 9
अग्नि (Fire)	P 8
पृथ्वी (Earth)	P 7
धातु (Metal)	P 5
जल (Water)	P 3

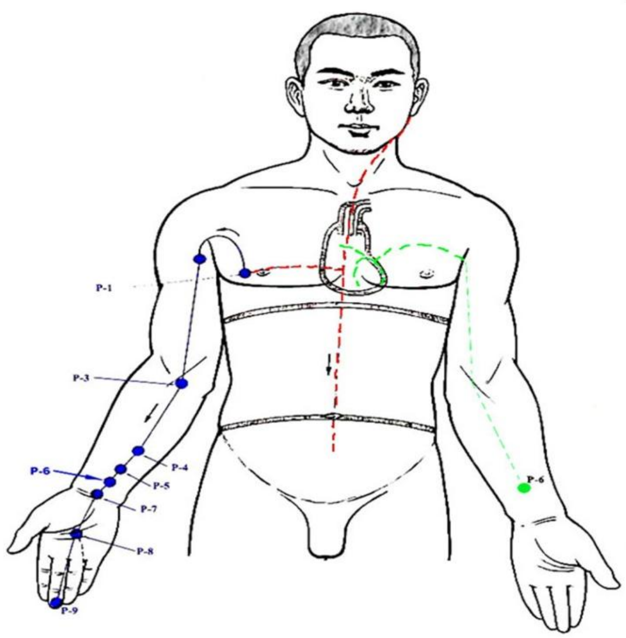

शरीर की 3 मुख्य गुह्य (Cavity) को नियन्त्रित करता है जिसे 3 Burning Space भी कहा जाता है। 1. ऊपरी भाग 2. मध्य भाग, 3. निचला भाग।

ट्रिपल वार्मर से संबंधित बीमारी :– कब्ज, कान की तकलीफों में, कंधों का दर्द, आँखों से संबंधित बिमारियाँ, पैरालिसिस इत्यादि।

हॉरेरी पॉइन्ट – TW 6 इस पाइन्ट को रात्रि 9 बजे से 11 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

प्लीहा Sp Meridian - प्लीहा एक लिम्फेटिक अंग है। यह रक्त संवहन तन्त्र से संबंधित है। यह रक्त का निर्माण करता है। शरीर में प्रतिरक्षित तन्त्र में इसका महत्वपूर्ण योगदान होता

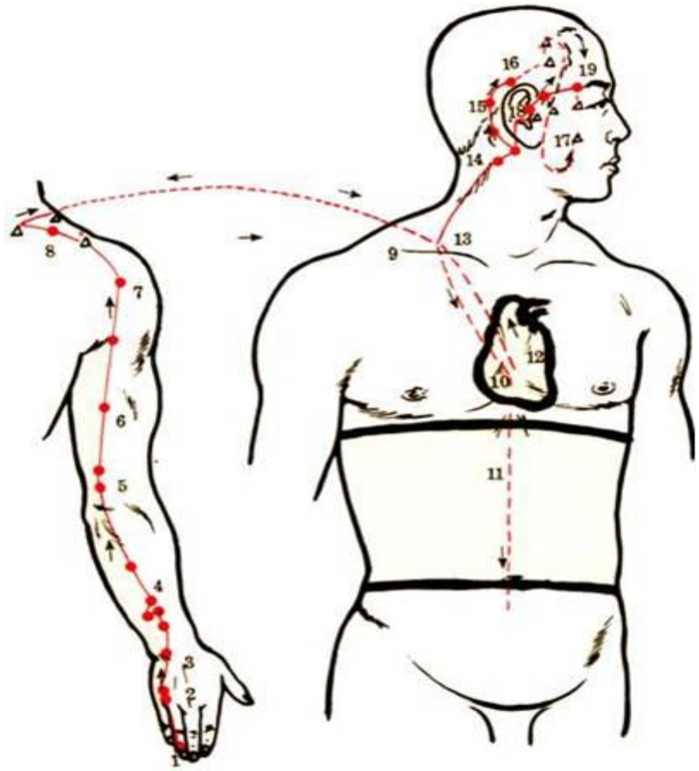

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Tw 3
अग्नि (Fire)	Tw 6
पृथ्वी (Earth)	Tw 10
धातु (Metal)	Tw 1
जल (Water)	Tw 2

है।शरीर में आमाशय अन्न को लेता है वहीं प्लीहा उसके अन्न मेंसे पोषक तत्वों को शरीर में भेजता है।

प्लीहा से संबंधित बीमारी :– खून की कमी, कमजोरी, प्लीहा का बड़ा होना, एनीमिया।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	Sp 1

अग्नि (Fire)	Sp 2
पृथ्वी (Earth)	Sp 3
धातु (Metal)	Sp 5
जल (Water)	Sp 9

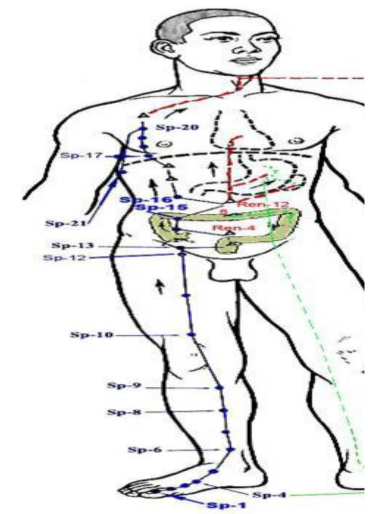

हॉरेरी पॉइन्ट – Sp 3 इस पाइन्ट को सुबह 9 बजे से 11 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

आमाषय St Meridian - इसे बोलचाल की भाषा में पेट कहते है। यह एक खोखला मांस का अंग होता है। यह Abdomen के ऊपर शरीर के बायें तरफ होता है। यह अन्न को अपने अन्दर इसोफेगस से लेता है और उसे छोटी आंत में भेजता है।

आमाषय से संबंधित बीमारी :– गैस्ट्रिक अल्सर, पेट में जलन, एसीडिटी, डकार।

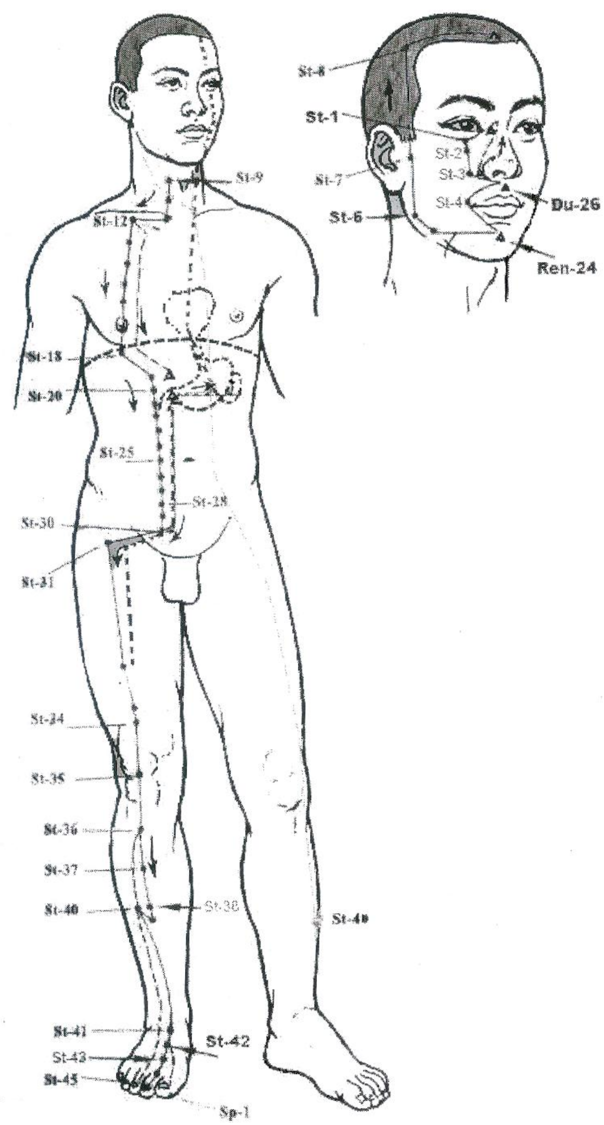

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	St 43
अग्नि (Fire)	St 41
पृथ्वी (Earth)	St 36
धातु (Metal)	St 45
जल (Water)	St 44

हॉरेरी पॉइन्ट – St 36 इस पाइन्ट को सुबह 7 बजे से 9 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

वृक्क Kidney Meridian - किडनी पेट के पिछले भाग में रीढ़ की हड्डी के दोनों किनारे पर जोड़े में स्थित होते है। यह उत्सर्जन तन्त्र का मुख्य अंग है। यह चयापचय में विजातीय तत्वों, खून में अतिरिक्त नमक और पानी को बाहर निकालता है। एवं PH का स्तर बनाये रखता है। यह हड्डियाँ, कार्टिलेज और सिर के बाल की वृद्धि में नियंत्रण रखता है।

वृक्क से संबंधित बीमारी :– कमर दर्द, कान के रोग, आँखों के चारों ओर काला घेरा, रात में पसीना आना और प्यास लगना, पैरों में कमजोरी, थकान, पुरूष में नपुंसकता।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	K 1
अग्नि (Fire)	K 2
पृथ्वी (Earth)	K 3
धातु (Metal)	K 7
जल (Water)	K 10

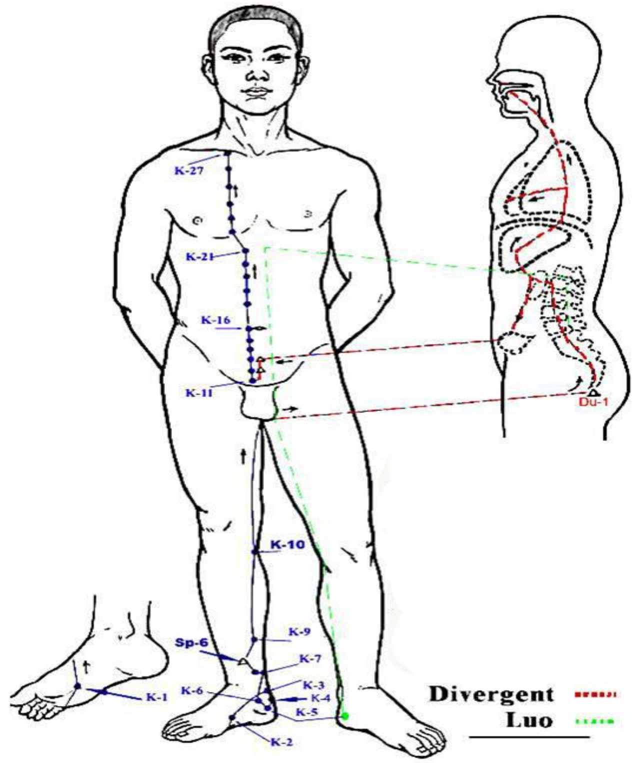

हॉरेरी पॉइन्ट – K 10 इस पाइन्ट को शाम 5 बजे से 7 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

मूत्राषय UB Meridian - यह पेट के निचले हिस्से में सामने की ओर स्थित है। यह मांसपेशियों का खोखला अंग है। जो अपने अन्दर मूत्र को संग्रहित करता है।

मूत्राषय से संबंधित बीमारी :– ब्लैडर में रूकावट, पेशाब पर नियन्त्रण न होना।

तत्व (Element)	बिन्दु (Point)
काष्ठ (Wood)	UB 65
अग्नि (Fire)	UB 60
पृथ्वी (Earth)	UB 54
धातु (Metal)	UB 67
जल (Water)	UB 66

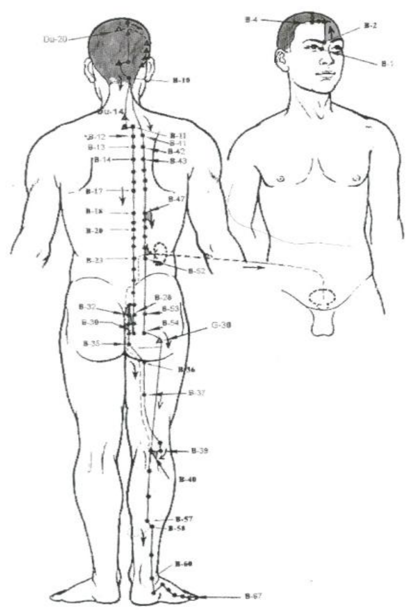

हॉरेरी पॉइन्ट

– UB 66 इस पाइन्ट को दोपहर 3 बजे से 5 बजे के बीच लिया जाय तो बेहतर परिणाम मिलते हैं।

यकृत Liver Meridian - यह सबसे लम्बी व बड़ी ठोस ग्रन्थि है। जो शरीर के दाहिने भाग पर स्थित होती है। जो पित्त स्रावित करती है। जिसका शरीर के चयापचय में विभिन्न महत्वपूर्ण योगदान है। लीवर खून के बहाव को संचय और नियमित करती है।

यकृत से संबंधित बीमारी :– हिपेटाइटिस, लीवर सिरॉयसिस आदि।

तत्व (Element)	**बिन्दु (Point)**
काष्ठ (Wood)	Liv 1
अग्नि (Fire)	Liv 2
पृथ्वी (Earth)	Liv 3
धातु (Metal)	Liv 4
जल (Water)	Liv 8

हॉरेरी पॉइन्ट (Horary point) – Liv 1 इस पाइन्ट को दोपहर 1 बजे से 3 बजे के बीच लिया जाय तो अपेक्षाकृत परिणाम अच्छे मिलते हैं।

पित्ताषय GB Meridian – पित्ताशय एक नाशपाती के आकार का अंग है। यह लीवर के निचली भाग पर स्थित थैलेनुमा होता है। यह अपने अन्दर पित्त एकत्रित करता है।

पित्ताषय से संबंधित बीमारी :– Cholecystitis – पित्ताशय में जलन, Cholelithiasis – पित्ताशय में पथरी, Biliary Colic – पित्ताशय में पथरी के कारण दर्द।

तत्व (Element)	**बिन्दु (Point)**
काष्ठ (Wood)	GB 41
अग्नि (Fire)	GB 38
पृथ्वी (Earth)	GB 34
धातु (Metal)	GB 44
जल (Water)	GB 43

हॉरेरी पॉइन्ट (Horary point) – GB 44 इस पाइन्ट को रात 11 बजे से 1 बजे के बीच लिया जाय तो अपेक्षाकृत परिणाम अच्छे मिलते हैं।

कन्सेप्श्नल वेसल्स CV Meridian – यह चैनल एक स्वतन्त्र चैनल है। यह मेरिडियन शरीर के बीचो–बीच यिन भाग में प्रवाहित होती है। इसका सभी Yin channel पर नियन्त्रण होता है।

कन्सेप्श्नल वेसल्स से संबंधित बीमारी :– जनन अंगों से संबंधित बिमारियाँ, पेट की समस्या, बोलने संबंधित रोग जैसे – गुंगापन, तुतलापन आदि।

Conception Vessels Meridian

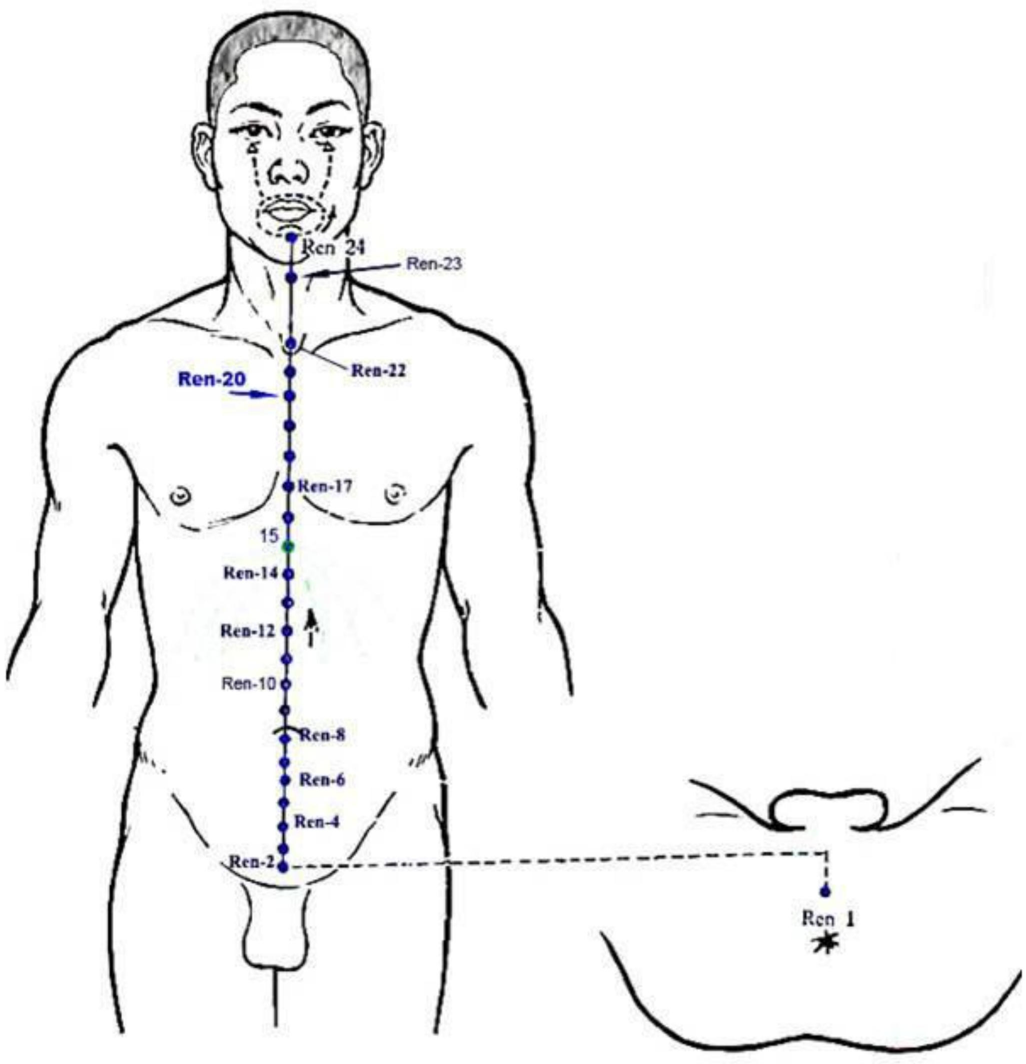

गव्हर्निंग वेसल्स GV Meridian – यह चैनल एक स्वतन्त्र चैनल है। यह मेरिडियन शरीर पर पिदे की ओर पीठ पर रीढ़ की हड्डी पर बीचो–बीच यांग भाग में प्रवाहित होती है। इसका सभी Yang channel पर नियन्त्रण होता है।

कन्सेप्षनल वेसल्स से संबंधित बीमारी :– मानसिक बिमारियाँ, एवं स्नायु से संबंधित बिमारियाँ, संक्रमक बिमारियाँ, उत्सर्जन तन्त्र से संबंधित बिमारियाँ।

Governing Vessels Meridian

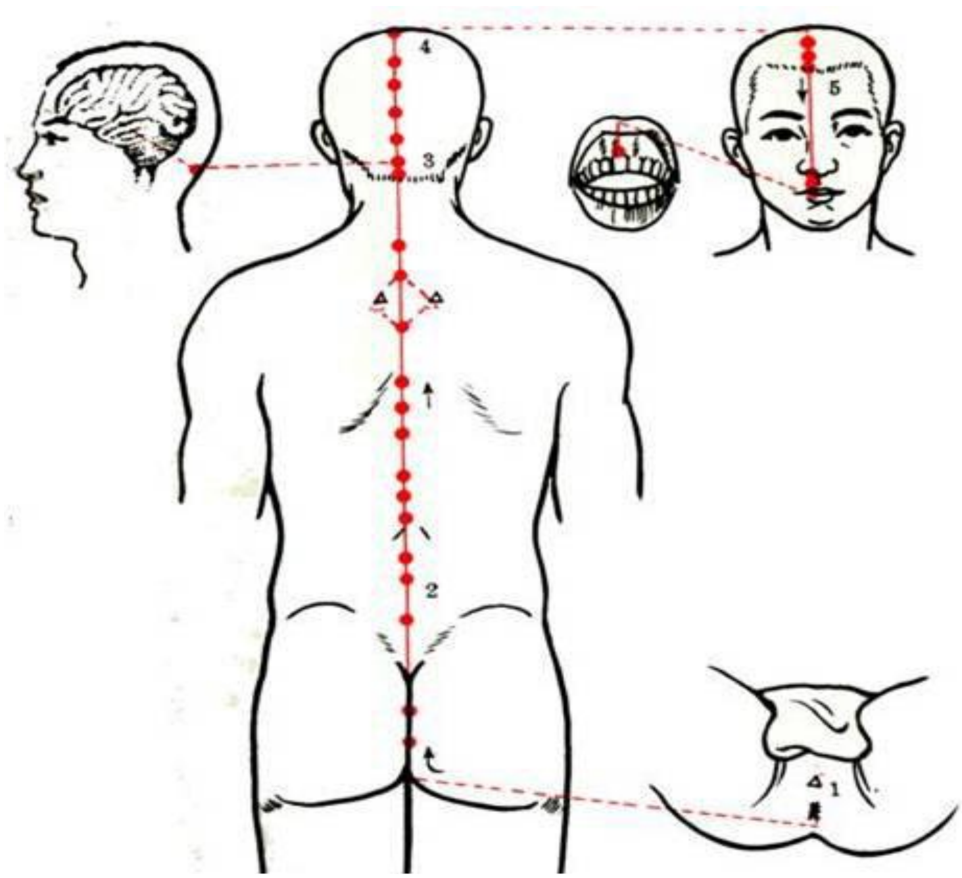

अभ्यास प्रश्न – ख

5. प्रातः 5 से 7 बजे किस अंग की ऊर्जा अधिक रहती है ?
6. सभी Yin channel पर नियन्त्रण होता है। –

क.	C V	ख.	G V
ग.	Liver	घ.	Lungs

9.5 एक्युपंक्चर के लाभ –

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा के लाभ निम्न प्रकार हैं –

1. इस प्रणाली के कोई दुष्परिणाम नहीं हैं।
2. यह औषधि रहित चिकित्सा प्रणाली है।
3. इस पद्धति से रोगी की रक्षा व रोग की समाप्ति होती है।
4. यह कष्ट रहित चिकित्सा है।
5. यह कम खर्चीली चिकित्सा प्रणाली है।
6. यह चिकित्सा दूसरे अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ भी चल सकती है।
7. यह एक सहज, सरल एवं प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान है।
8. एक्युपंक्चर से हमें तुरन्त ही लाभ मिलता है।
9. हर प्रकार के रोगों की चिकित्सा संभव है।
10. यह चिकित्सा सर्व सुलभ एवं प्रतिप्रभाव से मुक्त है।
11. इसमें समय, श्रम व धन की बचत होती है।
12. इसका परिणाम तुरन्त ही प्राप्त होता है।
13. शारीरिक व मानसिक प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है।
14. शरीर के सम्पूर्ण तन्त्र सुचारू रूप से कार्य करता है।
15. शरीर में आवश्यक तत्वों का प्रसार कर मांसपेशियों के तन्तुओं में स्फूर्ति तथा त्वचा में चमक पैदा करता है।
16. बिना दवाई की कम खर्चीली चिकित्सा पद्धति है।
17. यह पीड़ा रहित तथा सुरक्षित चिकित्सा पद्धति है।
18. इसे आवश्यकतानुसार शोधित कर बार–बार उपयोग में लाया जा सकता है।
19. चूंकि इस पद्धति में किसी भी प्रकार की औषधि का प्रयोग नहीं होता है, इसलिए इससे कोई भी दुष्परिणाम उत्पन्न नहीं होते तथा यह आर्थिक रूप से किफायती भी होती है।
20. हवाई जहाज, रेलवे यात्रा के दौरान, कारखानों, खेतों में कार्य करते समय कहीं पर भी तकलीफ होने पर डॉक्टर की उपलब्धि नहीं होने पर एक्यूपंचर/एक्यूप्रेशर ही एकमात्र पर्याय रहता है।
21. अनेक बीमारियों की रोकथाम एवं स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये दैनंदिनी एक्यूपंचर/एक्यूप्रेशर का प्रयोग किया जा सकता है।
22. जीर्ण तथा बड़े रोगों में पहले कुछ दिनों तक एक्यूपंक्चर कराने के बाद चिकित्सक द्वारा बताए गए बिन्दुओं पर प्रेशर देकर घर में ही उपचार चालू रखा जा सकता है।
23. एक्यूपंचर एवं एक्यूप्रेशर का उपयोग मोटापा कम करने के लिये एवं सौन्दर्यवृद्धि करने के लिये भी किया जाता है।
24. कई रोग ऐसे होते हैं जो किसी भी चिकित्सा पद्धति द्वारा ठीक नहीं किए जा पाते हैं। उन रोगों में भी एक्यूप्रेशर से उपचार करने पर कुछ हद तक सफल परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

उपचार के प्रतिप्रभाव एवं बचाव :–

1. एक्युप्रेशर उपचारोपरान्त चक्कर या बेहोशी हो तो किया गया उपचार हटाकर, नाक के नीचे व पैर के तलुवे के गहरे भाग को हल्का दबाव दें।
2. उपचारोपरान्त पतले दस्त शारीरिक सफाई का संकेत है,घबराये नहीं।
3. शारीरिक व मानसिक स्तर पर तीव्र परिवर्तन होता है। जिससे क्रोध, चिड़चिड़ापन उदासी व आनन्द आदि की घटना–बढ़ना हो सकती है।
4. एक्यु उपचार के पश्चात् मूत्र त्याग की मात्रा बढ़ जाती है, कुछ दिनों में ठीक हो जाती है।
5. उपचार के तुरन्त बाद नींद का आना, स्वास्थ्य का द्योतक है।

9.6 एक्युप्रेशर की सावधनियाँ

1. चिकित्सा स्थान – साफ, हवादार, शान्त व अनुकूल वातावरण होना चाहिए।

2. उपचार के समय रोगी व चिकित्सक दोनों तनाव रहित, शान्तचित्त स्थिति में हों।

3. रोगी को बिठाकर अथवा लिटाकर सुविधानुसार ही उपचार करें।

4. टूटे–फूटे, चोट या ऑपरेशन वाले स्थान पर चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

5. चिकित्सा के दौरान अपने दोनों हाथ को अच्छी तरह से डेटॉल आदि स्वच्छ करें।

9.7 एक्युप्रेशर की सीमाएँ

1. आपरेशन फोड़े व घाव के स्थान पर 3–6 महिने तक उपचार नहीं करना चाहिए।

2. गर्भवती महिलाओं को तीन माह के बाद कुछ विशेष बिन्दुओं पर उपचार नहीं देना चाहिए।

3. महिलाओं में मासिक धर्म के समय उपचार नहीं करना चाहिए।

4. एक्यु बिन्दुओं पर निडल आदि से उपचार 30 मिनट से 1 घंटे रोगानुसार लगाना चाहिए।

5.एक्यु बिन्दुओं पर दिन में दो बार खाली पेट उपचारित करना चाहिए।

6. एक्युपंक्चर का उपचार भोजन से एक घण्टे पूर्व तथा 2–3 घण्टे बाद ही करवाना चाहिए।

7सात साल से कम उम्र तथा 70 साल से अधिक उम्र के व्यक्तियों का उपचार सावधनी पूर्वक करना चाहिए।

9.8 एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर द्वारा बिमारियों का उपचार

1 मुहांसे Acne Pimples –

यह त्वचा की स्वेद ग्रंथियों एवं रोम कूपों की सूजन की बीमारी है। इसमें चेहरे पर निरंतर फुंसियाँ होती रहती है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
GV 14,
Li 4,
Li 11,

Lu 5,
Lu 7,
Sp 6

2 गंजापन Alopecia –

युवावस्था में बालों का झड़ना। ये बाल भी गुच्छे में झड़ने लगते हैं। इसके कई कारण है जैसे बहुत अधिक चिंता, मानसिक तनाव, पानी कम पीना व किडनी के रोग।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
Ex 6,
K 3,
Lu 7,
Li 4,
Tw 5

3 सर्दी–जुकाम Common Cold –

नक की श्लेष्मिक कला का तीव्र शोथ एवं नाक से अत्याधिक पानी का बहना जो कि वाइरल इन्फेक्शन होता है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
GV 14,
Li 4,
Li 11, 19, 20,
Lu 7, 11,
GB 20, St 8

4 दस्त Diarrhoeas –

जब व्यक्ति बार–बार मल त्यागने जाता हो शरीर में कमजोरी व थकान महसूस करने लगता है। उसे दस्त लगना कहते है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20, 14,
Li 4,
Sp 6, 4
St 25, 34, 37,
CV 1, 6 ,12, 16 ,
Liv 13

5 मानसिक अवसाद Depression –

यह एक मानसिक दशा का कष्ट है। जीवन में खुशी अनुभव न होना, स्वतः अथवा दूसरे में किसी भी प्रकार से दिलचस्पी न लेना।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
H 7,
P 6,
Li 4,
Sp 6,
St 36,
UB 62,
CV 6,

6 नपुंसकता Impotence –

यौन संबंधित कार्यों में अक्षमता अथवा लैंगिक शक्ति में कमी होना नपुंसकता कहलाता है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 4, 20,
K 3,
Liv 8,
Sp 6,
UB 23,
CV 2, 3, 4, 6

7 अनिद्रा Insomnia –

नींद न आने की बीमारी को प्देवउदपं कहते है। यह बीमारी मानसिक असंतुलन होने के कारण से हो सकती है या फिर किसी अन्य बीमारी के कारण भी हो सकती है।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV 20,
H 7,
Li 4,
Sp 6,
St 45,
UB 25,
CV 6,
K 1, 3,
Ex 6, 7

8 पीठ दर्द Lumbago –

पीठ के निचले भाग के दर्द को लम्बेगो या पीठ दर्द कहते हैं।

एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर चिकित्सा

उपचार बिन्दु – GV3, 4, 20,
UB 11, 25, 32, 36, 37. 40, 57, 60,

GB 34,
K 3,
Li 4,
Sp 6,
Tw 8,
Si 6.

अभ्यास प्रश्न – ग

1 बेहोशी की अवस्था शरीर के किस भाग को दबाव दिया जाता है ?

2 महिलाओं में मासिक धर्म के समय उपचार .... दिया जाता है।

3 एक्युपंक्चर में एक महत्वपूर्ण बिन्दु है जो कि प्रत्येक उपचार में दिया जा सकता है –

9.9 सारांश –

शरीर में 14 मेरीडियन चैनल होते हैं। जिसमें से 12 चैनल तो शरीर के दोनों भागों में चलते हैं तथा एक एक मेरीडियन शरीर के आगे तथा पिछे के हिस्से में चलते है। जो मेरीडियन जिस अंग के साथ संलग्न हो उसे उस अवयव का नाम दिया गया है। किसी भी मेरीडियन का एक सिरा हाथ, पैर या मुंह पर और दूसरा सिरा किसी मुख्य अंग में रहता है। प्रत्येक मेरीडियन में प्राण ऊर्जा एक निश्चित समय पर बहती है।

मेरीडियन में से किसी एक की जीवनी शक्ति बढ़ जाने पर दूसरी मेरीडियन की जीवनी शक्ति घट जाती है व इस प्रकार उनका सन्तुलन बिगड़ जाता है तब इन मेरीडियन चैनल पर दबाव देने से पुनः सन्तुलन सही हो जाता है। एवं शरीर निरोग होने लगता है। जीवन ऊर्जा, बायोएनर्जी या प्राण ऊर्जा का जाल शरीर में फैला रहता है। जो अंगों व ग्रन्थियों को आपस में जोड़ता है। इस जाल में जंक्शन बिन्दु होते हैं जो अंगों में उपस्थित होते हैं। जब ऊर्जा का प्रभाव अवरूद्ध हो जाता है, तो ऊर्जा कहीं कम और कहीं ज्यादा पहुँच पाती है। यही असन्तुलन रोग का कारण बनता है। जिन मार्गों से जीव ऊर्जा का प्रभाव बहता है उसे मेरीडियन कहते हैं। चिकित्सा द्वारा उस ऊर्जा का सन्तुलन स्थापित किया जाता है। ऊर्जा का नेटवर्क सही प्रभाव करने लगता है तो रोग स्वयं नष्ट हो जाता है। हमारे शरीर का संचालन अंग व ऊर्जा की क्रिया का ही परिणाम है। हृदय व छोटी आंत शरीर को शक्ति प्रदान करता है। यकृत व पित्ताशय ऐसे तरल पदार्थ पैदा करते हैं, जो शरीर को गतिमान करते है। शरीर को गतिमान रखने का कार्य तिल्ली व पेनक्रियाज सम्पादित करते हैं। किडनी व मूत्राशय गति को नियंत्रित करने का कार्य करता है। फेफड़े व कोलन शरीर की गतिविधियों को सुचारू बनाती है। कुल मिलाकर शरीर के अंग व गति का सामन्जस्य ही ऊर्जा की कार्य प्रणाली को प्रतिपादित करता है।

9.10 शब्दावली

मेरीडियन – प्राण ऊर्जा प्रवाह पथ।
ऑक्सीजिनेटेड – ऑक्सीजन से संयुक्त ।
चयापचय – भोजन का पाचन व अवशोषण।
संचय – इक्कठा करना।
विजातीय – शरीर के लिए अनुपयोग तत्व।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. मेरीडियन 2. ठोस
अभ्यास प्रश्न – ख	1. फेफड़े 2. C V
अभ्यास प्रश्न – ग	1. नाक के नीचे व K1 2. नही 3. Gv 20

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 एक्युप्रेशर चिकित्सा एवं सिद्धांत – डा. हरजीत सिंह
2 एक्युप्रेशर सिद्धान्त एवं प्रयोग – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
3 एडवांस एक्युप्रेशर/एक्युपंक्चर भाग 1 – माता प्रसाद खेमका
4 एक्युप्रेशर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण – डॉ रविन्द्र बागे
5. एक्युप्रेशर, जीर्ण रोगों का सफल प्राकृतिक उपचार – डॉ एल.एन.कोठारी, डॉ अमृत गुर्वेंद्र
6. एक्युप्रेशर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति – डॉ. पी. के. सैनी

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1 मेरीडियन क्या है ? मेरीडियन के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2 मेरीडियन के अर्थ एवं विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करें ?
3 एक्युपंक्चर के लाभ व सावधानियाँ लिखिए ?
4 एक्युपंक्चर चिकित्सा पद्धति के सीमाओं का सविस्तार वर्णन करें ?

इकाई – 10 चुम्बक चिकित्सा की अवधारणा एवं इतिहास

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 चुम्बक का अर्थ एवं परिभाषा
10.3.1 चुम्बक का अर्थ
10.3.2 चुम्बकीय क्षेत्र
10.4 चुम्बक चिकित्सा का इतिहास
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

सृष्टि का एक प्रमुख आाधर चुम्बकत्व है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी तथा अनेक ग्रह स्वयं में एक बडे चुम्बक हैं अनेक ग्रह इस चुम्बकत्व के द्वारा ही एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। चुम्बक एक मौलिक शक्ति है। पृथ्वी में चुम्बकत्व का कारण उसके चारों ओर वायु मण्डल में विद्युत है, पर कुछ लोगों का विचार है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहती है इससे चुम्बकत्व उत्पन्न होता है। पृथ्वी एक बड़ा प्राकृतिक चुम्बक है, जिसके उत्तरी और दक्षिणी दो ध्रुव होते हैं जिसके बीच चुम्बकत्व की शक्ति प्रवाहित होती है।

शरीर मूल रूप से एक विद्युत चुम्बकीय यंत्र है, शरीर का प्रत्येक कोष विद्युत इकाई है तथा उसका अपना एक चुम्बकीय क्षेत्र है। परिणामस्वरूप जीवों का स्वास्थ्य तथा उनकी जीवन शक्ति का संबंध पृथ्वी से है। पृथ्वी और मानव दोनों में चुम्बकत्व होने के कारण ही पृथ्वी का स्पर्श ही मानव के रोगों का निवारक, पीड़ाहारक तथा शक्तिवर्धक होता है।

प्रस्तुत इकाई में चुम्बक के अर्थ एवं विभिन्न ग्रन्थों के परिभाषाओं से परिचित होंगे। चुम्बक के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा चुम्बक के तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें चुम्बक का निर्माण करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि चुम्बक के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको चुम्बक के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1 चुम्बक के शाब्दिक व गूढ़ अर्थो का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2 चुम्बक के विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
3 विभिन्न ग्रन्थों में चुम्बक के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
4 चुम्बक के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

10.3 चुम्बक का अर्थ एवं परिभाषा

मैग्नीटिक ऊर्जा प्राचीन काल से रहस्य का विषय बना हुआ है। इसे ब्रह्माण्ड की सबसे शक्तिशाली प्राकृतिक बल के रूप में पहचाना गया है। चरक संहिता के सूत्र स्थान 26/12 में कहा गया है कि 'संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिनमें उपचारक गुण न हों' अर्थात संसार के प्रत्येक वस्तु में चुम्बकत्व के गुण विद्यमान है।

'हमारा शरीर परमावश्यक विद्युत–चुम्बकत्व यन्त्र से परिपूर्ण है। इसी शक्ति से हम कार्य और कारण की सीमा में बँधे हुए हैं। हमारे शरीर का प्रत्येक सेल इलेक्ट्रॉनिक क्षमता एवं चुम्बकत्व का भण्डार है। इस भण्डार से जो ऊर्जा निकलती है–यदि हम उसको पहचान लें तो एक दिन अपने को पहचान सकते हैं और अपने को पहचानना ही ईश्वर को पहचानना है।'

10.3.1 चुम्बक का अर्थ –

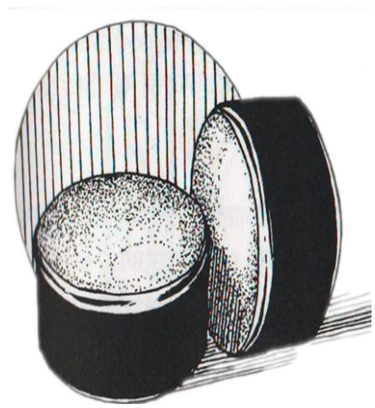

सामान्यतः चुम्बक का अर्थ है जो किसी को अपनी ओर आकर्षित कर ले या खींच ले। इसीलिए तो हम लोग कहते भी हैं कि अमुक व्यक्ति के अन्दर चुम्बक शक्ति है जो भी एक बार सम्पर्क में आ जाता है, उसका हो जाता है। किन्तु यहाँ चुम्बक का अर्थ 'लौह–चुम्बक' से हैं। अर्थात खनिज की वह धातु जो लोहे को अपनी ओर खींचे।

'ब्रह्माण्ड के समस्त ग्रहों–उपग्रहों और तारों को एक निश्चित सीमा में बांधने वाली आकर्षण शक्ति का नाम ही चुम्बकीय शक्ति है।'

''हम लोगों में से प्रत्येक के शरीर में एक प्राकृतिक शक्ति विद्यमान है, जो रोगों का सर्वोत्तम उपचार है।'' – हिप्पोक्रेट्स।

''चुम्बक में विभिन्न प्रकार के गुण पाए जाते हैं। उसमें एक प्रमुख गुण यह है कि यह लौह–तत्वों को बड़ी शीघ्रता के साथ आकर्षित करता है। ठीक ऐसा ही आकर्षण तत्व यह मानव–शरीर को भी प्रदान करता है। अतः यह मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाले विकारों को नष्ट करने की शक्ति रखता है। बाल रोगों के लिए तो यह राम–बाण सिद्ध हो चुका है। यह आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के रोगों को नष्ट करता है।'' – डॉ. मैकडूगल

10.3.2 चुम्बकीय क्षेत्र क्या है ?

चुम्बक उन सभी पदार्थों को प्रभावित करता है जो उसके आस–पास रहते हैं। चुम्बक के इसी चतुर्दिक क्षेत्र को चुम्बकीय क्षेत्र कहा जाता है जिसे किसी सिद्धपुरुष के चारों ओर व्याप्त प्रभामण्डल (Halo) के समान संज्ञा दी जा सकती है, किन्तु चुम्बक के चारों ओर जो चुम्बकीय क्षेत्र होता है, उसकी कोई सीमा नहीं होती। स्पष्ट है कि चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विस्तार होता है, हालांकि चुम्बक से बहुत दूर वाले स्थानों पर इस क्षेत्र का बहुत कम प्रभाव हो सकता है। इसके अलावा कुछ चुम्बकों को अधिक सशक्त चुम्बकीय क्षेत्र हो सकता है जबकि कुछ का बहुत हल्का क्षेत्र हो सकता है। चुम्बक की इस शक्ति का ज्ञान कर उसके ध्रुवों की शक्ति का परीक्षण किया जाता है कि उसके उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनों ध्रुव एक जैसी शक्ति के हैं या नही। किसी बिन्दु पर चुम्बकीय

क्षेत्र की शक्ति अथवा तीव्रता को ओरस्टेड (Oersted) या गौस (Gauss) में मापा जाता है। चुम्बक के नजदीक चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता अत्यधिक बढ़ी हुई रहती है लेकिन चुम्बक के दूरवर्ती स्थानों में वह मन्द पड़ जाती है। एक अध्ययन के अनुसार चुम्बक के चारों ओर का अधिकाधिक क्षेत्र 1000 गौस हो सकता है। इससे भी अधिक सशक्त चुम्बक के क्षेत्रों की तीव्रता 3–4 किलो गौस हो सकती है।

चुम्बक चिकित्सा में 1500 गौस तक के शक्ति सम्पन्न चुम्बको का प्रयोग एवं पैरों के लिए किया जा सकता है जबकि कोमल अंगों आंख, कनपटी एवं मस्तिष्क पर 500 गौस तक के अल्प शक्ति वाले चुम्बकों का उपयोग श्रेष्ठ रहता है।

चुम्बकीय क्षेत्र को मापने के लिए एक साधारण यंत्र प्रयुक्त होता है जिसे गौस–मीटर (Gauss Meter) कहा जाता है, जिससे चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता को माप लिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न – क

1 'ब्रह्माण्ड के समस्त ग्रहों–उपग्रहों और तारों को एक निश्चित सीमा में बांधने वाली आकर्षण शक्ति का क्या नाम है।

2 चुम्बक की माप इकाई है –

क. किलोग्राम ख. ग्राम

ग. गौस घ. हार्सपावर

10.4 चुम्बक चिकित्सा का इतिहास –

इस बात का अंदाजा लगाना कठिन है कि हमारे पूर्वजों ने धरती के चुम्बकत्व और संसार की अन्य दिव्य शक्तियों तथा जीवन और रोगों पर उनके प्रभाव का कैसे पता लगाया। प्राचीन मतानुसार अमावस्या और पूर्णिमा के दौरान, जब तरल पदार्थो तथा अन्य सभी द्रव्यों पर चन्द्रमा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, व्रत लेना चाहिए, यह सिद्धात बताया गया है और इसे वैज्ञानिक माना गया है। कारण है कि उन दिनों सभी 'लौहमयद्रव्यों' (अर्थात् शरीर में व्याप्त सभी तरल तथा अर्धतरल पदार्थों, जिनमें लोहा रहता है) पर चन्द्रमा का सीधा प्रभाव होता है, फलस्वरूप मनुष्य के मन तथा मस्तिष्क पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हो सकती है। अतः उन दिनों भूखा रहने से शरीर के द्रव्यों में कमी हो जाती है और मानव शरीर के द्रव्यों में कमी हो जाती है और मानव शरीर पर चन्द्रमा का उल्टा प्रभाव नहीं पड़ता। आज वैज्ञानिक इस तथ्य को शत–प्रतिशत चुम्बकीय गुणों से युक्त मान रहे हैं।

प्राचीन आर्य लोग चुम्बक और उसके गुणों से भली–भांति परिचित थे। उनका विश्वास था कि लोहे को आकृष्ट करने की शक्ति के साथ–चुम्बक में कई रहस्यपूर्ण और रोगों को दूर करने की शक्ति है। अथर्ववेद में कई रोगों के इलाज की चर्चा है। यही वेद आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली का आधार है। इसका प्रमाण है अथर्ववेद के कुछ मन्त्र जो नीचे दिए गए हैं :

अथर्ववेद के भाग 1, खण्ड1, सूक्त 17 के मंत्र 3 और 4 में उल्लेख है कि शरीर से रक्त बहने का इलाज किस प्रकार बालू से बनी वस्तु की सहायता से किया जाता है। इन मन्त्रों में कहा गया है :

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्।
अस्बुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरसंत।।3।।
परि वः सिफसावतौ धनूर्वुहत्यक्रसीत्।
सतयडलेयता सु क्रम् ।।4।।

अथर्ववेद के भाग 3, खण्ड 7, सूक्त 35 के मन्त्र 2 और 3 में इस बात का उल्लेख है कि पत्थरों की सहायता से किस प्रकार स्त्रियों के रोगों का निदान संभव है :

इमा यास्ते शत हिराः सहर्स्रधमनीरुत।
तासां ते सवीसामहमश्मना विलमप्यधाम।।2।।
परं योनरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनु।
अस्व त्वाप्रजस क्रणोभ्यश्मान ते अपिधान कृणोमि।।3।।

सूक्त 17 के मन्त्रों में सिक्तावति शब्द का प्रयोग हुआ है और सूक्त 35 के मन्त्रों में अश्मान् शब्द का। इनके अर्थ इस प्रकार है :

सिक्त का अर्थ है बालू।
सिक्तावति का अर्थ है बालू से भरा।
अश्मान् का अर्थ है पत्थर, चकमक पत्थर के साथ (और अन्य वस्तुएं)
संस्कृत–अंग्रेजी शब्द कोष के अनुसार–
सिक्त का अर्थ है बालू, कंकर, पत्थर।
अश्मान् का अर्थ है पत्थर, चट्टान, कीमती पत्थर, पत्थर से बना कोई औजार।

अथर्ववेद के उपरोक्त मन्त्रों में जिस इलाज का उल्लेख है वह बालू या पत्थरों से नहीं किया गया बल्कि कुछ विशेष प्रकार की बालू और पत्थरों से किया गया है जिनमें रोगों को दूर करने के विशेष गुण थे। धातुओं से बने चुम्बक लोहे के मिश्रण से बने धातुओं से बनाए जाते हैं और पकी मिट्टी से बने चुम्बक रेत, मिट्टी, बेरियम और लोहे के आक्साइड को मिला कर बनते हैं। इस प्रकार वेदों में सिक्तावती, अश्म और आयुर्वेद के साहित्य में लोहकान्त शब्दों की जो चर्चा आती है वह इस बात का प्रमाण है कि भारत में प्राचीन काल से ही चकमक पत्थर और उसके गुणों का पता था और उनका प्रयोग चिकित्सा के लिए किया जाता था।

प्राचीन काल में ऐसा विश्वास भी किया जाता था कि मनुष्य को सामान्य जीवन में दक्षिण–उत्तर दिशा में सोना चाहिए अर्थात सिर दक्षिण की ओर, पैर उत्तर की ओर होने चाहिए ताकि पृथ्वी और शरीर की चुम्बकीय शक्ति में निरन्तरता बनी रहे। जिससे जोड़ों के दर्द व स्नायु संस्थान के रोग ठीक होते हैं। तथा जीवन के अंतिम क्षणों में उत्तर–दक्षिण दिशा में सोना चाहिए अर्थात सिर उत्तर की ओर, पैर दक्षिण की ओर होने चाहिए ताकि पृथ्वी और शरीर में चुम्बकीय समानता बनी रहे। ऐसा करने से मृत्यु के बाद पुनर्जन्म में शरीर को कष्ट की अनुभूति कम होती है, ऐसी धारणा मानी गयी है।

आधुनिक सभ्यता की ओर जब हम जाते हैं तो मिश्र देश में चकित कर देने वाला ज्ञान तथा दैनिक जीवन में चुम्बकीय शक्तियों का चमत्कारी प्रयोग पाते हैं। यहां के पिरामिड विज्ञान और चुम्बकीय शक्तियों का चमत्कारी प्रयोग पाते हैं। यहां के पिरामिड विज्ञान और

चुम्बकीय शक्तियों के रहस्यपूर्ण आकर्षण के जीवन्त साक्ष्य हैं, जिनके कारण वर्षों पुराने शव नष्ट होने तथा गलने–सड़ने से सुरक्षित रहते हैं।

पुराने समय में बड़े–बड़े लोग अपना स्वास्थ्य रखने और वृद्धावस्था के प्रभाव को रोकने के लिए चुम्बक पहना करते थे। मिश्र के सम्राट टोलमी ओलेत की परम सुन्दरी पुत्री क्लोपीत्रा (69–30 ईसापूर्व) के बारे में यह कहा जाता है कि वह अपना सौन्दर्य बनाए रखने के लिए अपने माथे पर चुम्बक पहना करती थी। लोग सिर दर्द से छुटकारा पाने के लिए चुम्बक को ताबीज के रूप में पहनते थे। जन–साधारण को विश्वास था कि चुम्बक में दैवी शक्ति है। ईसा से लेकर आठवीं–नवीं सदी के दौरान अरस्तू, प्लेटो तथा होमर जैसे महान ग्रीक सन्तों ने भी चुम्बक का वर्णन किया है तथा अनेक कार्यों हेतु चुम्बकों का प्रयोग किया है। अठारहवीं सदी के आते–आते दो समकालीन विभूतियां थीं– मेसमेर तथा हैनीमैन, जिन्होंने चिकित्सा के निमित्त चुम्बकों का प्रयोग किया। इनमें मेसमेर मानव चुम्बकत्व (Human Magnetism) अर्थात व्यक्तिगत स्पर्श द्वारा चुम्बकों का प्रयोग किया करते थे, जबकि हैनीमैन चुम्बकीय छड़ों को काम में लाया करते थे।

आज जबकि विज्ञान क्षेत्र में उन्नति कर रहा है, चाहे वह भौतिक विज्ञान हो या रसायन विज्ञान, चुम्बकत्व हो या विद्युत, भेशज विज्ञान हो या जैव–चुम्बक अभियांत्रिकी, हमारे वैज्ञानिक हमारे पूर्वजों द्वारा अर्जित चुम्बक के रोगोपचारक मूल्यों का केवल समर्थन ही नहीं करते वरन्, चुम्बक के जैवीय प्रभावों के बारे में भी अधिकाधिक ज्ञान उपलब्ध करा रहे हैं।

अमेरिका, रूस तथा जापान जैसे देश अपने अध्ययन–मनन में बहुत आगे हैं एवं चुम्बक की अनेक लाभकारी वस्तुओं को रोगशमन एवं मानव–हित हेतु प्रयोग करने में लगे हैं। उदाहरण के लिए, जापान में चुम्बकीय कुर्सियों के रूप में अनेक प्रकार की बीमारियों का इलाज करने के लिए किया जा रहा है। यह अनेक प्रकार का दर्द, कधों की जकड़न, आमवात तथा संधिवात में लाभकारी है। अमेरिका में चुम्बकीय जल द्वारा पेशाब की पथरी का उपचार एवं मूत्रण कष्ट को ठीक करने में चुम्बक का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है। वैज्ञानिकों ने चुम्बक द्वारा प्रयुक्त पानी से पौधों को सींचा तो पाया कि उन सभी पौधों का विकास बिना खाद के शीघ्र होने लगा। आज अमेरिका में वैज्ञानिक अर्बुद (कैंसर) के उपचार हेतु चुम्बक विज्ञान का सहारा लेने लगे हैं। वे मानते हैं कि नष्ट कोशिकाओं (Malignant Cells) का विकास या नवीन कोशिकाओं का जन्म चुम्बक द्वारा ही सम्भव है।

वैज्ञानकि अब इस सिद्धान्त पर कार्य कर रहे हैं कि चुम्बक मस्तिष्क लेख (MEG), एवं चुम्बक हृल्लेख (MCG), परम्परागत विद्युत मस्तिष्क लेखों (EEGS) तथा विद्युत हृल्लेखों (ECGS) की तुलना में चुम्बकीय क्षेत्रों को सुरक्षित रखने वाले उपकरण ज्यादा लाभकारी एवं लम्बी अवधि तक सही रहने वाले होते हैं। अब सारे संसार में वैज्ञानिक अनेक रोगों के इलाज के लिए, विशेष रूप से ऐसे रोगों के लिए जिनका इलाज किसी प्रचलित चिकित्सा प्रणाली से नहीं हो पाता, चुम्बकीय चिकित्सा को यथार्थ से परिपूर्ण इलीनामइम विश्वविद्यालय के अन्तर्गत डॉ. मेडलीन एफ. बारनौथी की यथार्थ से परिपूर्ण भविष्यवाणी है कि –''कुछ ही समय में चुम्बकीय ज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में एक सशक्त नूतन विश्लेषक तथा रोगोपचारक शक्ति के रूप में विकसित हो जायेगा।''

आज भारत के अनेक चिकित्सक चुम्बक चिकित्सा का लाभ उठाकर अनेक असाध्य रोगों को ठीक करने में सफल हो रहे हैं। आज चुम्बक का प्रयोग चिकित्सा जगत में गली–गली होने लगा है, जो यह प्रमाणित करता है कि प्रकृति की वास्तविकता चुम्बक में विद्यमान है।

चुम्बक और उसकी शक्ति के प्रयोग संसार में बहुत विस्तृत रूप में हो रहे हैं। छोटे–छोटे खिलौनों से लेकर आकाश में भ्रमण करने वाले रॉकेट और सैटेलाइट तक में चुम्बक का प्रयोग होता है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसकी हर तरंग प्राणी के शरीर में भी चलती रहती है। इसके कण पूरे ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। रोगों की चिकित्सा में भी इसकी तरंगें बहुत लाभदायक हैं। आधुनिक युग में चुम्बक की खोज ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व मानी जाती है। मान्यता है कि मॅग्नेटिस नामक चरवाहा के हाथ की लोहे की छड़ और उसके जूते की लोहे की कीलें एक पत्थर से चिपक गई, जिसे छुडाना मुश्किल हो रहा था, इस प्रथम ज्ञान के कारण उस बालक के नाम पर उक्त पत्थर का नाम 'मैग्नेट' पड़ गया। 15वीं शताब्दी तक चुम्बक का प्रयोग प्रेरणशक्ति और दिशा सूचक के रूप में किया जाता रहा है। प्रथम बार 16वीं शताब्दी में स्विस वैज्ञानिक पेरासॅल्सस ने चुम्बक के रोग निवारक गुण की खोज की।

वर्तमान युग में चुम्बक के वैज्ञानिक स्वरूप का प्रतिपादन जिसमें दो ध्रुव उत्तरीय व दक्षिणी ध्रुवों का विश्लेषण इंग्लैण्ड के डॉ. विलियम गिलबर्ट (1540–1603) ने की। तथा यह स्पष्ट किया कि पृथ्वी स्वयं एक बहुत बड़ा प्राकृतिक चुम्बक है। इस क्षेत्र के अनुसंधन कार्य जिसे 'बायो–मॅग्नेटिक्स' के नाम से जाना जाता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1 अथर्ववेद में चुम्बक को .... या .... नाम से उल्लेखित किया गया है।

2 चुम्बक के रोग निवारक गुण की खोज किसने की।

क. न्यूटन ख. पेरासॅल्सस

ग. हिप्पोक्रेटस घ. अरस्तू

10.6 सारांश –

चुम्बक चिकित्सा प्रणाली एक विज्ञान भी है और कला भी। यह विज्ञान इस कारण है कि चुम्बकत्व बिजली के समान है। इसका प्रयोग एक कला है क्योंकि शरीर के भिन्न–भिन्न रोग दूर करने के लिए अलग–अलग अंगों पर अलग–अलग शक्ति के चुम्बकों का चुनाव करना पड़ता है। यह ऐसी चिकित्सा प्रणाली है जिसका क्षेत्र बहुत विशाल है। इससे शरीर के लगभग सभी ऐसे रोग दूर किये जा सकते हैं हो शरीर की क्रियाओं से संबंधित हैं।

चुम्बक चिकित्सा प्रणाली प्रकृति के नियमों पर आधारित है। यह कोई जादू या चमत्कार नहीं। इसका मतलब केवल यह है कि शरीर के जिन अंगों में विकार या रोग हो उन पर चुम्बक लगा कर उस रोग को दूर किया जाय या फिर हाथों या पैरों पर चुम्बक लगाकर व्याधि को शरीर से निकालने की कोशिश की जाती है जिससे कि वह पूर्ण रूप से

स्वस्थ हो जाय। चिकित्सा के लिए चुम्बकों का प्रयोग कोई नई प्रणाली नहीं है। पुराने ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है। लेकिन लोग इसे भूल गए थे और कई कारणों से यह प्रणाली लुप्तप्राय हो गई थी।

10.7 शब्दावली

पुनर्जन्म – एक जन्म के बाद फिर से दूसरा जन्म लेना।
गौस – चुम्बक की माप ईकाइ ।
साक्ष्य – प्रमाण।
मनोविकारों – एक प्रकार का मानसिक रोग, मन की क्षुब्ध अवस्था।
विभूतियाँ – विद्वतजन, बुद्धिमान, प्रतिभावान।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. चुम्बकीय शक्ति 2. गौस
अभ्यास प्रश्न – ख 1. 'अश्मन' , 'अश्म' 2. पेरासॅल्सस

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. हीरा लाल बंसल
2 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. चौधरी व सिंह
3 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. आर. एस. अग्रवाल
4 वैकल्पिक चिकित्सा विज्ञान (अध्यात्म के स्वर) – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1 चुम्बक क्या है ? चुम्बक के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2 चुम्बक के अर्थ एवं इतिहास का सविस्तार वर्णन करें ?
3 वेदों चुम्बक चिकित्सा के प्रमाण को सुस्पष्ट करें ?
4 चुम्बक चिकित्सा एक प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान है ? स्पष्ट कीजिए ?

इकाई – 11 चुम्बक के प्रकार एवं विभिन्न उपकरण

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 चुम्बक एवं चुम्बकीय शक्ति
11.4 चुम्बक के गुणों का परिचय
11.5 चुम्बकों के विविध प्रकार (Types of Magnets)
    11.5.1 प्राकृतिक चुम्बक,
    11.5.2 मानव निर्मित चुम्बक
11.6 चिकित्सकीय दृष्टिकोण से चुम्बक के प्रकार
11.7 ध्रुवों के आवश्यक गुणधर्म
    11.7.1 उत्तर– ध्रुव के गुणधर्म (North pole)
    11.7.2 दक्षिण ध्रुव के गुणधर्म (South pole)
11.8 चुम्बक प्रयोग विधि
11.9 चुम्बक निर्माण विधि
11.10 सारांश
11.11 शब्दावली
11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ
11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना .

हम सभी यह जानते हैं कि हवा में स्वतंत्र रूप से लटकाया गया चुम्बक उत्तर–दक्षिण दिशा की ओर उन्मुख रहता है। धरती एक बहुत चुम्बक के समान है, जिसके दो चुम्बकीय ध्रुव हैं। इनमें धरती के चुम्बक का उत्तरी ध्रुव धरती के भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव के पास स्थित है और दक्षिणी ध्रुव भौगोलिक उत्तरी ध्रुव पास। धरती के विरोधी एक स्वतंत्र रूप से हवा में लटकाये हुए चुम्बकीय ध्रुव एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं एंव अपनी निश्चित दूरियां बनाये हुए हैं। पृथ्वी के चुम्बकत्व से कई वैज्ञानिक प्रश्नों का हल निकलता है। धरती की प्रकृति भी एक वृहद आकार तथा अल्प शक्ति का चुम्बकत्व रखती है। इस वृहदाकार चुम्बक द्वारा उत्पादित चुम्बकीय क्षेत्र धरातल पर 0.3 गौस होता है। धरती का चुम्बकीय क्षेत्र समय–समय पर हल्का सा बदल जाता है। धरती पर चुम्बकीय क्षेत्र प्रकृति की दी हुई शक्ति है जिसका मानव कल्याणार्थ उपयोग होना सार्थक है।

प्रस्तुत इकाई में चुम्बक के विभिन्न प्रकारों से परिचित होंगे। जिससे चुम्बक के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा चुम्बक के विभिन्न उपकरणों पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें चुम्बक का निर्माण करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि चुम्बक के इन विभिन्न प्रकारों व उपकरणों के स्वरूपों का अध्ययन कर आपको चुम्बक के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1 चुम्बक के प्रकारों का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2 चुम्बक के विभिन्न उपकरणों से परिचित हो सकेंगे।
3 विभिन्न चुम्बक के शक्ति से रूबरू हो सकेंगे।
4 चुम्बक के तात्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

11.3 चुम्बक एवं चुम्बकीय शक्ति

प्रायः सभी जानते हैं कि चुम्बक को लोहे के सम्पर्क में लाते ही वह उसको अपनी ओर खींच लेता है। चुम्बक एक प्रभा–मण्डल से घिरा रहता है जो कि उसका चुम्बकीय क्षेत्र कहलाता है। लोहे के टुकड़े और लोहे से तैयार अनेक चीजें इसके पास आते ही इसके शक्ति क्षेत्र में आ जाती है और इसकी ओर आकृष्ट हो जाती हैं। इसे हम नित्य–प्रति रोजमर्रा के काम में लाते हैं। हम इसे बच्चों के कई खिलौनें में लगा हुआ पाते है।, जिनमें इसका कोई टुकड़ा लगा रहता है जो दूसरे खिलौनों को अपनी ओर आकृष्ट करता है या झटका देकर अलग करता है। यह बिजली की मोटर के समान शक्ति वाला होता है, जहाँ विद्युत धारा के प्रभावाधीन होकर वह घूमने लगता है। रेडियो या टेलीविजन के ध्वनि विस्तारकों तथा टेलीफोन के ध्वनिग्राही यंत्रों की मूल जालियाँ चुम्बक से ही बनाई जाती है, जहाँ वह विद्युतधारा की ऊर्जा को ध्वनि में बदलने में सहायता करता है। इसके अलावा यह रेफ्रिजरेटर के दरवाजों के पास भी लगा हुआ मिलता है।

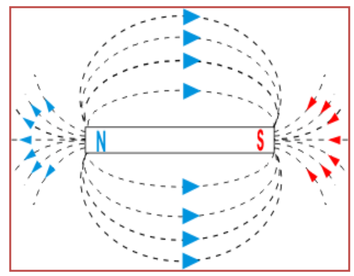

प्रकृति चुम्बक तथा चुम्बकीय शक्ति दोनों का अनेक रूपों में प्रयोग करती है। हमारी पृथ्वी एक बहुत बड़े किन्तु कमजोर चुम्बक का कार्य करती है। धरती की यह चुम्बकीय शक्ति ही नाविक को दिशा बोध कराता है। यह उसकी चुम्बकीय शक्ति का कमाल होता है। अकेली पृथ्वी ही क्यों, हमारा सूरज, रात को दिखाई देने वाले तार तथा ग्रह, बड़े–बड़े चुम्बकों जैसा कार्य करते हैं और अपनी चुम्बकीय शक्ति को संसार में दूर–दूर तक फैला देते है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि हम हमेशा उन चुम्बकीय शक्ति–क्षेत्रों के प्रभावाधीन रहते हैं जो सामूहिक रूप से अपना कार्य करते रहते हैं लेकिन हमें उनका पता नहीं चलता। प्रत्येक जीव जन्तु की अपनी एक चुम्बकीय शक्ति होती है। मनुष्य का मस्तिष्क कभी–कभी अति चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न करता है तथा दो चुम्बकीय क्षेत्र एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार धरती, सूरज, तारे और ग्रह, सभी हमारे मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं, इसके कारण हमारा मस्तिष्क हमारे शरीर को नियंत्रित करता है।

चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव मानव जीवन के दैनिक कार्यकलापों से हमेशा सम्बद्ध रहता है। चुम्बक की वास्तविक स्थिति को जानने से पहले हम जानें कि चुम्बक क्या है एवं इसे प्रमुख गुण क्या हैं?

11.4 चुम्बक के गुणों का परिचय : –

भौतिक विज्ञान के वैज्ञानिकों ने चुम्बक में निम्नलिखित भौतिक गुणों की खोज की है–

1. चुम्बक एक विशेष प्रकार की खनिज धातु है।
2. चुम्बक में लोहे से निर्मित सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है।
3. चुम्बक को यदि किसी धागे की सहायता से स्वतंत्र रूप से लटका दिया जाये तो उसका एक सिरा सदैव उत्तर की ओर ही रहेगा और दूसरा सिरा दक्षिण की ओर रहेगा। जो सिरा उत्तर की ओर है, वह बार–बार हटाने पर भी उत्तर की ओर ही रहेगा और जो सिरा दक्षिण की ओर है, वह दक्षिण की ओर ही रहेगा। इसी प्रभाव से प्रभावित होकर वैज्ञानिकां ने उत्तर की ओर रहने वाले सिरे का नाम उत्तरी ध्रुव (नार्थ पोल = N) एवं दक्षिण की ओर रहने वाले सिरे का नाम दक्षिणी ध्रुव (साउथ पोल = S) रख दिया।
4. चुम्बक के दो टुकड़े यदि एक दूसरे के सामने लाये जाने पर कभी तो वे एक दूसरे से चिपक जाते है। और कभी एक दूसरे से दूर भागते हैं। जब दोनों चुम्बकों का उत्तरी ध्रुव एक–दूसरे के विपरीत होते हैं तो आपस में आकर्षित होते हैं, जैसे एक चुम्बक का उत्तरी ध्रुव और दूसरे चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव हो तो आमने–सामने आने पर आपस में चिपक जाते है और जब दोनों चुम्बकों के ध्रुव समान होते हैं, जैसे उत्तरी ध्रुव और उत्तरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव, तो विकर्षित होते हैं या दूर भागते हैं।
5. चुम्बक के कितने भी सूक्ष्म टुकड़े कर दिये जायें किन्तु उसके उत्तर और दक्षिणी ध्रुव नष्ट नहीं किये जा सकते अर्थात तुरन्त ही उसका एक सिरा उत्तरी ध्रुव तो दूसरा सिरा दक्षिणी ध्रुव बन जाता है।
6. चुम्बक में यदि कुछ समय किसी लोहे के टुकड़े को लगा दें, तो उसमें भी चुम्बकीय शक्ति पैदा हो जाती है अर्थात् वह भी चिपक कर चुम्बक बन जाती है। क्रियात्मक रूप से हम यदि लोहे की पिनों को कुछ देर चुम्बक के सम्पर्क में रखते हैं तो वह अन्य लोहे की चीजों को अपनी ओर आकर्षित करती दिखाई देती हैं। उनमें भी चुम्बकत्व आ जाता है।
7. चुम्बक से उत्पन्न उत्तरी ध्रुव की तरंगों में चन्द्रमा के समान शीत गुण होता है जबकि दक्षिणी ध्रुव की तरंगों में सूर्य के समान उष्ण गुण होता है।
8. चुम्बकीय तरंगें लोहे को छोड़कर कपड़ा, प्लास्टिक, तांबा, पीतल, सोना, चांदी, मोती, हीरा आदि में पार हो जाती है। यही कारण है कि यदि हथेली के ऊपर चुम्बक रख दिया जायो और हथेली के नीचे लोहे की पिन रख लें तो हथेली को ऊपर उठाने पर वे लोहे की पिनें हथेली के नीचे चिपक जायेंगी। इससे सिद्ध होता है कि चुम्बकीय तरंगों में अपार भेदन शक्ति होती है जो हथेली से भी पार हो जाती हैं।
9. चुम्बकीय ध्रुवों की प्रेरणा–दिशाएं विरुद्ध होती हैं क्योंकि उत्तरी ध्रुव में प्रोट्रॉन अणुशक्ति एवं दक्षिणी ध्रुव में इलेक्ट्रॉन अणुशक्ति होती है।

10. प्रायः चुम्बक का अर्थ किसी को अपनी ओर आकर्षित करने से या अपनी ओर खींचने से होता है। किन्तु यहां पर चुम्बक का अर्थ लौह चुम्बक से है अर्थात वह खनिज धातु जो लोहे को अपनी ओर खींचे।
11. किसी चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति पर चुम्बक की शक्ति आधारित होती है। चुम्बक की शक्ति चाहे कितनी ही क्यों न हो, चुम्बकीय क्षेत्र का विस्तार असीम
12. होता है। चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति चुम्बक से दूरी के कारण कम होती है पर समाप्त नहीं होती, और इसी चुम्बकीय क्षेत्र का प्रयोग चुम्बक चिकित्सा में किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न – क

1 रेडियो या टेलीविजन के ध्वनि विस्तारकों तथा टेलीफोन के ध्वनिग्राही यंत्रों की मूल जालियाँ .... से ही बनाई जाती है।

2 चुम्बक से उत्पन्न उत्तरी ध्रुव की तरंगों में होती है –

क.	गर्मी	ख.	शीतलता
ग.	रूखापन	घ.	कुछ भी नहीं।

11.5 चुम्बकों के विविध प्रकार (Types of Magnets)

चुम्बक के मुख्य दो प्रकार है –

11.5.1 प्राकृतिक चुम्बक,

11.5.2 मानव निर्मित चुम्बक

11.5.1 प्राकृतिक चुम्बक :– पहले वर्ग के चुम्बक में पाये जाते हैं, अर्थात खनिज के रूप में मिलते हैं और उनमें लोहे को आकृष्ट करने की शक्ति होती है। प्राचीन समय में एशिया माइनर में मैग्रीशिया के अन्दर कुछ काले पत्थरों की खोज की गई। चूंकि ये पत्थर मैग्नीशिया से प्राप्त हुए थे, अतः इनको मैग्नेट (Magnet) अर्थात् चुम्बक के नाम से जाना जाने लगा। इन टुकड़ों में लोहे तथा कुछ अन्य पदार्थो को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता पाई गई। इन पत्थरों को लोडस्टोन या नेचुरल मैग्नेट के रूप में भी जाना जाने लगा। कुछ अन्य प्राकृतिक चुम्बक कच्चे लोहे, मैगनेटाइट और लोहे के पाइराइट में पाए जाते हैं। उनमें लोहे और ऑक्सीजन के साथ–साथ लोहे के कणों को आकृष्ट करने की शक्ति होती है। इन प्राकृतिक चुम्बकों की शक्ति एक समान रहती है और उसे घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। इसी कारण प्राकृतिक चुम्बकों का प्रयोग एक निश्चित सीमा तक ही हो सकता है। प्राचीन काल में प्राकृतिक चुम्बकों का प्रयोग दिशा बोध हेतु होने लगा था।

11.5.2 मानव निर्मित चुम्बक :– मनुष्य द्वारा निर्मित चुम्बकों ने प्राकृतिक चुम्बकों का स्थान ले लिया है क्योंकि जरूरत के अनुसार उन्हें अपेक्षित आकार भी दिया जाता सकता है और उपयोगिता के अनुसार उनकी शक्ति को घटाया–बढ़ाया जा सकता है।

वैसे चुम्बक चिकित्सा में प्रयुक्त चुम्बक का निर्माण अनेक धातुओं से होता है, किन्तु सबसे अधिक जिस मिश्र धातु का प्रयोग होता है उसे एलीनीको कहा जाता है। इस मिश्र धातु में एल्यूमीनियम, निकल, लोहा और कोबाल्ट रहते हैं। इसके अलावा फैरिक एवं बेरियम के ऑक्साइड से तैयार की गई कृत्रिम सामग्री से चुम्बक बनाये जाते हैं, जिन्हें सिरेमिक, फैराइट या ग्रेफाइट चुम्बक कहा जाता है।

व्यावहारिक प्रयोग हेतु प्रयुक्त सामग्रियों से विभिन्न आकारों के चुम्बक बनाये जाते हैं। जैसे– छड़ी के आकार के ठोस चुम्बक, बेलन के आकार के छेदयुक्त चुम्बक, अंगूठीनुमा चुम्बक, छेदवाले चुम्बक, चतुष्कोण चुम्बक, दूज के चांद जैसी शक्ल वाले चुम्बक, अंग्रेजी के अक्षर 'यू' आकार वाले चुम्बक, अर्ध चन्द्राकार चुम्बक, वर्गाकार चुम्बक, समकोणनुमा चुम्बक आदि।

स्थायी तथा अस्थायी चुम्बक :– मानव निर्मित चुम्बकों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है–स्थायी तथा अस्थायी चुम्बक। स्थायी चुम्बक उनको कहा जाता है जो अपनी चुम्बकीय आकर्षण शक्ति को एक लम्बे समय तक, प्रायः कुछ दशकों तक धारण करते हैं, जबकि अस्थायी चुम्बकों की चुम्बकीय आकर्षण शक्ति को इच्छानुसार जोड़ा जा सकता है और घटाया भी जा सकता है। स्थायी चुम्बकों की मुख्य उपयोगिता रेडियो, टेलीफोन, चुम्बक, चिकित्सा आदि में पाई जाती है। अस्थायी चुम्बकों का प्रयोग बिजली की घण्टी, विद्युत उपकरणों, विद्युत क्रेन आदि यंत्रो में होता है।

चुम्बक चिकित्सा में जिन चुम्बकों का प्रयोग होता है, वे एलनीको धातु के होते है। इसमें बेलन के आकार के चुम्बक प्रयोग में आते है। या दूज के चांद की शक्ल वाले, जिन्हें सेरेमिक चुम्बक कहते हैं। इन बेलननुमा चुम्बकों के आकार एवं शक्ति के आधार पर चुम्बक को मुख्यतः निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है –

11.6 चिकित्सकीय दृष्टिकोण से चुम्बक के प्रकार :

चुम्बक के चार प्रकार पाये जाते हैं –

1. **शक्तिशाली चुम्बक (High power magnets)**
2. **मध्यम शक्ति चुम्बक (Medium power magnets)**
3. **अल्प शक्ति/ई.एन.टी. चुम्बक (Low power/E.N.T.magnets)**
4. **समूह चुम्बक (Group magnets)**

1. शक्तिशाली चुम्बक (High power magnets) – इनकी शक्ति लगभग 2000 गौस होती है ये सामान्यतया वयस्कों के लिए उपयोगी होते हैं, इसका प्रयोग हाथ के हथेलियों और पैर के तलुओं पर किया जाता है। इस चुम्बक का प्रयोग विभिन्न रोगों में किया जाता है जैसे – सायटिका, पोलियो, पक्षाघात, कमरदर्द, गठिया, स्पोन्डेलाइटिस, कष्टार्तव। उच्चशक्ति चुम्बक का प्रयोग रोगग्रस्त अंगो पर स्थानिक (Local application) रुप में किया जाता है।

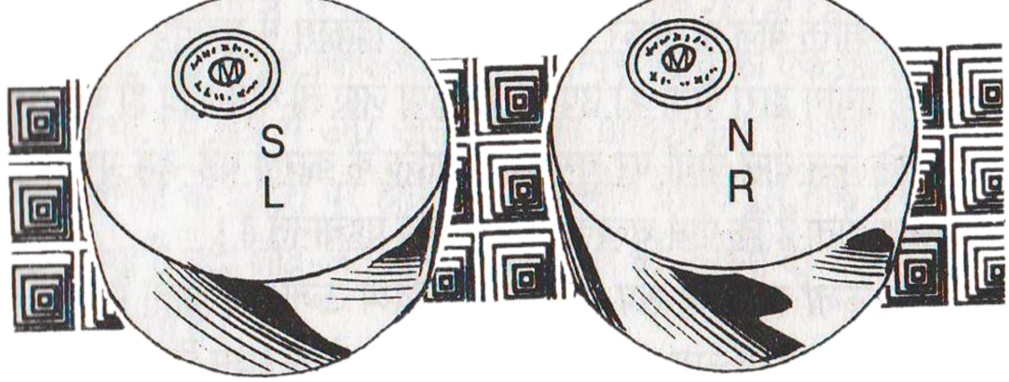

2. मध्यम शक्ति चुम्बक (Medium power magnets) – इसकी शक्ति लगभग 500 गौस होती है ये बच्चो के लिए उपयोगी होते हैं। कान के दर्द, दांत के दर्द में इसका प्रयोग हथेलियों और तलुवों पर किया जाता है।

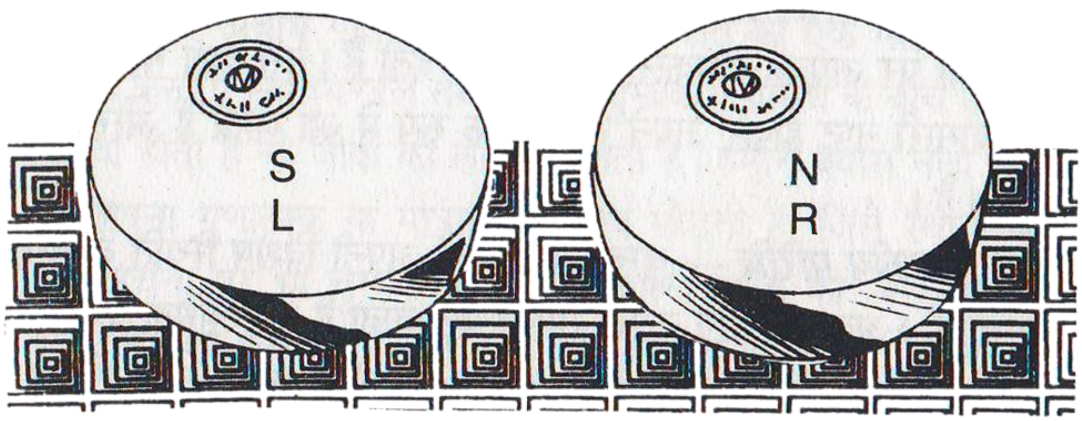

3. अल्प शक्ति/ई.एन.टी.चुम्बक (Low power/E.N.T.magnets) – इनकी शक्ति लगभग 200 गौस होती है ये मस्तिष्क के कोमलांगों जैसे – ऑख, कान, नाक, टॉसिल आदि अंगों के लिए होते हैं। कान दर्द, नाक का हड्डी बढना, अनिद्रा, बौनेपन, टॉन्सिल का प्रदाह आदि रोगों में प्रयोग किया जाता है।

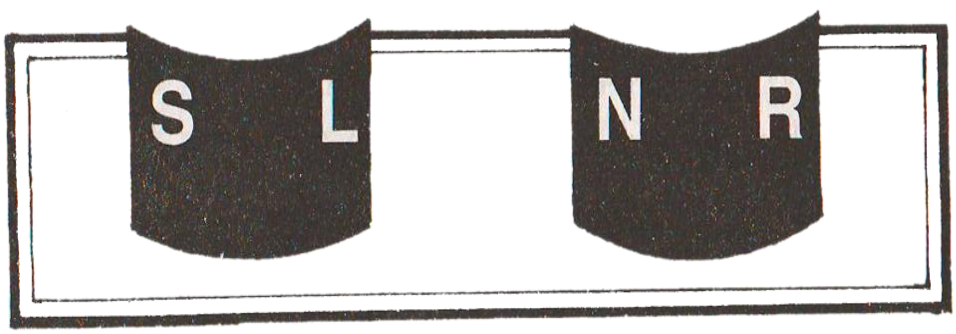

4. **समूह चुम्बक (Group magnets) –** रोग विशेष हेतु छोटे–छोटे चुम्बकों का एक समूह अथवा बेल्ट के आकार की विभिन्न पट्टीयाँ बनाकर विशिष्ट चिकित्सा हेतु प्रयोग किया जाता है।

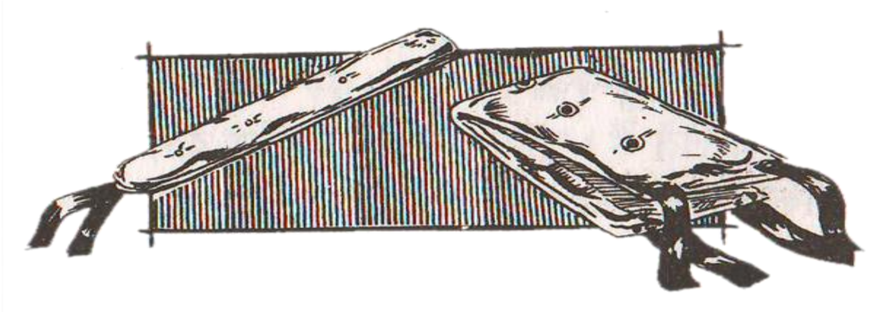

11.7 ध्रुवों के आवश्यक गुणधर्म –

पश्चिम बंगाल के नगर नई हट्टी के डॉक्टर ए. के. भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक 'मैग्नेट एण्ड मैगनेटिक फील्ड्स' या 'हीलिंग बाई मैगनेट्स' में लिखा है कि चुम्बक ब्रह्माण्ड का ही सूक्ष्म रूप है और उसमें वे सारी शक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। उन्होंने चुम्बकों के असंख्य गुणों का वर्णन किया है और यह बताया है कि किस प्रकार चुम्बकों के प्रत्येक ध्रुव में भिन्न–भिन्न गुण हैं।

चुम्बकों के मुख्य गुण निम्नलिखित तालिका में दिए गए हैं :

क्र.	गुण	उत्तरी ध्रुव	दक्षिणी ध्रुव	बीच का भाग
1	चुम्बकीय	आकर्षण	विकर्षण	तटस्थ
2	विशेषता	सकारात्मक	नकारात्मक	तटस्थ
3	प्रभाव	ठण्डा	गर्म	तटस्थ
4	सामान्य	प्रेम	घृणा	डपेक्षा
5	आणविक	प्रोटोन	इलेक्ट्रोन	न्यूट्रोन
6	ग्रह	बुध, शुक्र, चन्द्र	सूर्य, मंगल	वृहस्पति, शनि
7	तत्व	पृथ्वी, जल	अग्नि	वायु, आकाश
8	ब्रह्माण्डीय रंग	हरा, नीला, नारंगी	लाल, पीला	नीला, बैंगनी

दोनों ध्रुवों के आवश्यक गुणधर्म निम्नानुसार हैं –

11.7.1 उत्तरीय ध्रुव के गुणधर्म (North pole)

1. ठण्डक व शांतिप्रदायक।

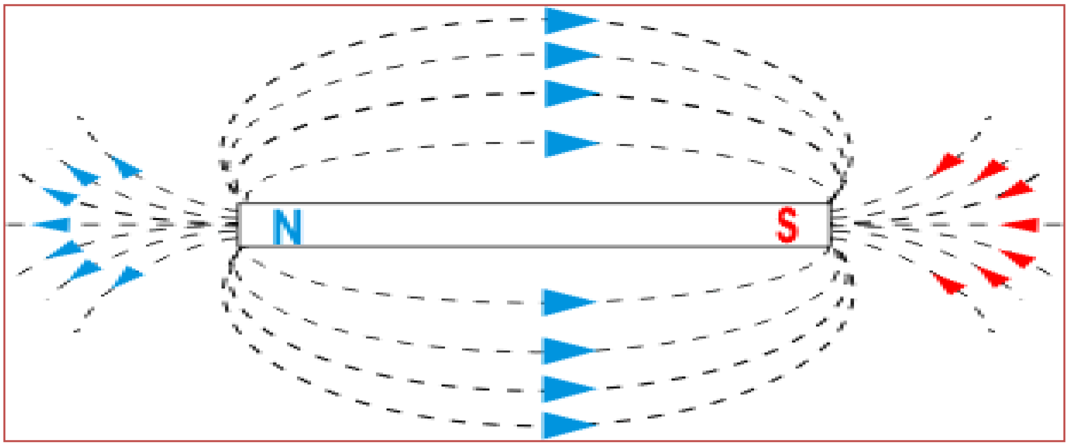

2. संकोचक (Controction)

3. अवरोधक व गति मंदक।
4. क्षारीय गुण । अम्लता को घटाता है।
5. संक्रमण नियंत्रक।
6. रक्त परिभ्रमण गति नियंत्रक।
7. फोडे व गाठें वृद्धि नियंत्रक।
8. फल, साग–सब्जी, दूध आदि को ताजा रखता है।
9. मानसिक अशांति, मूर्छा, अनिद्रा आदि में लाभप्रद है।

11.7.2 दक्षिण ध्रुव के गुणधर्म (South pole)

इसमें उत्तरी ध्रुव के विपरीत गुणधर्म पाये जाते हैं।–

1. गर्मी, उत्तेजक व शक्ति प्रदायक।
2. क्षेत्र विस्तारक।
3. गतिशील व परिसंचरक।
4. अम्लीय गुण । क्षारीय गुण को कम करता है।
5. संक्रमण वृद्धिकारक।
6. फोडे व गाठें वृद्धि वृद्धिकारक।
8. फल, साग–सब्जी, दूध आदि को सडाता व खट्टा करता है।
9. नाड़ी संस्थान को उत्तेजित करता है तथा मानसिक अशांति,को बढाता है।

यह बिजली के धनात्मक और ऋणात्मक धाराओं के प्रभाव के अनुकूल है, धनात्मक बिजली लगाने से उत्तेजना कम होती है। जब कि ऋणात्मक से उत्तेजना तेज होती है।

अभ्यास प्रश्न – ख

7. चुम्बक चिकित्सा में किस धातु के चुम्बकों का प्रयोग होता है।
8. शरीर में क्षारीय तत्व को कम करता है –

क. उत्तरी ध्रुव	ख. दक्षिणी ध्रुव
ग. पूर्वी	घ. कोई भी नहीं।

11.8 चुम्बक प्रयोग विधि :–

चुम्बक प्रयोग विधि के मुख्य दो प्रकार है–

1. किसी भी एक अर्थात् उत्तर या दक्षिण–ध्रुव का उपयोग (Unipolar method)

2. दोनों ध्रुवों का एकसाथ उपयोग अर्थात् सार्वदैहिक प्रयोग (Bipolar method)

1. किसी भी एक अर्थात उत्तर या दक्षिण–ध्रुव का उपयोग (Unipolar method) –

इस प्रयोग विधि में चुम्बक को रोगग्रस्त स्थानों पर ही लगाया जाता है। जैसे – हाथ का केहुनि, घुटना या पैर, आँख, कान व नाक आदि।

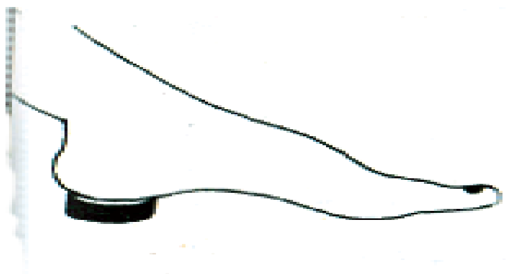

2. दोनों ध्रुवों का एकसाथ उपयोग अर्थात सार्वदैहिक प्रयोग (Bipolar method)

सार्वदैहिक प्रयोग में दोनों ध्रुवों को शरीर के अंग विशेष पर लगाने के सिद्धान्त निम्न है –

1. उत्तरी–ध्रुव	दायां–हाथ
दक्षिणी ध्रुव	बायां–हाथ
2. उत्तरी–ध्रुव	दायां–हाथ
दक्षिणी ध्रुव	बायां–पैर
3. उत्तरी–ध्रुव	बायां–हाथ
दक्षिणी ध्रुव	बायां–पैर
4. उत्तरी–ध्रुव	दायां–हाथ
दक्षिणी ध्रुव	दायां–पैर
5. उत्तरी–ध्रुव	दायां–पैर
दक्षिणी ध्रुव	बायां–पैर

ज्ञातव्य – मानव शरीर अपने आपमें एक चुम्बक है और हमारे शरीरों के भी चुम्बकीय छोर होते हैं, अतएव–

1. यदि शरीर के दाई ओर या बांई ओर चुम्बक लगाना हो तो दक्षिण ध्रुव बाई ओर तथा उत्तरीय ध्रुव दांई लगानी चाहिए।

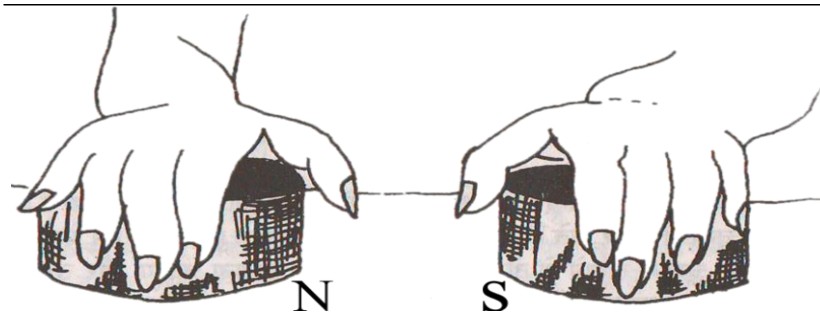

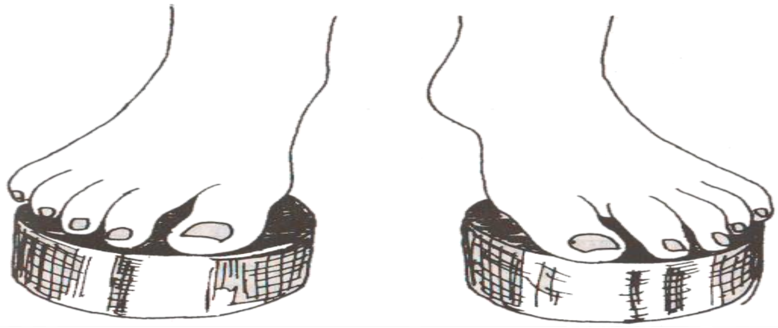

2. यदि चुम्बक शरीर के उपरी और निचले भागों पर लगाना होतो, उत्तरी–ध्रुव उपर की ओर तथा दक्षिण–ध्रुव नीचे की ओर लगाना चाहिए।

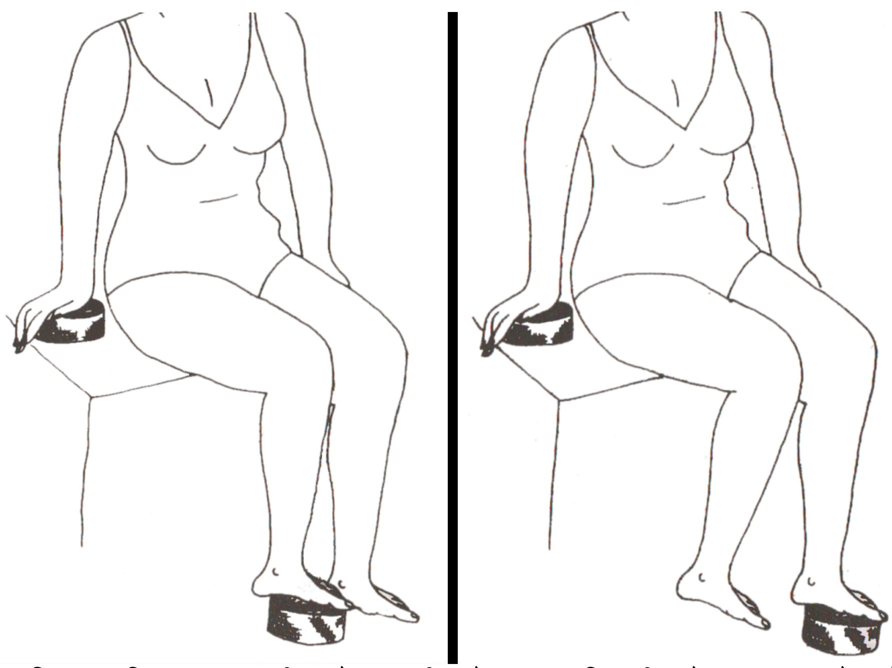

3. किन्तु यदि चुम्बक शरीर के अगली ओर तथा पिछली ओर लगाना हों, तो उत्तरी–ध्रुव शरीर के अगले भाग में तथा दक्षिण–ध्रुव पिछले भाग में लगाना चाहिए।

11.9 चुम्बक निर्माण विधि –

चुम्बक स्टील के तथा ढलाई लोहा (कास्ट–आयरन) के बनते हैं। विद्युत यंत्र द्वारा इनमें चुम्बक–शक्ति का निर्माण किया जाता है। वैसे चुम्बक चिकित्सा में प्रयुक्त चुम्बक का निर्माण अनेक धातुओं से होता है, किन्तु सबसे अधिक जिस मिश्र धातु का प्रयोग होता है उसे एलीनीको कहा जाता है। इस मिश्र धातु में एल्यूमीनियम, निकल, लोहा और कोबाल्ट रहते हैं। इसके अलावा फैरिक एवं बेरियम के ऑक्साइड से तैयार की गई कृत्रिम सामग्री से चुम्बक बनाये जाते हैं, जिन्हें सिरेमिक, फैराइट या ग्रेफाइट चुम्बक कहा जाता है।

चुम्बक बनाने की विधि :– कृत्रिम चुम्बक प्रमुख रूप से दो प्रकार से तैयार किये जाते हैं–

(I). चुम्बक को चुम्बक पदार्थ के टुकड़े पर रगड़ने मात्र से।

(II). उस विद्युत धारा से जिससे चुम्बक पदार्थ घिरा रहता है।

यांत्रिक पद्धति द्वारा चुम्बकीय पदार्थ की छड़ पर चुम्बक को एक निश्चित दिशा की ओर बार–बार रगड़ने से उसका चुम्बकीकरण किया जाता है अर्थात इसमें छड़ को एक झुके हुए चुम्बक से रगड़ा जाता है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम छड़ के एक किनारे को चुम्बकित किया जता है, फिर सारी छड़ को दूसरे किनोर तक बार–बार रगड़कर पहले किनारे की तरह चुम्बकित किया जाता है। चुम्बक की इस एक दिशा विशेष रगड़न से छड़ एक नये चुम्बक का स्वरूप ले लेती है और उसके दोनों किनारों के पास उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव बन जाते है।। चुम्बकीकरण का यह तरीका कम शक्ति के चुम्बक बनाता है। अधिक शक्तिशाली, आकर्षणशील या पृथक्कारी चुम्बकों का निर्माण विद्युत पद्धति द्वारा किया जाता है। शक्तिशाली विद्युतधारा के प्रवाह से चुम्बक की आकर्षण शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

चुम्बक की शक्ति को मापने वाले यंत्र को मैग्नेटोमीटर कहते हैं, जो गौस इकाईयों में उसकी शक्ति नापता है। चुम्बक छोटे–बड़े अनेक प्रकार की शक्तियों के बनाये जाते हैं। प्रत्येक चुम्बक में दो ध्रुव होते हैं। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। साधरणतया उत्तरी ध्रुव कीटाणुनाशक माना जाता है। यह शरीर पर फोड़े–फुसी, दाद आदि चर्म रोग में लाभदायक है और दक्षिणी ध्रुव शरीर में एक प्रकार की गर्मी तथा शक्ति उत्पन्न करता है। इसकी तरंगों का प्रयोग शरीर में अनेक प्रकार के दर्द, सूजन आदि पर किया जाता है।

चुम्बक आमतौर पर उच्च शक्ति (3000 Gauss) के मध्य शक्ति (1000 Gauss) और निम्न शक्ति वाले बनते हैं। नौजवान व्यक्ति के लिए उच्च शक्ति के बच्चों के लिए मध्यम शक्ति के तथा छोटे–छोटे और कोमल अंगों पर निम्न शक्ति के चुम्बकों का प्रयोग होता है।

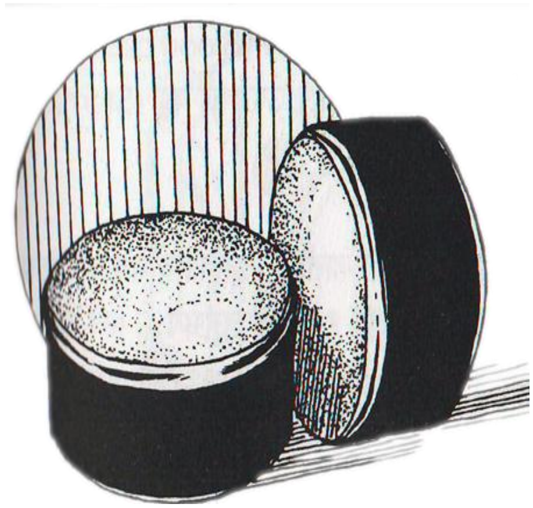

विधि :– उत्तरी ध्रुव शरीर के दाहिने अंग पर दक्षिणी ध्रुव बाएं अंग पर प्रयोग किया जाता है। बड़ी शक्ति वाले चुम्बक का प्रयोग हृदय और मस्तिष्क पर तथा गर्भवती स्त्री के लिये वर्जित है। शरीर में नाभि के प्रयोग के रोगों में चुम्बक तलवे के नीचे रखे जाते हैं और नाभि के ऊपर के रोगों में हाथों की हथेलियों के नीचे रखे जाते हैं।

समय :– प्रयोग का समय 10 मिनट से 20 मिनट तक का समय उपयुक्त माना जाता है। दिन में एक बार खाली पेट इनका प्रयोग किया जाता है। तीव्र रोगों में दो बार रोजाना भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

अन्य प्रयोग :– इन चुम्बकों के अतिरिक्त अनेक प्रकार की चुम्बकीय पट्टियों का भी निर्माण हो गया है। जैसे कमर के दर्द के लिये कमर में बांधने की पट्टी पर सिर दर्द के लिए सिर की पट्टी, घुटनों के दर्द के लिये घुटनों की पट्टी और स्पोंडोलाइसिस के लिये गले में बांधने की पट्टी चुम्बक माला गले में पहनने के लिए छाती से दर्द अथवा श्वास के कष्ट में लाभदायक होता है।

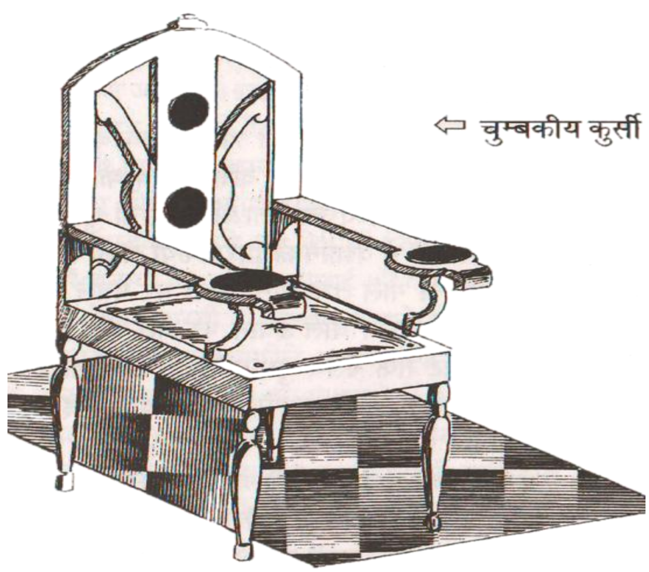

विभिन्न चुम्बक पेटियां

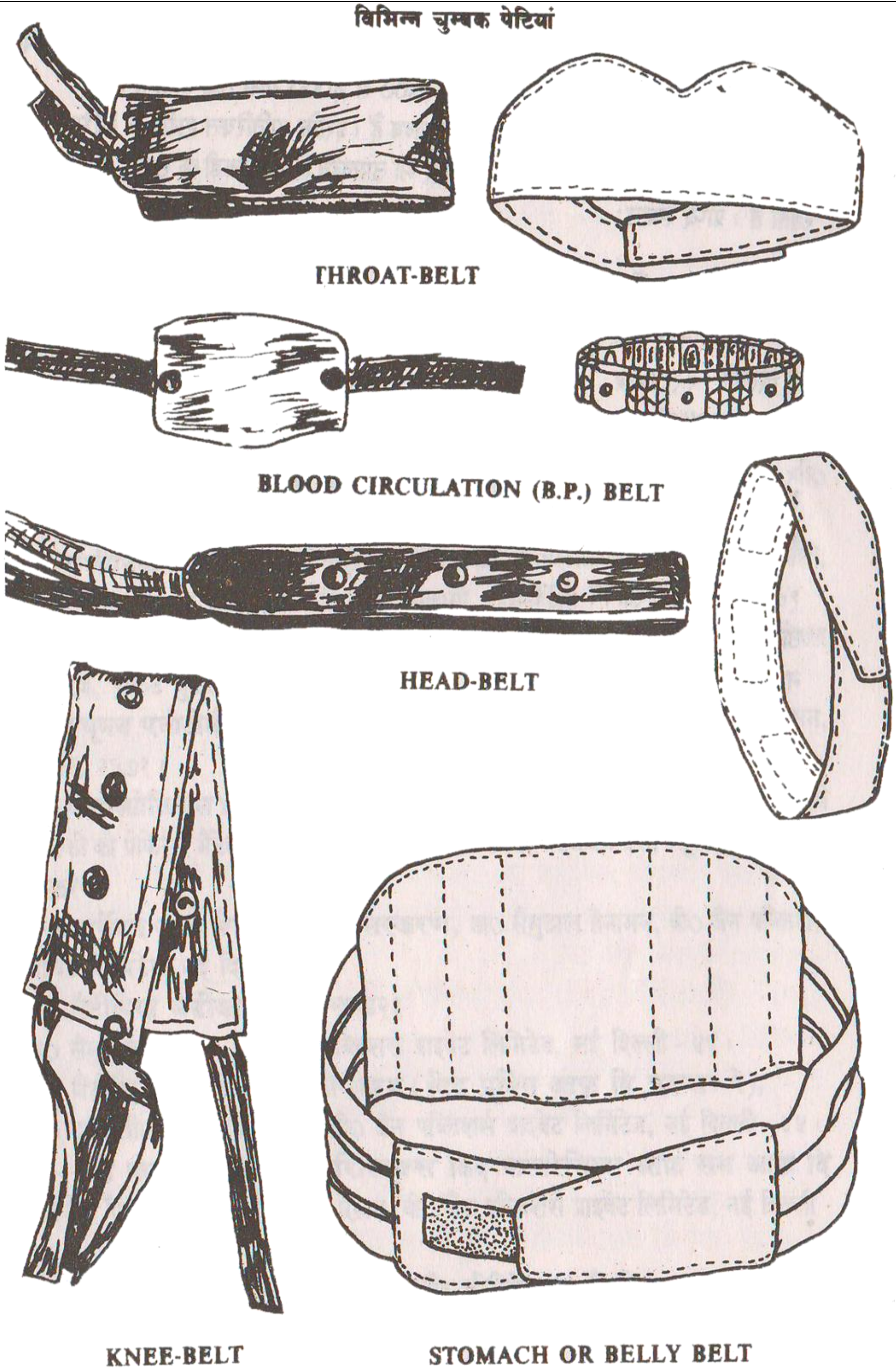

चुम्बकीय जल :– चुम्बकीय जल भी तैयार किया जाता है जो दवा का काम करता है। बड़े चुम्बकों के उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव पर उबाला हुआ पानी बोतलों में भरकर 12–24 घण्टे तक रख देने से वह पानी दवा बन जाता है। जो खासकर पेट के रोगों में तथा पेशाब के रोगों में लाभदायक माना गया है। ऐसे पानी को 1–2 औंस की मात्रा दिन में 2–3 बार दी जा सकती है।

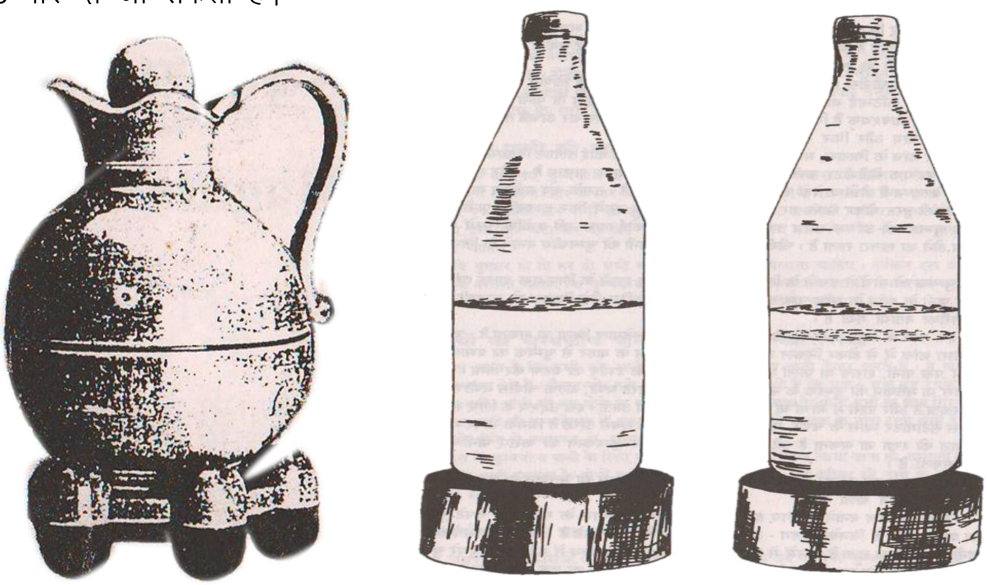

11.10 सारांश –

चुम्बकों का प्रयोग प्रकृति के सहायक के रूप में अपना प्रभाव दिखाता है। चुम्बक औषधि के रूप में काम करते हैं और शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। चुम्बकों को प्रभाव मुख्य रूप से रक्त संचार और शरीर की अन्य क्रियाओं, जैसे पाचन, स्नायु, श्वास और मल–मूत्र के त्याग की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। मानव शरीर पर चुम्बकों के अलग–अलग ध्रुवों का अलग–अलग प्रभाव पड़ता है क्योंकि उनके गुण और विशेषताएं अलग–अलग हैं। उत्तरी ध्रुव रोग को बढ़ने से रोकता है, रोगाणुओं और पीव को नियन्त्रित करता है और कैंसर से ग्रसित कोशिकाओं को निष्प्रभावी कर देता है। यह फोड़ों, त्वचा पर होने वाली दाद आदि और रसौलियों को समाप्त करता है। इसके विपरीत दक्षिणी ध्रुव से ऊर्जा निकलती है और वह पीड़ाग्रस्त अंग को गर्मी और शक्ति प्रदान करता है। दक्षिणी ध्रुव में शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने का भी गुण है। उससे सूजन कम होती है और पीड़ा भी।

आप चाहें किसी भी दृष्टिकोण से देखें, चुम्बकत्व ऊर्जा का ही एक रूप है और उसका प्रभाव सभी मानवों, पशुओं, शाक–भाजियों और जीवों पर पड़ता है। अब तक इस बारे में जो भी अनुसंधान हुए हैं उनसे पता चलता है कि इनका प्रयोग कई पेशों में हो सकता है। केवल रोगों के निदान और उपचार में ही नहीं बल्कि रोगों पर नियन्त्रण और उन्हें समाप्त करने के साथ–साथ इसकी सहायता से रोगों के उपचार के प्रति हमारी धारणाएं बदल सकती हैं।

अभ्यास प्रश्न – ग

1 दोनों ध्रुवों का एकसाथ उपयोग कहलाता है ?

2 चुम्बक निर्माण में किस मिश्र धातु का प्रयोग किया जाता है ?

3 चुम्बक की शक्ति को मापने वाले यंत्र को कहते हैं ह –

क. गौस पावर ख. मैग्नेटोमीटर

11.11 शब्दावली

पृथक्कारी – अलग–अलग करने वाला।
सार्वदैहिक – सम्पूर्ण शरीर , शरीर के दोनों भागों का उपचार ।
अनिद्रा – निंद कम आना।
कष्टार्तव – दर्दयुक्त मासिकधर्म।
अवरोधक – रूकावट।

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. चुम्बक 2. शीतलता
अभ्यास प्रश्न – ख	1. . एलनीको 2 दक्षिणी ध्रुव
अभ्यास प्रश्न – ग	1. सार्वदैहिक 2. एलनीको 3. मैग्नेटोमीटर

11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. हीरा लाल बंसल
2 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. चौधरी व सिंह
3 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. आर. एस. अग्रवाल
4 वैकल्पिक चिकित्सा विज्ञान (अध्यात्म के स्वर) – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
5 चुम्बकीय चिकित्सा – डॉ. पीयूष त्रिवेदी

11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1 चुम्बकीय शक्ति क्या है ? चुम्बक के व्यावहारिक स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2 चुम्बकों के विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करें ?
3 चुम्बक के निर्माण विधा को सुस्पष्ट करें ?
4 चुम्बक के सार्वदैहिक प्रयोग विधि का विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए ?

इकाई – 12 चुम्बक चिकित्सा के सिद्धान्त, सीमाएँ एवं सावधानियाँ

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 चुम्बक का वैज्ञानिक स्वरूप
12.4 चुम्बक के चिकित्सकीय सिद्धान्त
12.5 चुम्बक चिकित्सा–सीमाएँ एवं सावधानिया
12.6 चुम्बक चिकित्सा के लाभ
12.7 चुम्बक चिकित्सा के कुछ तत्काल अच्छे–बुरे प्रभाव
12.8 सरांश
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने चुम्बक के प्रकार व विभिन्न उपकरणो का मानव शरीर में उपयोगिता को देखा कि किस प्रकार वह हमारे शरीर पर अच्छा व बुरा प्रभाव डालता है। अब हम यह देखेंगे कि चुम्बक के वैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा मानव के स्वास्थ्य और जीवन पर चुम्बकों का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है।

चुम्बकत्व एक पदार्थगत घटना है। जिसका प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है। चुम्बक में न केवल लोहे और कई अन्य वस्तुओं को आकृष्ट करने की शक्ति है बल्कि कुछ और गुण भी हैं जिनके बारे में सभी को पता नहीं है। एक गुण यह है कि चुम्बकत्व मानव शरीर के सभी द्रवों को, जिनमें लौह तत्व होते हैं, आकृष्ट करता है। मानवों पर चुम्बकत्व क्षेत्रों के जीवकीय प्रभावों के बारे में कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। यह माना जाता है कि यक प्रभाव कई तत्वों पर निर्भर करते हैं, जैसे चुम्बकत्व क्षेत्र की गहनता, दिशा, शक्ति और क्षेत्र ।

प्रस्तुत इकाई में चुम्बक के विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तो से परिचित होंगे। चुम्बक के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा चुम्बक चिकित्सा के सीमाओं पर प्रकाश डाला जाएगा तथा इसमें चुम्बक चिकित्सा के सावधानियों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि चुम्बब के इन विभिन्न वैज्ञानिक स्वरूपों का अध्ययन कर आपको चुम्बक के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1 चुम्बक के वैज्ञानिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।

2 चुम्बक चिकित्सा के सीमाओं से परिचित हो सकेंगे।

3 चुम्बक चिकित्सा के सावधानियों से रूबरू हो सकेंगे।

4 चुम्बक चिकित्सा के लाभो का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

12.3 चुम्बक का वैज्ञानिक स्वरूप

वास्तव में चुम्बक चिकित्सा प्रत्येक प्राणी के लिए प्रकृति का दिया हुआ अमूल्य द्रव्य है। आज संसार में अनेक चिकित्सक, वैद्य, विद्वान, साधारण जन असाध्य एवं जीर्ण रोगों की चुम्बक द्वारा सफल चिकित्सा में लगे हुए हैं। इसी चिकित्सा को आज जन–जन में लोकप्रिय बनाकर वैज्ञानिकों ने प्रमाण देते हुए बताया है कि प्रत्येक मानव शरीर की कोशिका में यह खोजा गया है कि उसका निर्माण चुम्बकीय क्षेत्र से हुआ है और वह एक चुम्बकीय विद्युत इकाई है, उसका अपना निजी चुम्बकीय क्षेत्र एवं प्रमाण है। मानव शरीर में मौजूद मेरुदण्ड (Spinal Cord) विभिन्न नाड़ियों एक प्रकार का ऊर्जा चक्र है जो विभिन्न नाड़ियों में विद्युत स्पंदन द्वारा नाड़ी संस्थान को संतुलित करता है। उसमें प्राकृतिक रूप से चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न होती हैं जो हमें रोगों से बचाती हैं। चुम्बकीय चिकित्सा वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा की एक इकाई है। इस चिकित्सा का कभी भी कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया है। शरीर में प्राकृतिक रक्तसंवहन में शीघ्र सुधार करने वाली चिकित्सा चुम्बक चिकित्सा है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

चुम्बक चिकित्सा का लाभकारी उपयोग :–

1. शरीर के जिस हिस्से पर चुम्बक का प्रयोग किया जाता है, वहाँ पर तुरन्त ही रक्तसंचार में वृद्धि होने लगती है, परिणामस्वरूप वहाँ का विजातीय पदार्थ घुलकर पसीना, पेशाब या मल द्वारा निकल जाता है।
2. शरीर के जिस भाग पर चुम्बक प्रयुक्त की जाती है, वहाँ पर प्राणशक्ति का प्रवाह तीव्र गति से होकर नाड़ियों में कड़ापन ठीक हो जाता है एवं नाड़ियों में लचकपन बढ़ जाता है।
3. वैज्ञानिक प्रमाण है कि चिकित्सा में प्रयुक्त चुम्बक का उत्तरी भाग (नार्थ पोल) शीतल चन्द्रमा के समान शीतगुण वाला होता है, दक्षिणी भाग (साउथ पोल) सूर्य के समान उष्ण प्रकृति वाला होता है। जहाँ पर नाड़ी–व्रण, चोट, घाव या गर्मी की आवश्यकता होती है, वहाँ पर चुम्बक का दक्षिणी छोर (ध्रुव) लगाने पर दर्द एवं सूजन में तुरन्त आराम मिलता है, किन्तु जहां पर घाव हो, बैक्टीरिया हों अथवा ठंडक की आवश्यकता हो, वहाँ पर उत्तरी भाग लगाने पर घाव या व्रण के सर्किट बनाने की कला द्वारा असाध्य एवं कष्टदायक सभी रोग नष्ट होने लगते हैं।
4. चुम्बक के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के सर्किट बनाने की कला द्वारा असाध्य एवं कष्टदायक सभी रोग नष्ट होने लगते हैं।
5. चुम्बक द्वारा सभी नष्ट कोशिकाओं को पुनः जीवित किया जा सकता है– इस कार्य हेतु उस स्थान पर आवश्यकतानुसार चुम्बकीय क्षेत्र पैदा करना पड़ता है।
6. चुम्बक के प्रयोग से रक्त नलिकाओं में रक्तसंचार में वृद्धि होती है जो ऊर्जा शक्ति का विकास कर नवीन कोशिकाओं की निर्माणक होती है और रोगकारक तत्वों को शरीर के निष्कासन मार्गों द्वारा दूर करती है।
7. मानव शरीर में चीनी पद्धति द्वारा मेरीडियन जोन में यह जाना गया है कि इस जोन में यदि चुम्बकीय क्षेत्र को प्रविष्ट किया जाये तो शरीर के सभी विकार

स्वतः नष्ट हो जाते हैं एवं मेरीडियन–रेखाओं में रोग–प्रतिरोधक शक्ति में वृद्धि होती है। इसी के द्वारा सभी अन्तः अंगों की सुरक्षा होती है।

8. मानव शरीर की चुम्बकीय शक्ति ईश्वर का दिया हुआ वरदान है। चुम्बकीय यंत्रों से इसके गुणों में वृद्धि की जा सकती है एवं रोगों से बचाव सम्भव है।
9. मानव शरीर में जो एक्यूबिन्दु की संरचना है, उनके द्वारा उपचार के अन्य तरीके जैसे– एक्यूपल्सर मालिश, एक्यूपंचर, सुजोक एवं एक्यूप्रेशर आदि में चुम्बक के प्रयोग से लाभ मिलता है। इसकी चुम्बकीय तरंगों से शीघ्र लाभ मिल जाता है।

12.4 चुम्बक के चिकित्सकीय सिद्धान्त –

चुम्बक–चिकित्सा एक प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा है। हमारे शरीर में विद्युत चुम्बकीय सूक्ष्म–तरंगें प्रकृति से ही निरंतर चलती रहती है। ये तरंगें हमारे हाथों की दसों अंगुलियों द्वारा बाहर भी निकलती रहती हैं। इन तरंगों का उपयोग मानसिक उपचार तथा रंग चिकित्सा में भी किया जाता है।

चुम्बकीय तरंगें हमारे शरीर के भीतर के प्रायः सभी अंगों की क्रिया एवं रक्त–संचार में सहयोगी बनती है। लम्बे रोग के कारण शरीर में दुर्बलता अथवा वृद्धावस्था में विद्युत–चुम्बकीय तरंगें क्षीण हो जाती हैं। शरीर में प्रतिरोधत्मक शक्ति की कमी होने से अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। इन स्थितियों में चुम्बकीय तरंगें शरीर में प्रवेश करा देने से प्राकृतिक तरंगों की क्षीणता की पूर्ति होती है और रोग का निवारण होता है एवं शरीर की शक्ति में वृद्धि होती है।

1. चुम्बक चाहे छोटा हो या बड़ा इसके दो ध्रुव होते हैं। एक उत्तरी ध्रुव तथा दूसरा दक्षिणी ध्रुव ।

2. चुम्बक का विरोधी ध्रुव एक दूसरे को आकृष्ट करते हैं लेकिन समान ध्रुव एक दूसरे से परे रहते हैं।

2. चुम्बक की शक्ति चाहे कितनी भी क्यों न हों, चुम्बकीय क्षेत्र का विस्तार असीमित होता है।

चिकित्सकीय सिद्धान्त –

अब तक का सबसे अधिक लोकप्रिय या सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि चुम्बकों का प्रभाव उन कणों पर पड़ता है जिनमें लोहे का कुछ अंश होता है, जैसे हीमोग्लोबिन और साइटोक्रोम। इन सिद्धान्तों का आधार लोहे के चुम्बक से प्रभावित होने के गुण हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्त संक्षेप में नीचे दिए गए हैं–

1. इस शताब्दी के पहले भाग में कई देशों के वैज्ञाानिकों ने यह पाया कि सम्मिश्रणों को सुखा कर डलियों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया पर चुम्बकत्व क्षेत्रों का प्रभाव पड़ता है। कई परीक्षणों से यह प्रमाणित हो गया कि चुम्बकीय क्षेत्र उन केन्द्रों की संख्या बढ़ा देते हैं जहाँ सम्मिश्रण सूख कर डलियों का रूप ले लेता है।

   एक वैज्ञानिक ने द्रवों पर चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव को संक्षिप्त रूप से इस प्रकार वर्णित किया है :

   क) चुम्बकीय क्षेत्र किसी द्रव में उन केन्द्रों की संख्या बढ़ा देता है जहाँ वह सूख कर डलियों का रूप ले लेता है।

ख) वे केन्द्र कितने अधिक होंगे इस बात पर निर्भर करता है कि चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति कितनी है।

ग) यदि चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति एक समान रहे तो इन क्षेत्रों की संख्या उस समय के अनुसार बढ़ती है जिस तक वह क्षेत्र बना रहे।

2. कई परीक्षणों से यह प्रमाणित होगया है कि जब पानी को हल्की शक्ति के चुम्बकीय क्षेत्र में रखा जाय तो उसके कई रासायनिक गुण बदल जाते हैं। ये बदले हुए गुण अर्थात तापमान, घनत्व, बिजली के संवहन की शक्ति, सतही तनाव और गाढ़ापन, बहुत समय तक बने रहते हैं।
3. यह भी देखा गया है कि यदि पानी के बर्तन पर धातु का बना ढक्कन हो जो विद्युत चुम्बकीय तरंगों को ग्रहण कर सके तो पानी में तैरते छोटे–छोटे कणों के उस बर्तन के पेंदे में बैठ जाने की गति पर प्रभाव पड़ता है।

क) रक्त भी एक तरल पदार्थ है, इसलिए इस पर भी चुम्बकीय क्षेत्रों का प्रभाव पड़ता है। जब चुम्बकों का प्रभाव रक्त पर पड़ता है तो उसके गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है।

ख) जब किसी तरल पदार्थ में नमक घोल दिया जाय और वह चुम्बक के प्रभाव में आ जाये तो उस तरल पदार्थ के गुणों में परिवर्तन आ जाता है। रक्त में कई अकार्बनिक नमक होते हैं और इसलिए चुम्बकों के प्रभाव में रक्त के गुण बदल जाते हैं। बदला हुआ रक्त जब सारे शरीर में संचरित होता है तो उसका गुणकारी प्रभाव पड़ता है जिसके कारण रोग दूर हो जाते है और नए रोग नहीं होने पाते।

ग) जब कोई चुम्बक मानव शरीर के साथ लगाया जाता है तो शरीर में बहते रक्त में बिजली की हल्की तरंग उत्पन्न हो जाती है। वह तरंग रक्त पर प्रभाव डालती है तो रक्त के कणों की संख्या बढ़ जाती है। जब वह रक्त शरीर में चलता है तो उसका गुणकारी प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न – क

6. मानव शरीर की चुम्बकीय शक्ति ईश्वर का दिया हुआ ....है।

चुम्बक का विरोधी ध्रुव एक दूसरे को आपस में करते हैं –

क. विकृष्ट ख. आकृष्ट

ग. सामान्य घ. कुछ भी नहीं।

12.5 चुम्बक चिकित्सा–सीमाएँ एवं सावधानियाँ :–

1. चुम्बकीय चिकित्सा सुबह जलपान से पूर्व अथवा स्नान के बाद करनी चाहिए। सुबह उपचार न कर सकने पर शाम को करें। विशेष कष्ट की अवस्था में दोनों समय उपचार करें। चुम्बकीय उपचार के बाद 1 घण्टे तक स्नान न करें।

2. चुम्बक के प्रयोग से मानव शरीर में रक्त संवहन एवं परिसंचरण में वृद्धि होती है, इसलिए चुम्बकीय उपचार के बाद कम से कम आधा घण्टे तक कोई शीतल जल या पेय नहीं लेना चाहिए। उष्ण (गर्म) पेय पीने की भी मना ही है।
3. भोजन के तुरन्त बाद शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग वर्जित है। इससे चक्कर आ सकते हैं या उल्टी हो सकती है। भोजन के एक घण्टे बाद चुम्बकीय उपचार ले सकते हैं।
4. चुम्बक को घड़ी, कैसेट, अन्य विद्युत यंत्रों के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए अन्यथा ये वस्तुएं बिगड़ सकती हैं।
5. साधारणतया चुम्बक का शरीर पर स्पर्श होने से कोई विपरीत प्रभाव नहीं होता है, किन्तु बहुत देर तक प्रयोग करने पर मरीज को चक्कर आना, सिर में भारीपन, आंखों में पानी, तलुओं एवं हथेली में जलन आदि लक्षण दिखाई दें तो चुम्बक तुरन्त हटा लेना चाहिए।
6. गर्भवती स्त्री, छोटे बच्चे या शरीर के महत्वपूर्ण तथा कोमल अंगों के तुरन्त आप्रेशन की अवधि में शक्तिशाली चुम्बक के प्रयोग से बचना चाहिए। यदि रोगी के हृदय क्षेत्र में कोई स्टैंड डाला गया हो तो वहां पर भी प्रयोग न करें, क्योंकि स्टैण्ड की धातु चुम्बकीय क्षेत्र से प्रभावित होकर नुकसान कर सकती है।
7. हाथों पर चुम्बक का प्रयोग करते समय सोने, चांदी आदि गहने उतारने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु लोहे का कड़ा, छल्ला या चाबी को हटाना जरूरी है।
8. यदि धातु की पट्टी को या किसी पेड़ को हाथ से कुछ देर स्पर्श करने से चुम्बक के अति प्रयोग का कुप्रभाव दूर हो जाता है। एक गिलास पानी में 3 चम्मच गौमूत्र डालकर पीने से चुम्बकीय कुप्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है।
9. महवारी, अतिरजस्वला स्त्री, अत्यन्त कुपोषण जनित रोग में शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग अच्छा नहीं रहता।
10. शक्तिशाली चुम्बकों के दो विपरीत ध्रुवों को निकट नहीं लाना चाहिए। असावधानी से चुम्बकों के विपरीत ध्रुव निकट ले जाने पर उनसे अंगुलियों के दब जाने का भय रहता है।
11. श्रेष्ठ चुम्बकों का प्रयोग करना श्रेयस्कर है।
12. चुम्बकीय उपचार लकड़ी पर बैठकर ही करना उपयुक्त होता है। उपचार के समय लोहे तथा जमीन का स्पर्श नहीं करना चाहिए।
13. चर्म–विकारों का उपचार करते समय चुम्बकों को त्वचा के सीधे सम्पर्क में न रखकर बीच में एक पतला कपड़ा रखें।
14. लौह चुम्बकों को जमीन पर नहीं, लकड़ी के पट्टे पर रखना चाहिए।
15. शरीर के जिस भाग पर उपचार करना हो, उसे पसीना–रहिन करना आवश्यक है।
16. प्रयोग के समय धरती या दीवार का स्पर्श न हो।
17. हृदय में पेसमेकर या डीफाइब्रीलेटर लगा होतो न प्रयोग न करें।
18. जिसे चुम्बक धातु से एलर्जी हो तो उस पर अतिआवेशित प्लास्टिक का खोल चढ़ा लें।
19. सेरेमिक मैग्नेट द्वारा जल बनाते समय उत्तरी ध्रुव का मुंह उत्तर की ओर तथा दक्षिणी ध्रुव का मुंह दक्षिण की ओर ही रखें।
20. **चुम्बकीय जल पीने के नियम**

250 मिली. की मात्रा में दोनों ध्रुवों से तैयार किया गया चुम्बकीय जल प्रयुक्त करना श्रेयस्कर है।

इसे दिन में चार बार प्रयुक्त किया जा सकता है–

1. प्रातःकाल – शौचादि से निवृत्त होकर।

2. दोपहर – खाना खाने के बाद।

3. तीसरे प्रहर – शाम 4 से 5 बजे ।

4 रात्रि – सोने से पूर्व लगभग 10 बजे।

12.6 चुम्बक चिकित्सा के लाभ –

चुम्बक चिकित्सा के निम्नलिखित लाभ हैं –

1 चुम्बक चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक है –

यह पद्धति प्रकृति के नियमों के अनुसार चलती है और उससे मेल खाती है। इससे प्रकृति के रोग को दूर करने की शक्ति को बल मिलता है। इस कारण इसका कोई ऐसा हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता जिससे रोगी का जीवन खतरे में पड़ जाय।

2 चुम्बकत्व से रक्त संचार सुधरता है –

कुछ समय तक चुम्बक लगातार शरीर के सम्पर्क में रहे तो शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। उसकी सारी क्रियाएं सुधर जाती हैं और रक्त संचार बढ़ जाता है। इस कारण सारे शरीर को शक्ति मिलती है, रोग दूर होने में सहायता मिलती है, थकावट और दूर्बलता दूर होती है जिससे रोगी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करता है और शरीर के प्रत्येक अंग की पीड़ा और सूजन भी दूर हो जाती है।

3 सभी प्रकार के रोगों में गुणकारी –

चुम्बक चिकित्सा उन लोगों के लिए गुणकारी है जो अपने जीवन से संतुष्ट नहीं है। उन्हें लाभ मिलता है जो भरपूर जीवन जीना चाहते हैं और उनको भी जो विषादग्रस्त होते हैं और बेहतर जीवन की खोज में होते हैं। कंपनियों में काम करने वाले प्रबंधक, जो सदा तनाव की स्थिति में रहते हैं, चिंताग्रस्त गृहणियों और काम करने वाली महिलाएं भी लाभान्वित होती है। जिस बच्चे को गुस्सा बहुत आता हो या जो नर–नारी गोलियां और दवाइयां खाकर तंग आ चुके हों, एकाकी और बहम से पीड़ित लोग– सभी को चुम्बक चिकित्सा एक नया जीवन प्रदान करती है। ऐसे लोग चुम्बकों से चिकित्सा करवाते हैं तो उन्हें बहुत लाभ होता है और उनका जीवन एक नई दिशा ले लेता है।

4 हर आयु वर्ग के लिए गुणकारी –

चुम्बकों के माध्यम से इलाज इतना सीधा–सादा है कि यह किसी भी समय किसी भी स्थान पर और शरीर के किसी भी अंग पर आजमाया जा सकता है। पुरुष हो या स्त्री, जवान हो या बूढ़ा, सभी इससे लाभान्वित हो सकते हैं।

5 तीव्र प्रभावकारी –

यह पद्धति इतनी शक्तिशाली है और इसका प्रभाव इतनी तेजी से पड़ता है कि कई बार तो एक ही बार चुम्बक लगाना रोग को सदा के लिए समाप्त करने के लिए काफी होता है। कई मामलों में दूसरी बार चुम्बक लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसे कि दांत की पीड़ा और मोच आदि में।

6 पूर्व तैयारी की आवश्यकता नहीं–

चुम्बकों से चिकित्सा के लिए कोई तैयारी नहीं करनी पड़ती। कुछ समय तक चुम्बकों को छूने भर से आराम मिलता है। इलाज दिन में केवल एक बार, सामान्यतया दस मिनट के लिए करना काफी है। चुम्बक घर में, दुकान में या ऑफिस में रखे जा सकते हैं जहाँ रोगी काम कर रहा हो। लम्बी यात्रा के दौरान भी उनका प्रयोग किया जा सकता है।

इस इलाज के लिए पानी, चाय या दूध जैसे किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि न तो कोई पुड़िया खानी होती है और न गोली निगलनी पड़ती है।

7 कम खर्च –

आपके पास चुम्बकों का एक जोड़ा हो तो उन पर बार–बार खर्च करने की आवश्यकता नहीं। इस कारण इस पद्धति में दवाईयों का खर्चा बचता है।

8 समय की बचत –

अस्पतालों, दवाखानों और डॉक्टरों तक जाने में जो समय लगता है वह चुम्बक चिकित्सा के माध्यम से बचाया जा सकता है। रोगी को घण्टों पंक्ति में खड़े होकर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। चुम्बक चिकित्सा का प्रभाव बहुत समय तक रहता है। क्योंकि वैज्ञानिक ढ़ंग से शरीर की क्रियाएं चुम्बकत्व की सहायता से सुधर जाती है।

9 स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर वृद्धि –

चुम्बकों की सहायता से पुरुष हो या स्त्रियां, या बच्चे व बुढ़े, तरो–ताजा, ओजस्वी और जवान बने रहते हैं। इस कारण उनका स्वास्थ्य बना रहता है और वे सुन्दर और ओजस्वी दीखते हैं।

चुम्बक शरीर के किसी भी भाग पर लगाया जा सकता है और उसका प्रभाव रक्त के संचार के माध्यम से सभी अंगों तक पहुंच जाता है। इसमें संदेह नहीं कि जहां चुम्बक लगाया जाता है उस अंग पर तुरन्त और बाकी अंगों की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ता है।

10 शीघ्र दर्द निवारक –

प्रत्येक रोग में कोई न कोई पीड़ा अवश्य होती है। पीड़ा चाहे किसी कारण से हो, चुम्बक में उसे घटाने बल्कि समाप्त करने का गुण है। उसकी सहायता से शरीर की सारी क्रियाएं सामान्य हो जाती है। इसी कारण सभी रोगों पर चुम्बकों का प्रभाव पड़ता है। पीड़ा दूर हो जाती है और शरीर की क्रियाओं के विकार ठीक हो जाते हैं। रोग चाहे कोई भी हो, रोगी को लाभ पहुंचता है। इस कारण जिन रोगों से शरीर में पीड़ा उत्पन्न होती है उनमें चुम्बक विशेष रूप से गुणकारी होते हैं।

12.7 चुम्बक चिकित्सा के कुछ तत्काल अच्छे–बुरे प्रभाव –

नई हट्टी, पश्चिम बंगाल के डा. ए.के. भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक 'मैग्नेट एण्ड मैगनेटिक फील्ड' में डेलावेयर लेबोरेट्रीज लिमिटेड, आक्सफोर्ड, इंग्लैण्ड की जीव–चुम्बकत्व संबंधी एक रिपार्ट के आधार पर लिखा है कि चुम्बकत्व पर जो परीक्षण किए गए उनमें रोगियों पर किसी बुरे प्रभाव का प्रमाण नहीं मिला है। लेकिन इस प्रयोगशाला में यह पाया गया कि निम्नलिखित कुछ प्रभाव पड़ सकते हैं –

1. प्रारम्भ में चुम्बक लगाने से तनिक थकावट की अनुभूति हुई लेकिन वह बाद में समाप्त हो गई।
2. इलाज के प्रारम्भ में रोगी को मूत्र बहुत आया लेकिन बाद में सामान्य हो गया।
3. जिन रोगियों को कब्ज की शिकायत रहती थी उनकी कब्ज खुल गई।

4. कटी हुई त्वचा और छिली हुई त्वचा के घाव शीघ्र भर गए और सूजन भी जल्दी ही घट गई।
5. जिन युवक युवतियों के चेहरों पर मुहासे थे उन्हें चुम्बक चिकित्सा से लाभ हुआ।
6. कुछ महिलाओं ने यह देखा कि चुम्बक चिकित्सा के दौरान उनका वनज घट गया और जंघाओं की चर्बी छट गई।

अभ्यास प्रश्न – ख

9. उपचार के समय ....तथा ....का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

10. चुम्बक चिकित्सा तीव्र लाभकारी है –

क. कटिसूल में ख. दांत दर्द व मोच में

ग. माइग्रेन में घ. सभी रोगों में

12.8 सारांश –

आधुनिक युग में जनता 'त्वरित चिकित्सा' पर अधिक विश्वास करती है। यही कारण है कि भारत जैसे देश में एलोपैथी चिकित्सा प्रणाली ने घर–घर डेरा डाल दिया है। परन्तु एलोपैथी से सम्बन्धित औषधियों के लेने से कभी–कभी घातक परिणाम निकलते हैं। इसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुसार जो चिकित्सा की जाती है उसका प्रभाव प्रतिकूल दिखाई नहीं देता। इस दृष्टि से चुम्बक चिकित्सा प्रणाली एक प्राकृतिक चिकित्सा है। इस प्रणाली में ऐसी कोई दवा नहीं दी जाती जो रोग को निकालने के बाद किसी प्रकार का घातक प्रभाव छोड जाती हो। प्रायः हर प्रकार की चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सक इस बात पर बल देते है कि जब उनकी दवा ली जा रही हो तो उनके साथ अन्य किसी प्रकार की दवा न ली जाए, परन्तु चुम्बक चिकित्सा के साथ अन्य उपचार भी दिए जा सकते हैं। चुम्बक चिकित्सा की अपनी विशेषता है कि यह प्रणाली अन्य औषधियों के प्रभाव को शक्तिशाली बना देती है। इस कारण रोगी के शरीर के रोग शीघ्रता से निकल जाते हैं। परन्तु चुम्बक का प्रभाव देखने के लिए इसकी चिकित्सा अलग से ही की जानी चाहिए।

जब शरीर के विशेष भागों में चुम्बक लगाया जाता है तो शरीर में गरमी की लहरें सी दौड़ती हैं व सारे शरीर में एक प्रकार की ताजगी तथा फूर्ती भर जाती है। रक्त संचार तेज हो जाता है।रोगी को लगता है जैसे उसके शरीर में अधिक बल आ गया है। चुम्बक सारे शरीर को स्वस्थ बना देता है। ऊपर या भीतर के रोग दूर हो जाते हैं। आलस का भाव दूर होने से शरीर की निर्बलता समाप्त हो जाती है। चुम्बक हर प्रकार की अकड़न या सूजन को दूर करता है।

12.9 शब्दावली

जीव–चुम्बकत्व – चुम्बकत्व क्षेत्र के प्रभाव से जीवों की शारीरिक क्रियाओं का विज्ञान।
विद्युत चुम्बक – विद्युत और चुम्बक के सम्बन्ध का विज्ञान ।
चुम्बकत्व – चुम्बक के गुणों से सम्बद्ध विज्ञान या चुम्बक की आकर्षण शक्ति।

चुम्बक चिकित्सा – चुम्बकों के माध्यम से विभिन्न रोगों की चिकित्सा का विज्ञान।
ध्रुव – चुम्बक, सैल सा बैटरी के दो बिन्दुओं में से एक।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. वरदान	2. आकृष्ट
अभ्यास प्रश्न – ख	1. लोहे, जमीन	2. दांत दर्द व मोच में

12.11सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. हीरा लाल बंसल
2 मैगनेट एण्ड मैगनेटिक फील्ड्स और हीलिंग बाई मैगनेट्स – ए.आर. डेविस व डॉ. एक.के. भट्टाचार्य
3 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. चौधरी व सिंह
4 सीक्रेट्स ऑफ मैगनेट थैरेपी– डॉ. एच. टी. बोलकानी
5 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. आर. एस. अग्रवाल
6 वैकल्पिक चिकित्सा विज्ञान (अध्यात्म के स्वर) – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
7 चुम्बकीय चिकित्सा – डॉ. पीयूष त्रिवेदी

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1 चुम्बक चिकित्सा के वैज्ञानिक स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2 चुम्बक चिकित्सा में बरती जाने वाली सावधानियों का सविस्तार वर्णन करें ?
3 चुम्बक चिकित्सा पद्धति के लाभों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ?
4 चुम्बक चिकित्सा के तात्कालिक प्रभाव से आप क्या समझते है ?समझाकर लिखिए ?

इकाई – 13 चुम्बक चिकित्सा द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 शारीरिक दर्द में चुम्बकीय उपचार
134 श्वसन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.5 पाचन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.6 उत्सर्जन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.7 रक्त परिसंचरण संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.8 प्रजनन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.9 स्नायु संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.10 अस्थि संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार
13.11 सारांश
13.12 शब्दावली
13.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.15 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

मनुष्य मात्र की जीवन रक्षा हेतु अचिंत्य शक्ति के प्रभाव से ईश्वर प्रत्येक प्राणी को स्वस्थ देखना चाहता है, इसलिए वह शक्ति के प्रत्येक प्राणी में मौजूद ऊर्जा शक्ति को बढ़ाती है एवं रोगों से लड़ने की क्षमता में वृद्धि करती है। रोगी के रोग का निवारण अचिंत्य शक्ति से ही सम्भव है। रोगी का रोग दवाओं से मात्र महसूस नहीं होता है, उसे दबा दिया जाता है। वह तब तक ठीक नहीं होगा जब तक कि उसकी जीवनीय शक्ति की वृद्धि के उपाय नहीं किये जायेंगे। कई बार बीमारी शरीर से विजातीय तत्वों को निकालने के लिए होती है। हम जब तक समझने लगते हैं, तब कि दवाओं के द्वारा उपचार शुरू हो जाता है और शरीर की संरचना में विकार उत्पन्न होकर ऊर्जा शक्ति की हानि हो जाती है। इसी कारण मानव शरीर एक बार रोगमुक्त होकर पुनः रोगी हो रहा है। हमें गहराई तक जाने की आवश्यकता है। रोगों से लड़ने के बजाय उसके रोग को ठीक करने हेतु हमें अनुकूल आहार सुधार, विहार, युक्तियुक्त चिकित्सा, देश, काल जलवायु आदि क्रियाओं का रोगानुसार प्रयोग करना चाहिए। इसी क्रम में चुम्बक का प्रयोग शरीर की जैविक विद्युत क्षमता को संतुलित करने में बहुत मदद करता है और यह चुम्बक चिकित्सा नाना प्रकार के विकार दूर करने में सहयोगी रहती है।

प्रत्येक प्राणी का शरीर असंख्य सूक्ष्म कोषिकाओं से बना होता है। मानव शरीर की इन कोषिकाओं में सदैव गतिज या कम्पन बना रहता है, इसी कम्पन से ही मानव का जीवन नई चेतना शक्ति प्राप्त करता रहता है। इसी चेतना शक्ति के माध्यम से मानव जीवन की रोग प्रतिरोधक शक्ति को जाना जाता है। इन कोशिकाओं के संयुक्त कोषों की एकरूपता (होमोपीनियम) वाले कम्पन से एक व्यवस्थित (यूनीफार्म) चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है और प्राणी स्वयं को पूर्ण स्वस्थ और ताजगीपूर्ण अनुभव करता है, किन्तु जब इन कोशिकाओं की

तरंगों में किसी प्रकार की रुकावट आने लगती है तो उस क्षेत्र में व्यवधान होकर वह अपने सर्किट से हट जाता है और शरीर की जीवनीय शक्ति में कमी होने लग जाती है जिसके कारण मानव रोगग्रस्त हो जाता है। जीवनीय शक्ति का घटना मानव शरीर में असंख्य विकृतियों को जन्म देता है, परिणामस्वरूप अन्यान्य रोग– सूजन, मांसपेशियों में दर्द, नाड़ियों में रुकावटें, जोड़ो के रोग आदि जन्म लेने लग जाते हैं।

प्रस्तुत इकाई में चुम्बक चिकित्सा व विभिन्न रोगों से परिचित होंगे। चुम्बक के बृहद् चिकित्सकीय स्वरूप का अवलोकन होगा तथा चुम्बक के द्वारा रोगोपचार पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें शरीर के विभिन्न संस्थानों चुम्बक द्वारा पृथक–पृथक उपचार का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि चुम्बक के इन विभिन्न चिकित्सकीय स्वरूपों का अध्ययन कर आपको चुम्बक चिकित्सा के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

1 चुम्बक के चिकित्सकीय शक्ति का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।

2 चुम्बक के द्वारा रोगोपचार से परिचित हो सकेंगे।

3 चुम्बक के चिकित्सकीय स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।

4 मानव शरीर में चुम्बक के चिकित्सकीय गुणो का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

13.3 शारीरिक दर्द में चुम्बकीय उपचार

सिरदर्द :–

व्यस्तता भरी जिंदगी में आज आम आदमी सिरदर्द से पीड़ित है। सिर में दर्द कहीं भी या किसी भी जगह पर हो, उसे सिर्फ एक ही नाम से जाना जाता है कि सिर में पीड़ा हो रही है। शरीर की प्रकृतिनुसार सिरदर्द होने के अनेक कारण होते हैं एवं इन्हें कई प्रकार का बताया गया है। सिरदर्द को प्रकृति के अनुसार गोली की तरह टीस मारने वाला, कनपटियों पर टूटन वाला, सिर पर हथौड़े मारने जैसा आदि कहा जाता है। अनिद्रा के कारण सिरदर्द एक रोग बन जाता है। सिरदर्द के मुख्य कारणों में आंखों की कमजोरी, गर्मी की शिकायत, मौसम का बदलाव, दांतों की बीमारियां, आमवात, रक्त, विषाक्तता, अपच आदि हैं। समाान्यतः बूढ़े व्यक्तियों में अपच एवं बालकों में सक्रामक ज्वर के कारण सिर में पीड़ा होती है। सिरदर्द का एक रूप ऐसा है जो नियत समय से होता है तथा प्रायः एक तरफ या एक ओर ही होता है। जी मिचलाता है और नजर धुंधला जाती है। ऊंची आवाज में बोलना नहीं सुहाता है, काम में मन नहीं लगता है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. माथे के ऊपर कम शक्ति वाले चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव दिन में तीन या चार बार प्रयुक्त करें।

2. कनपटी के दोनों ओर सेरेमिक चुम्बक का प्रयोग किया जाना चाहिए। (दायीं ओर उत्तरी ध्रुव रखें)
3. अगर दर्द सिर के ऊपरी भाग में है तो चोटी पर दक्षिणी ध्रुव रखें।
4. हाथ के अंगूठे तथा पहली अंगुली के बीच पहले एक्यू बिन्दु पर लौह चुम्बक का उत्तरी ध्रुव रखना लाभकारी है।
5. चुम्बकीय जल का सेवन नियमित रूप से करें।
6. सिरदर्द या माइग्रेन यदि पुराना है तो 10 दिनों तक प्रतिदिन 10–10 मिनट का चुम्बकीय उपचार लेना लाभदायक है।

कान का दर्द (Earache)

कान में कुछ विशेष कारणों से दर्द होता है, जिनमें मुख्यतः कान की सफाई का न होना, फुंसी निकलना, कीट–पतंगा आदि घुस जाना, कान का पकना या मवाद बहना, कान के परदे का फटना, लगातार जुकाम रहना आदि हैं। इन कारणों से कान के परदे फट जाते हैं और सुनाई देना बंद हो जाता है।

लक्षण :–

1. शुरू में सुनाई कम देने लगता है।
2. कान में अजीबो गरीब आवाजें सुनाई देने लगती हैं।
3. दर्द के कारण रोगी बेचैन रहता है।
4. कान के भीतर चटके चलने शुरू हो जाते हैं।

चुम्बकीय उपचार :–

1. कान पर मध्यम शक्ति वाले लौह–चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव दिन में 2–3 बार लगाना चाहिए।
2. हाथ के अंगूठे और पहली अंगुली के बीच के भाग पर उत्तरी ध्रुव वाला छोटा चुम्बक लगाए रखें।
3. कान के दक्षिणी ध्रुव द्वारा बनाये गये चुम्बकीय तेल की बूंदे डालें।
4. चुम्बकीय उपचार 20 से 25 मिनट तक लें।

गर्दन का दर्द (Neckache) :–

कारण :– गर्दन में दर्द कुछ विषेष कारणों से हो जाता है। जैसे– अचानक गर्दन की नस का खिंचना, रात को एक करवट सो जाना, अचानक चोट ग्रस्त होना, गर्दन और कंधे के सहारे बोझ ले जाना, गर्दन के छल्लों का रोग, सूजन आदि।

लक्षण :–

1. रोगी की गर्दन का घूमना बंद हो जाता है।
2. रोगी को रुक–रुककर गर्दन में हथौड़े की तरह चोट महसूस होती है।
3. गर्दन की नसों एवं हड्डी में सूजन आ जाती है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. गर्दन वाले भाग पर शक्तिषाली चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव 3–4 बार प्रयुक्त करें।
2. कलाई के बाहर नब्ज देखने की जगह के पास उत्तरी ध्रुव का चुम्बक लगायें।
3. पूर्ण आराम करें और बोझ न उठायें।
4. शीघ्र आराम के लिए चुम्बकीय सर्वाइकल बेल्ट बांधी जा सकती है।
5. चुम्बक 20 से 30 मिनट तक प्रयुक्त करें।

कंधे का दर्द (Shoulder Pain) :–

कारण – कंधे के दर्द में मुख्य कारणों में वजन उठाना, नस का इधर–उधर होना, झटका लगना, तेज बुखार होना, अधिक लिखने–पढ़ने का काम करना आदि है। कभी–कभी सोते समय भी कंधे में झटका लग जाने से दर्द हो जाता है। कंधे की पीड़ा काफी कष्टदायी होती है क्योंकि सारे काम हाथों से किये जाते हैं।

लक्षण :–

1. कंधा ठीक से उचक नही पाता है। हिलना–डुलना अत्यन्त पीड़ाकारक होता है।
2. दर्द वाले कंधे की ओर मुंह करके या करवट लेकर लेटने पर सम्पूर्ण भुजा में बढ़ जाता है।
3. कंधे की हड्डी चटखती सी मालूम होती है।
4. कंधे पर कमीज पहनना भी कठिन काम हो जाता है, क्योंकि कंधे में तीव्र वेदना रहती है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. एक शक्तिषाली चुम्बक लेकर कंधे के आगे की ओर दक्षिणी ध्रुव को प्रयुक्त करें।
2. पीठ की ओर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक रखें।
3. रोगी को तख्त पर सीधा लिटाकर चुम्बको को कंधे पर लगायें।
4. अंगूठे एवं अंगुली के मध्य मांसल भाग पर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगायें।

कोहनी का दर्द (Elbow Pain)

कारण – कोहनी का दर्द प्रायः अचानक तेज चोट लगने से हो जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी की कोहनी झनझना उठती है। कोहनी की भीतरी हड्डी में चोट आ सकती है एवं सूजन आ जाती है, जिससे सिर दर्द शुरू हो जाता है। इस रोग को टेनिस एलबो कहा जाता है।

लक्षण :–

1. कोहनी के दोनों ओर शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करें।
2. एक ओर चुम्बक का दक्षिणी तथा दूसरी ओर उत्तरी ध्रुव लगाना चाहिए।
3. चुम्बक के दोनों ध्रुव कोहनी से चिपका कर लगाने चाहिए।
4. रोगी को सीधा लिटाकर चुम्बक लगायें।
5. छोटी अंगुली के अंतिम छोर वाले एक्यू बिन्दु पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव चिपका दें।
6. 2 या 3 दिन तक सुबह–षाम 10–10 मिनट का चुम्बकीय उपचार लाभदायक होता है।

नितम्ब संधि का दर्द (Hip-Joint Pain)

कारण :– नितम्ब संधि में दर्द प्रायः असावधानीपूर्वक बैठने से होता है। कभी–कभी नितम्ब प्रदेश के जोड़ के पास वाली हड्डी में खट की आवाज आकर संधि स्थल पर दर्द होने लगता है। अधिक समय तक ही आसन पर बैठने पर यह पीड़ा और बढ़ जाती है।

लक्षण – नितम्ब संधि के दर्द में हल्की–हल्की पीड़ा होती है। कई बार रुक–रुककर दर्द होता है, जिससे रोगी को बेचैनी हो जाती है। संधि के मांसल भाग पर सुई चुभने

जैसा दर्द होता है, सूनापन आ जाता है। नेक्रोसिस की अवस्था शुरू हो जाती है– जिससे जोड़ जाम हो जाता है।

चुम्बकीय उपचार :–

नितम्ब संधि के दर्द में कुछ विषिष्ट उपचार किए जाते हैं–

1. दर्द वाले स्थान पर शक्तिशाली चुम्बक लगाना चाहिए। यदि नितम्ब में दर्द पीछे हो तो पीछे की ओर, और आगे की संधि में हो तो जांघ की संधि पर धीरे से चुम्बक रखें।
2. चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगायें
3. चुम्बक का प्रयोग दिन में 3–4 बार 20 मिनट तक करें।
4. पैरों के अंगूठे के पास एक्यू बिन्दु पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगायें। चुम्बकों को हिलायें–डुलायें नहीं।

घुटने का दर्द (Knee Pain)

कारण :– घुटनों में दर्द के बहुत से कारण हो सकते हैं, परन्तु मुख्य रूप से शरीर की वायु द्वारा घुटनों में पीड़ा होती है। कई बार चोट लगने के कारण भी पीड़ा होने लगती है। चोट तो ठीक हो जाती है, पर दर्द बना रहता है। शरीर में दूषित पदार्थ इक्ठठा हो जाने से वायु का प्रकोप होने लगता है, जो घुटनों की कटोरियों को रोगग्रस्त कर देता है और घुटनों में दर्द रहने लगता है।

लक्षणः–

1. घुटनों का दर्द रात को आराम के समय या सोते समय परेशान करता है।
2. घुटनों की त्वचा रूखी–सूखी हो जाती है।
3. चलने–फिरने में कष्ट होता है, कई बार ऐसा मालूम होता है कि चलने से घुटने की कटोरी के टुकड़े हो जायेंगे।
4. संधियों में सूजन आ जाती है एवं दर्द की तीव्रता के कारण बुखार हो जाता है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. दर्द वाले स्थानों पर शक्तिशाली चुम्बक लगायें।
2. तेज दर्द वाले भाग पर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक लगायें।
3. पैरों की अंगुलियों के मध्य वाले पोरों पर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगाएं।
4. चुम्बक को प्रतिदिन 20 से 30 मिनट तक प्रयोग में लें।
5. चुम्बकीय उपचार की अवधि में मालिश न करें।
6. नीला चुम्बकीय तेल पैरों पर मालिश के लिए लगायें।
7. दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल पियें।

टखने की संधि का दर्द (Ankle Pain)

कारण :– टखने की संधि का दर्द वायु की अधिकता के कारण होता है। ऐसा देखा गया है कि जब वायु का प्रकोप शरीर पर होने लगता है तो उसका कुछ प्रकोप टखनों में भी प्रवेश कर जाता है और जोड़ों को पीड़ित कर देता है। दर्द के साथ सुई चुभने की सी पीड़ा होने लगती है। कई बार ऊपर चढ़ने, सीढ़ियां पार करने या वृद्धावस्था के कारण भी टखने का दर्द हो जाता है। दर्द के साथ धीरे–धीरे बुखार भी आ जाता है।

लक्षण :– टखने का दर्द असहनीय पीड़ा देने वाला होता है। रोगी को काम करने में कठिनाई होती है। टखने के भीतर सूजन, चटखन हो जाती है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. टखने के दोनों तरफ शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग करें।
2. दोनों पैरों के अंगूठे के पास वाली अंगुली पर छोटे लौह–चुम्बक लगायें।
3. चुम्बक अधिक गड़ा कर नहीं लगायें, क्योंकि चुम्बक से निकलने वाली किरणें अपने–आप भीतर पहुंच जाती हैं।
4. चुम्बकीय तेल का प्रयोग करना लाभकारी है।

पांव के पंजों और एड़ियों का दर्द (Pain in Feet & Heel)

कारण – पांव के पंजों या एड़ियों में दर्द चोट लगने या अधिक चलने–फिरने या मधुमेह रोग के कारण हो जाता है। कभी–कभी नसों के खिंचाव के कारण भी दर्द का अनुभव होता है। यह वात प्रधान न होकर स्नायु शोथ या चोट ग्रस्त दर्द होता है। कोई वस्तु पंजों पर गिर जाये तो अंगलियां पीड़ा ग्रस्त हो जाती है।

लक्षण :– जिस व्यक्ति के पंजों तथा एड़ियों में दर्द हो जाता है, उसे चलने–फिरने तथा पंजों और एड़ियों को जमीन पर रखने में बड़ा कष्ट होता है। वह ठीक से चल नहीं सकता है। दर्द के कारण उसके चेहरे पर व्याकुलता के भाव दिखाई देते हैं। कई बार पंजों में सूजन आ जाती है। एड़ियो में नीचे का मांस काफी मोटा होता है, अतः वह फोड़े की तरह दुःखता है। कभी–कभी एड़ियों को दबाने में भी पीड़ा होने लगती है। अन्दर की नसों में सूजन आ जाने पर जूते का पहनना कठिन हो जाता है। कई बार आराम के समय भी तीव्र पीड़ा होती है।

चुम्बकीय उपचार :–

चुम्बक चिकित्सा एड़ी तथा पंजों के दर्द के उपचार में लाभकारी मानी गई है, क्योंकि चुम्बकीय किरणें नसों में पहुंच कर दर्द चूस लेती हैं।

1. दर्द वाले स्थान पर शक्तिशाली चुम्बक लगायें।
2. लौह चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगाना चाहिए।
3. लौह चुम्बक को तेज गड़ाकर नहीं लगाना चाहिए।
4. चुम्बक लगाने की क्रिया 15 से 30 मिनट तक करनी चाहिए।
5. एड़ी के नीचे चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव 15 से 20 मिनट तक लगाएं।
6. पंजे एवं एड़ी पर चुम्बकीय तेल मलते रहना भी आवष्यक है।

पेट अथवा पेडू के दर्द :– (Pain in Upper & Lower Abdomen)

कारण :– मिथ्या आहार–विहार, भारी तथा देर से पचने वाला भोजन खाना, बासी भोजन, दोनों समय बासी चावल खाना, विषैले तथा मादक पदार्थों का सेवन, पेट में चोट लगना, कृमि हो जाना, विषैली तथा तीव्र शक्तिशाली दवाओं के सेवन, कुपोषण, जल की अस्वच्छता आदि के कारण पेट में दर्द हो जाता है।

लक्षण :– पेट के असहनीय दर्द की अवस्था में रोगी पेट पकड़कर बैठ जाता है या बुरी तरह तड़पता है। पेट में भाला घोंपने या हथौड़े की चोट सा दर्द होता है। आंतों में ऐंठन एवं सूजन हो जाती है। नाभि प्रदेष अपने स्थान से हट जाता है। रुक–रुककर मरोड़ जाती है। वायु जब नीचे की ओर नहीं निकलती है तो रोगी को पसीना आ जाता है। कब्ज एवं मल में कठिनता रहने लग जाती है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. पेट के दर्द में बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए, क्योंकि उपचार का सीधा सम्बन्ध आंतों से है।

2. दर्द वाले स्थान पर शक्तिशाली चुम्बक लगायें।
3. चुबक का दक्षिणी ध्रुव लगायें।
4. पैरों के अंदर वाले टखनों पर मौजूद एक्यू बिन्दु पर चुम्बकों का प्रयोग करं एवं नाभि के आसपास उत्तरी ध्रुव चुम्बक प्रयुक्त करें।
5. यदि दर्द बहुत तेज है, तो गरम बोतल की सिकाई कर चुम्बकीय जल पिलायें।

दांत का दर्द :– (Toothache)

कारण :– दांत का दर्द यद्यपि गंभीर रूप धारण कर लेता है, तथापि यह खतरनाक नहीं है। यह एक ऐसा दर्द है, जिसका ज्ञान प्रायः सभी, छोटे–बड़े व्यक्तियों को होता है। दांतों की सफाई नहीं करना, दांतों में कीड़े लग जाना, दन्त संक्रमण, ठण्डा या गरम पानी पीने आदि कारणों से दांत के दर्द की पीड़ा झेलनी पड़ती है।

लक्षण :– दांत के दर्द में रोगी को काफी बेचैनी रहती है। वह भोजन नहीं कर पाता है। दांत हिलता भी नहीं, पर रोगी की इच्छा होती है कि वह दांत उखड़वा ले, जिससे दर्द तुरन्त रुक जाये। कभी–कभी दांत के नीचे के मांस में सड़न या सूजन आ जाने के कारण भी दांत का दर्द हो जाता है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. यदि दांत में बहुत दर्द हो तो सेरेमिक चुम्बक का उत्तरी ध्रुव दायीं ओर तथा दक्षिणी ध्रुव बायीं ओर लगाना चाहिए।
2. चुम्बक जबड़े पर या गाल पर रोजाना शाम के समय 10 मिनट तक लगाना चाहिए।
3. दर्द की तीव्र अवस्था में दिन में 3–4 बार चुम्बक का प्रयोग करें।
4. दांत के दर्द की अवस्था में हल्का सुपाच्य खाना लें, तरल वस्तुयें ज्यादा लें।
5. चुम्बकीय जल में कुंल्ला एवं मंजन करना दर्दनाशक होता है।

13.4 श्वसन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

एक्जीमा / छाज़न / पामा / अकौता

यह एक चर्म विकार है, जिसमें चमड़ी पर जलन करने वाली छोटी–छोटी फुंसियां गुच्छों के रूप में हो जाती है।। इस चर्म विकार में फुंसियों से निरंतर पीव या मवाद निकलती रहती है एवं आसपास पपड़ी के रूप में चमड़ी पर जमती रहती है। चमड़ी पर जलन एवं खुजली सदा बनी रहती है। इस रोग की उत्पत्ति के मुख्य कारण हैं– व्यक्ति की संवेदनशीलता, चर्म पर किसी परजीवी का विष लगना, सूर्य की ज्वलनकारी ऊष्मा का प्रभाव पैतृकता, रासायनिक पदार्थों का चमड़ी के ऊपर निरंतर उपयोग, पेट की गड़बड़ी, पोषण का अभाव, स्वच्छता का अभाव आदि। इन कारणों से यह रोग जन्म लेकर त्वचा के वर्ण को भी बदल देता है।

सामान्य उपाय :–

1. रोगी के कपड़े, बिस्तर की सफाई का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए।
2. नियमित स्नान एवं शरीर की पूर्ण सफाई आवश्यक है।
3. भारी एवं गरिष्ठ भोजन से बचें।
4. चटपटे मसाले, खट्टे पदार्थ, मांस, मछली, कॉफी, चाय, तम्बाकू, सिगरेट का सेवन मना है।
5. विटामिन ए और सी का सेवन फलों से प्राप्त करें।

6. बच्चों का संक्रमण से बचाव करें।
7. अनावश्यक प्रभावशाली तीव्र दवाओं के प्रयोग से बचें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. जब छाजन शरीर के ऊपरी हिस्से पर होता है तो चुम्बकों को हथेलियों पर लगाना चाहिए। अंगों की सफाई करके उसे कपड़े से ढक दें। पीवयुक्त फुंसियों पर सीधे चुम्बक न लगाकर कपड़े के ऊपर प्रयोग में लें। दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल पीने से शीघ्र लाभ मिलता है। इसके पीने से खून में मौजूद बीमारी के तत्व शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

   त्वचा पर एंटी फंगस तेल लगाने की अपेक्षा चुम्बकीय तेल का उपयोग एक्जीमा को दूर करता है, दक्षिणी ध्रुव से सिद्ध तेल लगाया जा सकता है। यह तेल विषाणुओं को नष्ट करने में सक्षम होता है।

एलर्जी (Allergy) अनुर्जता

पित्त कुपित्त होकर जब खून को दूषित कर देता है तो यह बीमारी हो जाती है, इसी को एलर्जी (अनूर्जता) नाम से जाना जाता है। यह नाक, आंख, कान, शरीर के किसी भी भाग में हो सकती है। इसके अतिरिक्त शरीर पर गर्म तथा ठण्ड के प्रभाव के कारण भी एलर्जी हो जाती है। कुछ लोगों को धूप में जाने से एलर्जी हो जाती है, कुछ लोगों को मिर्च खाने से एलर्जी हो जाती है।

लक्षण :– शरीर में मांस के चकते हो जाते हैं। खुजली अधिक चलने लग जाती है। यह अधिक समय तक बने रहने वाला रोग नहीं है, समयानुसार यह समाप्त हो जाता है । कई बार एलर्जी के चलते रोगी को खांसी, श्वास का तेज चलना, गर्मी का अधिक लगना, मूर्च्छा आना, प्यास अधिक लगना, सिर में गर्मी और पसीने अधिक आने लगते हैं।

सामान्य उपचार :–

1. जिस विशेष वस्तु से एलर्जी हो, उसे दूर रखना चाहिए।
2. मादक पदार्थ एवं व्यसन से बचाव करें।
3. पुराने चावल, सादा चावल, जौ, मूंग, चना आदि पदार्थ खाने को देने चाहिए।
4. मिर्च–मसाले, खटाई एवं गर्म चीजों से बचाव करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. रोगी की दोनों हथेलियों पर तथा तलुओं के नीचे नियमानुसार चुम्बक लगाएं।
2. पीठ पर, गर्दन के नीचे तथा रीढ़ की हड्डी के बीच में कम शक्ति वाला चुम्बक लगाना चाहिए।
3. गर्दन पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव तथा रीढ़ की हड्डी पर दक्षिणी ध्रुव 10 मिनट तक लगाना चाहिए।
4. रोगी को दिन में 2–3 बार चुम्बक प्रभावित जल पीना चाहिए।
5. कोहनी के पास एलर्जी नाशक एक्यूप्रेशर बिन्दु पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाएं। आराम शीघ्र होने लगता है।
6. जीवनीय शक्ति बढ़ाने के लिए पौष्टिक एवं सुपाच्य आहार का सेवन करें। रोग प्रतिरोधक शक्ति की वृद्धि में ये सहायक हैं जिससे कि एलर्जी जन्य बीमारी की रोकथाम हो सके।
7. शरीर पर चुम्बकीय तेल की मालिश करके स्नान करना चाहिए।

दमा (Asthma) :

श्वसन संस्थान का मुख्य रोग दमा (Asthma) होता है, जिससे श्वास लेते समय कठिनाई होनी शुरू हो जाती है। इस रोग में श्वास लेने में अधिक कठिनाई एवं श्वास छोड़ने में बढ़ोत्तरी होती है। श्वास के साथ फेफड़ों के अंदर से सीटी बजने की आवाज, सीं सीं की ध्वनि उत्पन्न होती है। रोगी को रात्रिकालीन अंतिम प्रहर में परेशानी आने लगती है, दमा का दौरा रात्रि के समय रोगी को बहुत परेशान करता है। जब श्वास का दौरा अधिक देर तक रहता है तो शरीर में ऑक्सीजन की कमी के कारण चेहरे की हवाईयां उड़ जाती हैं। चेहरा काला पड़ जाता है। दमा रोग को एलर्जी जन्य माना गया है।

कुछ लोगों में सूंघने मात्र से इस रोग की उत्पत्ति होते देखी गई है। आयुर्वेद के अनुसार धूल कण, पराग कण, पुष्पों की सुगन्ध इस रोग को जन्म देते हैं। इनके उपयोग से शरीर की रोगक्षण प्रणाली इन्हें बाहर निकाल फेंकने के लिए एण्टीबॉडी को उत्पन्न करती है। वैसे इस क्षण के दौरान हिस्टामिन जैसे कुछ रासायनिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो श्वास नलियों में ऐंठन लाते हैं तथा वायु नलियों को छोटा कर देते हैं। दौरे की प्रारम्भिक अवस्था में खांसी सूखी और ऐंठनदार होती है, लेकिन रोगी की कोशिशों के बावजूद कफ नहीं निकलता। कुछ समय बाद, रोग की प्रकृति और समय के अनुसार कफ निकलने लगता है तथा रोगी के तड़पन आदि लक्षणों में सुधार होने लगता है।

सामान्य उपचार :–

1. रोगी को शीतल चीजें खाने को बिलकुल न दें।
2. दौरा पड़ने पर सर्वप्रथम दौरे को रोकने का प्रयास करें।
3. हल्का तथा पचने वाला भोजन खाने दें।
4. छाती एवं गले को ठण्ड से बचाएं।
5. अधिक चिकने पदार्थ न खाएं।
6. पेट में कब्ज न रहने दें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. छाती के आगे की ओर शक्तिशाली चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगाएं तथा पीछे की ओर शक्तिशाली चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाएं।
2. चुम्बक 30 से 50 मिनट तक लगाने चाहिए।
3. दिन भर में तीन–चार बार चुम्बक लगाने चाहिए।
4. चुम्बक के उत्तरी ध्रुव को सीने के बीच वाले भाग पर अकेले लगाया जा सकता है।
5. चुम्बकीय जल का सेवन दिन में 4–5 बार किया जा सकता है।
6. हाथ की कलाई के मध्य उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगाएं।

13.5 पाचन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

कब्ज/ कोष्ठबद्धता/ मलबद्धता (Constipation)

यह एक आम बीमारी है। सवेरे–सवेरे पाखाना यदि कठिनाई से आए या कम आए तो उस अवस्था में कब्ज रोग कहा जाता है। पेट की गड़बड़ी, नींद पूरी न होना, गैस बनना, बवासीर होना, सिरदर्द, भूख न लगना, थकान, अफारा, उदरशूल आदि लक्षणों की उत्पत्ति प्रायः कब्ज से होने लगती है। मुख्य कारणों में– आंतों की गति का मंद हो जाना, पाखाना कम आना, आलस्य, सुबह पाखाना की आदत बिगड़ना, कम मात्रा में

चिकनाई वाला भोजन करना, गूदेदार पदार्थों एवं रेशेदार फलों का सेवन कम करना, पानी कम पीना, अरुचि आदि माने गए हैं।

सामान्य उपचार :–

1. कब्ज से बचने का सबसे सस्ता उपाय यह है कि शुरू से ही बच्चों को सुबह–सुबह शौच की आदत डालें।
2. मात्रानुसार भोजन करना चाहिए। अत्यधिक मीठा, नमकीन, तेज गर्म नहीं खाना नहीं खाएं। आटे में चोकर का प्रयोग करें।
3. भोजन में दूध से बने पदार्थों का उपयोग करें।
4. गूदेदार फलों का सेवन हितकर है।
5. सुबह खुली हवा में घूमने की आदत बना लें, साथ ही 1 गिलास ताम्र पात्र का जल सेवन करें, जिससे पाखाना खुलकर आता है।
   दस्त लानी वाली दवाओं से अपना बचाव करें, क्योंकि ये दवाएं आंतों में जलन पैदा कर देती हैं।

चुम्बकीय उपचार :–

1. पुरानी मियादी कब्ज हेतु तलुओं के नीचे शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग 10–10 मिनट तक दिन में 2 बार करना चाहिए।
2. दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल का सेवन करें,। चुम्बकीय जल एक बार में 50–75 मिली. की निर्धारित मात्रा में ही लें।
3. नाभि पर एवं नाभि की बायीं ओर एक्यू बिन्दु पर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक रखें।

मधुमेह :–(Diabetes)

आरामतलब जिंदगी जीना, अत्यधिक मीठे पदार्थों का सेवन करना, दिन में शयन करना, दुग्ध से बने पदार्थों का अत्यधिक प्रयोग करना मधुमेह रोग के कारणों को जन्म देता है। मधुमेह वह अवस्था है, जिसमें रक्त तथा मूत्र में शर्करा की बढ़ी हुई मात्रा पाई जाती है। अधिक पेशाब का आना, भूख–प्यास का बढ़ना तथा अधिकांश अवस्थाओं में इन्सुलिन की कमी के कारण यह रोग होता है। इंसुलिन रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित रखता है। इसकी कमी से रक्त में शर्करा बढ़ जाती है। मधुमेह का एक अन्य प्रकार होता है, जिसे डायबिटीज इंसीपिडस कहते हैं। इसमें रोगी पानी भी बहुत पीता है और बार–बार पेषाब भी करता है, लेकिन इसमें शर्करा की मात्रा बढ़ी हुई नहीं रहती। यह रोग वंशानुगत पाया गया है। मोटापा और मधुमेह का निकटतम सम्बन्ध है, क्योंकि मोटे आदमी प्रायः अधिक खाना खाते हैं तथा मोटापे से जो चयापचया परिवर्तन आते हैं, उनके कारण भी मधुमेह हो जाता है। रक्त–शर्करा की जांच द्वारा मधुमेह की परीक्षा एक आसान तरीका है। मधुमेह के रोगियों के घाव या चोटें भी जल्दी नहीं भरतीं।

सामान्य उपचार :– रोगी की चिकित्सा करते समय श्वेतसार पदार्थों तथा शर्करा की मात्रा बहुत कम कर देनी चाहिए।

1. प्रोटीन पदार्थों की मात्रा सुव्यवस्थित ली जा सकती है।
2. समुचित व्यायाम और तेज गति से चलना मधुमेह रोग नाशक है। इस क्रिया से इंसुलिन उत्पादित होता है।
3. सप्ताह में एक दिन उपवास करना चाहिए।

चुम्बकीय उपचार :–

1. बायीं हथेली पर शक्तिशाली चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव तथा दायीं हथेली पर उत्तरी ध्रुव लगाएं।
2. तलुओं के नीचे चुम्बकों का प्रयोग करें।
3. पीठ के बीच वाले भाग पर, गर्दन के पास जोड़ के नीचे तथा नितम्ब के जोड़ पर चुम्बक रखें। मध्य तथा नितम्ब के जोड़ पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव तथा गर्दन के ठीक नीचे वाले भाग में दक्षिणी ध्रुव ठीक रहता है।
4. चुम्बक दिन में 2 बार, प्रातः तथा सांय रखें।
5. चुम्बक द्वारा तैयार किया गया पानी 3–4 पीयें।

दस्त/ अतिसार/प्रवाहिका (Diarrhoea)

पतला पाखाना पानी की तरह बहना प्रवाहिका–अतिसार कहलाता है। पाखाना करते समय बहुत सारा पानी चला जाता है। दस्त कई कारणों से होता है। चर्बी या वसा वाले पदार्थों में से किसी एक चीज का अत्यधिक मात्रा में सेवन करने पर आंतें ढीली हो जाती हैं। कब्ज रोकने के लिए दस्तावर दवाईयों के अनावश्यक प्रयोग से, पाचक रसों का कम बहाव होने पर, बच्चों को अकस्मात् भय से, ई–कॉलाई नामक जीवाणु के संक्रमण के कारण खाना दूषित हो जाता है। दस्तों का सर्वाधिक बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, जिनमें शरीर से अत्यधिक मात्रा में पानी बाहर निकल जाने से यह रोग होता है और डिहाइड्रेशन की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था में होंठ तथा जीभ बुरी तरह सूख जाते हैं, बेचैनी बनी रहती है, आंखें अन्दर की ओर धंस जाती हैं, पेट अफारायुक्त हो जाता है, शरीर कमजोरी वाला लगने लग जाता है।

सामान्य उपचार :–

1. खाने–पीने की चीजों को ढक कर रखना चाहिए।
2. बासी, सड़ी गली चीजें न खाएं।
3. भारी एवं चिकना खाना बंद कर देना चाहिए।
4. खाने में सादा–सुपाच्य भोजन प्रयोग में लें।
5. ग्लूकोज, नमक और चीनी का घोल प्रयुक्त करें, इससे निर्जलीकरण की अवस्था ठीक हो जाती है।
6. आंतों में जलन करने वाली चीजों से बचाव करें।
7. अच्छी तरह उबला हुआ और ठण्डा किया हुआ पानी पीना चाहिए।

चुम्बकीय उपचार :–

1. चुम्बकों का प्रयोग सुबह के समय तलुओं पर करना चाहिए।
2. चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव नाभि पर प्रयुक्त करें।
3. नाभि पर शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग करें।
4. चुम्बक 15–30 मिनट तक दिन में 2–3 बार प्रातः सायं रखें।
5. दिन में तीन बार चुम्बक द्वारा सिद्ध पानी पीएं। पानी दक्षिणी ध्रुव द्वारा प्रभावित किया हुआ होना चाहिए।
6. सिर में भारीपन हो जाने पर माथे पर हल्की मसाज करें। चुम्बक का प्रयोग कनपटी के दोनों ओर करें, जिससे शारीरिक क्षीणता एवं मानसिक क्षीणता बढ़ने लगेगी।

अफारा आना (पेट की गड़बड़ी) (Flatulence) :

अफारा पेट की वह रोगावस्था है, जिसमें बड़ी आंत के अंदर हवा इकठ्ठी होकर पेट को फुला देती है। डकार आ जाने की अवस्था या मलद्वार से गैस निकल जाने से रोगी को कुछ हल्कापन एवं राहत महसूस होती है। इस रोग के मुख्य कारण– दूषित आहार का सेवन, पाचन तंत्र की गड़बड़ी, नाड़ी दौर्बल्य, पेट के अंतरंगों में मौजूद विजातीय तत्व, बार–बार अधिक भोजन, खाना खाकर तुरन्त बिस्तर पर सोना, मानसिक तनाव एवं अन्य शारीरिक कष्ट इनके परिणाम स्वरूप उदरगत जठराग्नि मंद हो जाती है और पाचन ठीक नहीं होकर गैस पैदा हो जाती है।

सामान्य उपचार :–

1. सुपाच्य आहार लेना चाहिए।
2. सप्ताह में एक बार रसोपवास, फल–उपवास या पूर्ण उपवास करें।
3. नाभि–चक्र अपने स्थान पर होने का परीक्षण करें।
4. प्रतिदिन प्रातःकाल सैर पर जावें।
5. नियमित योगाभ्यास करें।
6. नियमित प्राणायाम, आसन, व्यायाम एवं कुंजल क्रिया करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. इस रोग से छुटकारा पाने के लिए रोज सुबह–शाम हथेलियों पर उच्च शक्तिशाली चुम्बक लगायें।
2. नाभि–चक्र को ठीक करने के लिए नाभि प्रदेश पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव प्रयुक्त करें।
3. सुबह खाली पेट 20 मिली. चुम्बकीय जल का सेवन करें।
4. गैस सिर में चढ़ गई हो तो कनपटी पर सेरेमिक चुम्बक लगायें।
5. प्रतिदिन प्रातः सायं 10–10 मिनट का चुम्बकीय उपचार लें।
6. पेट में अफारा रोग पुराना हो तो पैरों के टखने के पास वाले एक्यू बिंदु पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव रखें।

गलगण्ड (Goitre) :

आयुर्वेद के मतानुसार यह गले का एक रोग है, जिसकी कफज प्रकृति होती है, इस रोग में थॉयराड ग्रन्थि में सूजन आकर गले के आगे उभार सा दिखाई देने लग जाता है। यह रोग मुख्य रूप से आयोडीन की कमी के कारण होता है। आयोडीन एक पदार्थ होता है, जिसमें अवटु ग्रंन्थि के हार्मोन्स बनाने की क्षमता होती है। गलगण्ड में गले के आगे भाग पर सूजन , आंखों का बाहर आना, आंखों का फैलना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। गलगण्ड रोग के कुछ प्रमुख कारणों में भय, शोक, आघात या कोई क्षयकारी रोग का होना होता है। गलगण्ड रोग के कुछ प्रमुख कारणों में भय, शोक, आघात या कोई क्षयकारी रोग का होना होता है। गलगण्ड रोग होने पर मनुष्य का शारीरिक तथा मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है और कुपोषण की अवस्था उत्पन्न होकर हड्डियां कमजोर होने लगती हैं। बच्चों में बोलने एवं सुनने की क्षमता में कमी आ जाती है। ग्रन्थि की अत्यधिक वृद्धि में श्वास लेने में कष्ट तथा भोजन गटकने में दर्द होने लगता है। शीतल पदार्थों के प्रयोग से एंव ठण्डे प्रदेषों में यह रोग अधिक होता है। किसी–किसी रोगी की सूजन बढ़कर अर्बुद (कैंसर) का रूप धारण कर लेती है।

सामान्य उपचार :–

1. इस रोग में आहार–विहार पर खास ध्यान देने की आवश्यकता होती है।
2. आयोडीन युक्त नमक नियमित प्रयोग में लेना श्रेयस्कर है।
3. शीत ऋतु में शीतल पदार्थों का सेवन न करें।
4. हरी सब्जी, दूध, केला, हल्दी, शहद का प्रयोग हितकारी है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. गले की सूजन वाले स्थान पर अवटुग्रन्थि शोथ की जगह पर सेरेमिक चुम्बकों का सीधा प्रयोग करें।
2. उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक दायीं ओर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक बायें भाग पर लगायें।
3. दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल का सेवन करें।
4. एक से तीन सप्ताह तक का उपचार लेने से रोगी को लाभ मिलने लग जाता है।
5. आखों के पास उठाव और सूजन की अवस्था में आंखों के ऊपर उत्तरी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग करें।
6. अर्बुद जन्य शोथ होने पर उच्च शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग हितकारी है।

हर्निया (Hernia) :– हर्निया आंत की एक व्याधि है, जिसे आंत उतरना कहा जाता है। इस रोग में आंतें (पेट की नाड़ियां) पुठ्ठे, नाभि या अंडकोश में प्रवेश कर जाती है। जब तक यह आंतें अपनी जगह पर नहीं आ जाती, तब तक रोगी को चैन नहीं पड़ता है। अत्यधिक बोझ वाला सामान उठाना, कब्ज का लगातार बने रहना, अधिक परिश्रम, मल त्याग करते समय अधिक जोर लगाना, पेट पर अधिक प्रेशर पड़ना आदि कारणों से आंत उतरने की तकलीफ उत्पन्न हो जाती है। इस रोग को आंत्रवृद्धि रोग भी कहा जाता है। मुख्य रूप से यह दो प्रकार का होता है।– 1. नाभि गत, 2. वृषण गत। इस रोग के होने पर रोगी को बुखार आ जाता है, उल्टी हो जाती है, हिचकी आते समय ऐसा लगता है जैसे आमाशय फट जायेगा। हालांकि यह कोई गम्भीर रोग नहीं है। जब आंत अपने स्थान पर आ जाती है तो व्यक्ति स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है और अपना काम करता रहता है। आधुनिक चिकित्सा जगत में इसका एकमात्र उपचार आपरेशन है।

सामान्य उपचार :–

1. रोगी को साईकिल चलाने, कूदने, भारी वजन उठाने तथा दौड़ लगाने से परहेज करना चाहिए।
2. शीघ्र पचने वाला आहार लेना चाहिए।
3. कब्ज एवं पेट के रोग का उपचार शीघ्र करें।
4. हर्निया को अपने स्थान पर नियंत्रित रखने के लिए लँगोट या लपेट बांधें।
5. नाभि प्रदेश के पास वाले हर्निया पर तांबे की प्लेट को कपड़े में बांधकर प्रयोग में लें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. यदि हर्निया रोगी के दोनों ओर है तो उच्च शक्ति का चुम्बक दायीं ओर लगाना चाहिए।
2. दायीं तरफ चुम्बक का उत्तरी ध्रुव तथा बांयीं ओर दक्षिणी ध्रुव का प्रयोग करें।
3. उत्तरी ध्रुव आंत के सामने की ओर लायें।
4. नाभि के पास वाले प्रदेश पर शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग किया जा सकता है।

5. बच्चों को हर्निया होने वाले हर्निया रोग में चुम्बक अति अल्प शक्ति का लगाना चाहिए।
6. चुम्बकीय उपचार द्वारा रोगी 3 या 4 सप्ताह में पूर्ण आरोग्य प्राप्त कर लेता है।

मोटापा (Obesity)- सम्पूर्ण विश्व में 45 लोग आज मोटापे के रोग से पीड़ित हैं। प्रत्येक व्यक्ति में आलस्य भरा हुआ है, काम करने की लगन एवं इच्छा का अभाव रहता है। पाचन शक्ति से अधिक भोजन, वायुवर्धक आहार का सेवन, दुग्ध–निर्मित भारी आहार का सेवन, दिन में शयन, आरामदायक बिस्तर का अधिक प्रयोग, मधुमेह रोग, उच्च रक्तदाब, थायरॉयड ग्रन्थि की अल्प सक्रियता, अंतस्रावी ग्रन्थियों से निर्मित हार्मोन्स की गड़बड़ी के कारण मोटापा शुरू हो जाता है। विशेष रूप से पेट, कूल्हे, जांघ प्रदेश, स्तन प्रदेश पर अत्यधिक मात्रा में चर्बी चढ़ जाती है। आयुर्वेद के अनुसार मिताहार, युक्तियुक्त आहार न करना, प्रमादवष मानसिक असंतुलन, दोशों में कफज विकारों की वृद्धि के कारण शरीर में चर्बी बढ़ना शुरू होकर आदमी मोटापे का शिकार हो जाता है।

सामान्य लक्षण :–

1. मेद को बढ़ाने वाले पदार्थ– मलाई, दुग्ध, मक्खन, बेसन आदि का प्रयोग कम कर दें।
2. भोजन में सलाद और हरी सब्जी प्रयुक्त करें। कम कैलोरी वाले पदार्थ प्रयुक्त करें।
3. शारीरिक श्रम एवं व्यायाम का अभ्यास करें।
4. प्रातःकाल 4–5 किमी. एवं 25–45 मिनट की सैर करें।
5. पेट की चर्बी कम करने के लिए नाभि एंव पेट की मांसपेशियों की अलग से कसरत करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. गले के पास मौजूद थायरॉइड ग्रन्थि के दोनों ओर सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग करें।
2. रोज सुबह हथेलियों पर शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करना चाहिए।
3. नाभि प्रदेश पर बायें ओर एक्यू बिन्दु पर रात्रि में उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक प्रयुक्त करने पर मेदोवृद्धि शीघ्र कम होने लगती है।
4. दिन में 3–4 बार 50 मिली. चुम्बकित जल प्रयुक्त करें।
5. मोटापा यदि अधिक है तो चुम्बक का प्रयोग प्रतिदिन सुबह–शाम 30–45 मिनट तक करें।
6. जहां पर चर्बी अधिक है, वहां भी सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग अलग से किया जा सकता है।
7. भोजन के बाद आधा कप गरम चुम्बकीय जल का सेवन करें।
8. मोटापा निवारण हेतु मेरे द्वारा शोध की गई माइक्रो एक्यूप्रेषर विधि का प्रयोग करें।

अभ्यास प्रश्न – क

7. सिर दर्द में चुम्बक के किस ध्रुव का प्रयोग किया जाता है।
8. मधुमेह वह अवस्था है, जिसमें रक्त तथा मूत्र में किसकी बढ़ी हुई मात्रा पाई जाती है।

क.	विटामिन	ख.	प्रोटीन
ग.	शर्करा	घ.	सभी की मात्रा

13.6 उत्सर्जन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

जलीय वृषण (Hydrocele) :–

यह मुख्यतः मूत्रवह स्रोत की व्याधि है। इस रोग में वृषण ग्रंथियों के आसपास पानी युक्त द्रव जमा हो जाता है। यह अवस्था नवजात शिशुओं तथा 40 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियां में अधिक पाई जाती है। यह अवस्था एक या दोनों वृषणों के अंदर पाई जाती है। अधिकांषतः किसी प्रकार की चोट लगने या वृषणजन्य संक्रमण के कारण जलीय वृषण की समस्या जन्म लेती है। इस रोग में अण्डकोष के एक ओर गोलाकार और दर्द रहित सूजन होती है।

सामान्य उपचार :–

1. सूजन बढ़ाने वाले भोजन का परहेज करना चाहिए। जैसे– नमक, खटाई, तेज मसाले, दही आदि आहार की मात्रा नगण्य कर दें।
2. अण्डकोष पर सिकाई कदापि न करें।
3. पेट में मूत्राषय के स्थान पवर खिंचाव रहे तो पानी ज्यादा पियें।
4. लेटने पर पांवों के नीचे ऊंची चीज या तकिये का प्रयोग करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. अण्डकोष पर सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग श्रेयस्कर है।
2. तुलओं पर दायीं ओर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक तथा बायीं ओर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक प्रयोग में लें।
3. दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल का सेवन करें।
4. जलीय वृषण की अवस्था जीर्ण हो जाने पर शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग किया जा सकता है।
5. नाभि के ठीक 4 अंगुल नीचे उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगायें।
6. चुम्बकों का प्रयोग प्रातः–सायं 10–10 मिनट किया जा सकता है।

पेषाब का रुक–रुक कर आना (Dysuria) :–

मूत्र वह संस्थान की स्रोतों दुष्टि होने पर पेषाब दर्द के साथ रुक–रुककर आने लगता है। इस रोग के कारणों में मूत्र नाड़ी का प्रदाह, गुर्दों का प्रदाह, पथरी का होना, मूत्रमार्ग पर गांठ का होना, मूत्र सम्बन्धी संक्रमण, कभी–कभी गरम व मसालेदार भोजन के कारण पेशाब में जलन, शरीर में पानी की कमी हो जाना आदि माने गए हैं। इस कारण मूत्राशय के अंदर बहुत सारा पेशाब जमा हो जाता है। पेशाब जमा होने तथा रुक जाने के कारण टॉक्सिन (Toxin) विषैली चीजें शरीर में चली जाती हैं, जिससे जहरीली अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

सामान्य उपचार :–

1. इस रोग से पीड़ित रोगी को शीतल वस्तुओं का सेवन करना चाहिए।
2. अधिक मसालेदार एवं तीखे पदार्थ के व्यंजन नहीं खाएं।
3. ग्रीष्मकाल में पेशाब गाढ़ और अधिक पीला आ रहा हो, तब ठण्डी चीजों तरबूज, खरबूजा, पेठा एवं अन्य घरेलू चीजें गोखरू आदि का सेवन करें।
4. तरबूज एवं खसखस के बीजों को चबाकर खाने से शरीर में पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. रोगी के तलुओं के नीचे चुम्बक लगाएं।
2. नाभि के चार अंगुल नीचे दक्षिणी ध्रुव का चुम्बक लगाएं, जिससे मूत्राशय एंव उसके आसपास हो रहा खिंचाव दूर हो जाता है।
3. मूत्रकच्छता रोग के इलाज में चुम्बकीय जल का सेवन अत्यन्त फायदेमंद वाला होता है तथा इसे 50–50 मिली. की मात्रा में दिन में चार बार प्रयुक्त करें।
4. सुबह के समय तलुओं में शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करें।
5. पैरों में टखनों के पास चुम्बक लगाने से एक्यू–बिन्दु में ऊर्जा की वृद्धि होती है, उस भाग पर भी चुम्बक 10 मिनट तक प्रयुक्त करें।
6. रोग की गम्भीर अवस्था में चुम्बक 20 मिनट से 45 मिनट तक भी लगाई जा सकती है।

गुर्दे की पथरी (Kidney Stones) :–

शरीर के मूत्र वह संस्थान में प्रमुखता से होने वाली बीमारी में से एक है– गुर्दे में पथरी, जिसे वृक्काष्मरी भी कहा जाता है। गुर्दे में पाई जाने वाली पथरी मूत्र नलियों के रास्ते मूत्राशय की ओर जाती है। मूत्रनली का रास्ता संकीर्ण होने से पथरी उस मार्ग को अवरुद्ध कर देती है, जिससे मूत्राशय का रास्ता बंद होकर असहनीय पीड़ा होने लगती है। किसी रोगी में पथरी बनने की स्वाभाविक प्रकृति मौजूद रहती है जो अनेक नामों से मिलती है, जैसे–यूरिक अम्ल, कार्बोनेट, कैल्शियम फास्फेट, कैल्षियम ऑक्जेलेट आदि।

पथरी की संख्या एक या ज्यादा भी हो सकती है, आकार बाजरे से लेकर कुछ सेंटीमीटर तक का हो सकता है, मूत्र मार्ग में रुकावट डालने वाली पथरी से गुर्दों में भी तेज दर्द महसूस होता है। उसे वृक्कशूल (Renal Colic) के नाम से जाना जाता है। मूत्राशय में मौजूद पथरी का ज्ञान KUB Region के एक्स–रे द्वारा किया जा सकता है। पथरी होने की दषा में पेशाब में चीस का चलना, पेशाब का गंदला होना, कभी–कभी पशाब में सफेद पीव का निकलना पेशाब में खून उतरना मुख्य लक्षण पाये जाते हैं।

सामान्य उपचार :–

1. संतुलित आहार, जो पथरी मे ंहितकारी हो का सेवन करें।
2. गुर्दे की पथरी के रोगी को ऑक्जलेट वाले पदार्थ पाक आदि एवं यूरिक अम्ल बनाने वाले पदार्थ प्रोटीन इत्यादि नहीं खाने चाहिए।
3. पानी अधिक मात्रा में पीना चाहिए जिससे गुर्दों की धुलाई अच्छी तरह हो जाती है।
4. खाना खाने के तुरन्त बाद पेशाब करना चाहिए, यह आदत बना लें तो यूरीनरी सिस्टम ठीक रहता है।

चुम्बकीय उपचार :–

इस रोग के उपचार हेतु चुम्बकों का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक होता है। चुम्बक तथ चुम्बकित जल का प्रयोग इसकी सार्थक चिकित्सा मानी जाती है।

1. रोगी को तलुओं पर नियमित रूप से शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करना चाहिए।
2. दिन में 3–4 बार चुम्बकित जल का प्रयोग करना चाहिए।

3. जब गुर्दों में अधिक दर्द की शिकायत हो तो दर्द वाले स्थान पर चुम्बक लगाना चाहिए।
4. चुम्बकीय प्रयोग के साथ चुम्बकीय जल का सेवन मूत्र मार्ग की सफाई करने में सहायक है। मूत्र मार्ग में मौजूद विभिन्न लवणों की इस जल द्वारा सफाई हो जाती है।
5. गुर्दों के दर्द वाले स्थान पर नीले तेल का स्थानिक प्रयोग दर्द कम करता है।

13.7 रक्त परिसंचरण संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा का अधिक होना (High Cholesterol Level) :–

जिन लोगों के रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अधिक पाई जाती है, उनके हृदय की गति तेज हो जाती है। थोड़ा सा काम करने से भी सांस फूलने लगती है। पैरों में सूजन आ जाती है। छाती में बांयी ओर पीड़ा होती है। शारीरिक कमजोरी महसूस होती है, श्वास लेने में कठिनाई, मूर्च्छा, हार्ट अटैक पड़ने की आशंका हो जाती है। शरीर में कोलेस्ट्राल बढ़ाने के कारण में अधिक मीठे पदार्थों का सेवन, अधिक चर्बी युक्त भोजन, तेल, घी, मक्खन आदि में तले पदार्थ– पकवान, पूड़ी, कचौड़ी आदि का सेवन मुख्य है। इनसे हृदय में खून ले जाने वाली नलिकाओं में एक विजातीय तत्व जम जाता है, जिसे कोलेस्ट्रॉल कहते हैं। यह विजातीय तत्व खून की शिराओं को ऐसे बंद कर देता है, जैसे नाली का पानी रेत जमा होकर बंद हो जाता है। अतः जब हृदय में खून जाने के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं तो हृदय भी काम करना छोड़ देता है। इसके कारण हृदय का दौरा पड़ने का डर रहने लगता है। शारीरिक परिश्रम न करना, मोटे गद्दों पर सोना, दिन में सोना एवं दिनभर बैठक कर काम करना इस रोग को आमंत्रित करता है।

सामान्य उपचार :–

1. प्रातः–सायं हरी घास पर नंगे पैर 3–4 किमी. पैदल चलें।
2. भारी भोजन, चिकनाई युक्त चीजें, मिर्च–मसालेदार व्यंजन, व्यसन, चाय–कॉफी आदि अपना बचाव करें।
3. वसा–मुक्त आहार लें। कम कैलोरी युक्त खाना खायें।
4. खाने में बिना मलाई का दूध, हरी सब्जियां, फल, पनीर आदि प्रयोग करें।
5. प्रातःकाल शहद और सामान्य जल का सेवन करें।
6. सीढियां चढने, उतरने, दौड़ने आदि से बचना चाहिए।
7. मानसिक तनाव न रखें। धार्मिक रुचि रखें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. चुम्बकीय जल का सेवन करें।
2. गले के चार अंगुल नीचे शक्ति चुम्बक प्रयुक्त करें।
3. चुम्बक का उत्तरी ध्रुव छाती के मध्य रखें।
4. बायीं हथेली पर जहां नब्ज की जगह है, वहां चुम्बक चिपका दें।
5. 20 से 25 मिनट तक चुम्बक प्रयुक्त करें।
6. दोनों तलुओं पर चुम्बक का प्रयोग नियमानुसार करें।
7. ऊर्जा शक्ति बढ़ाने के लिए प्राणायाम एवं योगासन करें। मुख्य रूप से शवासन लाभकारी है।

8. पेट सम्बन्धी कोई खराबी है तो नाभि पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगायें।

दिल की धड़कनों का बढ़ना (Tachycardia)

दिल की बढ़ी हई धड़कनों का रोगी यह महसूस करता है कि उसे खुद की आवाज सुनाई दे रही है। सामान्यतया हम अपनी छाती के अंदर दिल की धड़कन महसूस नहीं करते हैं, किन्तु किसी कारणवष दिल की तेज धड़कन से घबराहट स्वतः उत्पन्न होना शुरू हो जाती है। इस अवस्था में आवष्यक नहीं है कि हृदयघात रोग के कारण ऐसा होता हो। (यद्यपि कभी–कभी हृदय के वाल्व में रुकावट के कारण भी ऐसा होता है) इसके मुख्य कारणों में– शोक, भय, मानसिक उत्तेजना, पेट के रोग, स्नायु दौर्बल्य, अति श्रम, एकदम कोई हादसा या नुकसान का समाचार, परीक्षार्थियों के लिए फेल होने के समाचार आदि हैं। व्यक्ति बहुत घबराहट में आ जाता है, वह शीघ्र ही सकुशलता चाहता है। मुख पर पीलापन, सुस्ती अधीरता का भाव उत्पन्न हो जाता है।

सामान्य उपचार :–

1. मानसिक चिन्ता सम्बन्धी कारणों को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए।
2. अनावश्यक जिम्मेदारी से अपना बचाव करें, समस्या उत्पन्न न करें और न होने दें।
3. रात्रिकालीन नींद पर्याप्त मात्रा में (8 घंटें) लें।
4. यदि पेट सम्बन्धी खराबी है तो आहार पर समुचित ध्यान दें।
5. शवासन क्रिया एवं योग करना लाभकारी रहता है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. सीने पर अति मध्यम या निम्न शक्ति का चुम्बक प्रयुक्त करें।
2. चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव प्रयोग करें तथा 15–25 मिनट तक उपचार करें।
3. कलाई के बीच चुम्बक लगाएं। चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाना चाहिए तथा बराबर लगाये रखें।
4. दोनों हथेलियों के नीचे शक्तिशाली चुम्बक रखें। दायीं हथेली के नीचे उत्तरी ध्रुव तथा बांयी हथेली के नीचे दक्षिणी ध्रुव रखें।
5. तलुओं पर चुम्बक लगाएं, बायें पैर के नीचे दक्षिणी ध्रुव तथा दायें पैर के नीचे उत्तरी ध्रुव रखें।
6. रोग की समाप्ति पर चुम्बकों का प्रयोग नियमित जारी रखें।
7. हृदयगत कोई रोग हो तो दिन में 4–5 बार चुम्बकीय जल पिया जा सकता है।

13.8 प्रजनन संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

कष्टार्तव/ दर्द के साथ माहवारी आना (Dysmenorrhoea)

यह एक स्त्री रोग है। इस रोग में मासिक चक्र के समय में गड़बड़ी हो जाती है एवं अनियमित हुआ मासिक धर्म कष्ट से होता है। योनि प्रदेष के आस–पास हमशा खिंचाव बना रहता है। कष्ट से आने वाली माहवारी के दौरान पेट के निचले भाग, कमर तथा कूल्हों के पास तीव्र खिंचाव रहता है। इस रोग के मुख्य कारणों में गर्भाशय का अपने स्थान से हटना, प्रजनन अंगों में किसी गांठ का होना, संक्रमण का होना, मूत्रजन्य अन्य बीमारी का प्रकोप होना, किसी हार्मोन्स की कमी का होना, खून की कमी का होना, गर्भाशय में सदा सूजन बनी रहना, योनि में कॉपर टी समुचित स्थान न होना आदि शिकायतें औरतों को कष्ट देकर माहवारी लाती हैं।

सामान्य उपचार :–

1. योनि प्रदेश की हमेशा समुचित साफ–सफाई रखें।
2. मूत्रवह रोग या अन्रू कोई रोग हो तो उसकी परीक्षा करें।
3. परहेज में सादा एवं संतुलित आहार का प्रयोग करें।
4. रक्त–वृद्धि के लिए आयरन प्रदान भोजन का प्रयोग करें।
5. प्रातःकाल 3–4 किमी. की सैर करें।
6. मासिक धर्म के समय में विश्राम करने की आदत बनाएं। प्रायः महिलाएं अपने इस तीन दिनों के समय में आराम नहीं कर पाती हैं।

चुम्बकीय उपचार :–

1. नियमित प्रातः–तलुओं पर चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए।
2. रोज सुबह के समय 20 मिनट तक नाभि के ठीक नीचे उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक लगाएं तथा ठीक उसी के पीछे पीठ पर दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक लगाना चाहिए।
3. दिन में 2–3 बार चुम्बकीय जल का प्रयोग करें।
4. स्थानिक प्रयोग में मौजूद योनि की खुजली, योनि में सूजन आदि हो जाने पर दक्षिणी ध्रुव वाले चुम्बकीय तेल का बाह्य प्रयोग करें।
5. पैरों के टखने के पास मौजूद एक्यू बिन्दु पर चुम्बक प्रयोग करेन से लाभ शीघ्र मिलने लगता है।

प्रदर रोग (Leucorrhoea)

यह एक स्त्री रोग है। खून के अलावा स्त्रियों को योनि से बहने वाले प्रत्येक स्राव को प्रदर (Leucorrhoea) की संज्ञा दी जाती है। इस स्राव का रंग चावल के धोवन के समान होता है। इसलिए इसे श्वेत प्रदार (White Discharge or Whites) की संज्ञा दी जाती है। अनेक स्त्रियों एवं यौवनाओं में में यह मुख्यतया पाया जाता है। यदि इस रोग की उपेक्षा की जाती है तो योनि मुख दूषित हो जाता है एवं उस पर घाव, मवाद हो जाते हैं। रोगी को सिरदर्द, चेहरे पर सुस्ती, कब्ज, अफारा, स्वास्थ्य गिरना, आमवात, खून में कमी, माहवारी चक्र का बदलना, अधिक खुजली–कण्डू, बार–बार गर्भ का गिरना, योनि मुख का कैंसर आदि अन्य रोग हो जाते हैं।

सामान्य उपचार :–

1. यदि स्वास्थ्य की खराबी के कारण यह रोग हुआ है तो पौष्टिक भोजन तथा ताजी हवा पर विशेष ध्यान देने की आवष्यकता होती है।
2. योनि प्रदेश एवं आसपास के क्षेत्र की साफ–सफाई रखनी आवश्यक है।
3. पेट की कोई बीमारी हो तो उसे दूर करने की कोशिष करें।
4. अधिक चिकनाई, मिर्च–मसालेदार चीजों से बचाव करें।
5. स्त्री जननांगों को पुष्ट करने वाले योगासन एवं व्यायाम करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. इस रोग से पीड़ित स्त्रियों को रोज प्रातः दोनों पैरों के तलुओं में शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए।

2. जननांग तथा गुदा के मध्य भाग पर मध्यम शक्ति वाले चुम्बक का उत्तरी ध्रुव रखें।
3. चुम्बक द्वारा प्रभावित किया गया जल दिन में 3–4 बार प्रयुक्त करें।
4. 15–20 मिनट तक चुम्बकीय उपचार करें। दिन में 2–3 बार चुम्बक लगायें।
5. योनि के संक्रमण को रोकने के लिये नीले चुम्बकीय तेल का फोहा प्रयुक्त करें।
6. पेट दर्द की षिकायत हो तो नाभि के ठीक नीचे उत्तरी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग करें।

अति आर्तव (रक्त प्रदर) (Menorrhagia)

यह स्त्रियों को होने वाला रोग है, जिसमें माहवारी के समय अत्यधिक रक्त आता है। इसके अलावा एक अन्य अवस्था ऐसी होती है, जिसमें बहुत खून आता है, लेकिन ऋतुस्राव या माहवारी के इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस अवस्था को रक्त प्रदर करते हैं। एक नियत अवधि के अंदर ही कभी–कभी सामान्य स्थिति हो जाती है, जवान लड़कियों में यह अवस्था प्रत्येक ऋतुस्राव के दौरान एक सप्ताह तक गतिशील रहती है। स्त्रियों में यह अवस्था रजोनिवृत्ति (Menopause) के समय बहुतायत से पाइ जाती है। योनि मार्ग से अनिमित तथा अधिक खून बहने के कुछ मुख्य कारण हैं– गर्भपात, गभाशय के अंदर किसी प्रकार की रसौली, फाइब्रोइड का होना, बच्चेदानी के अंदर की सतह पर घाव तथा खून की कमी, गलगण्ड (Goitre) की उत्पत्ति होना आदि। अधिक खून जाने से चेहरा पीला पड़ जाता है, आंखें अंदर की ओर धंस जाती हैं, हाथ–पैर ठण्डे हो जाते है, नजर और नाड़ी कमजोर हो जाती है, कानों में भिनभिनाहट होती है, सिरदर्द रहता है।

सामान्य उपचार :–

1. सादा तथा शीघ्र पचने वाला भोजन करें।
2. शारीरिक परिश्रम, कोई व्यायाम या योग करें।
3. मानसिक व्यथा हो तो शान्ति के उपाय करें।
4. हरी सब्जी, फलों का रस तथा बिना मलाई के दूध का सेवन करें। खून वृद्धि करने वाले आहार लें।
5. तेज मिर्च–मसालेदार व्यंजनों से बचें।
6. सूर्योदय से पूर्व घूमने जायें, स्नान करें, स्वच्छता रखें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. जननांग तथा गुदा के मध्य भाग पर मध्यम शक्ति वाले चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगायें। इससे रक्तस्राव कम होने लगता है।
2. तलुओं पर नियमानुसार चुम्बक प्रयुक्त करें।
3. प्रतिदिन सुबह–शाम 15–15 मिनट का चुम्बकीय उपचार लें।
4. चुम्बकीय जल का सेवन दिन में 3–4 बार 2–3 सप्ताह तक करें।
5. चुम्बक को टखने के पास एक्यू बिन्दुओं के ऊपर लगायें। यह अंदर वाले टखनों पर पड़ने वाले बिन्दु हैं।
6. प्रातःकाल हथेलियों पर चुम्बक के प्रयोग से भी नाड़ी दौर्बल्य कम होता है इसलिए हथेलियों पर चुम्बक लगायें।

लिंग सम्बन्धी रोग (Sexual Disorder) –

यौन शिक्षा के अभाव में लिंग सम्बन्धी व्याधियां या कष्ट दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। इन रोगों में सुजाक, स्वप्नदोष, अण्डकोष का प्रवाह, गर्मी या सिफलिस, गेनोरिया आदि हैं। ये रोग कब्ज, स्वप्नदोष अण्डकोषों में खराबी, उत्तेजक पदार्थों का सेवन, शराब पीने, कुसंसर्ग, हस्तमैथुन, अधिक मात्रा में शुक्रक्षय, चोट लगने, गिर जाने, गलत स्त्री गमन, शरीर में विषाक्ता, दूषित आहार आदि के कारण होते हैं। लिंग सम्बन्धी सभी रोगों के लक्षण लगभग एक जैसे होते हैं– शरीर में फुर्ती का अभाव, स्मरणषक्ति में कमी, सिर का दर्द, आंखों के नीचे को दाग, स्वप्न दोष, स्त्री सहवास से पूर्व ही वीर्यपात, अण्डकोषों में सूजन, वीर्य निकलते समय गर्मी का अनुभव आदि।

सामान्य उपचार :–

1. गरम मसाले, तले हुए पदार्थ, चाय, काफी, शर्बत, सोड़ा, शराब, भांग, बीड़ी, सिगरेट आदि का सेवन अहितकार होता है।
2. शाम को भोजन 9 बजे से पूर्व कर लेना चाहिए।
3. मन को शान्त रखें। गन्दा साहित्य नहीं पढ़ें।
4. ब्रह्मचर्य का पालन (गृहस्थी रहते हुए एक स्त्री गमन) करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. तलुओं के नीचे नियमानुसार चुम्बक लगायें।
2. दायें पैर के नीचे उत्तरी ध्रुव तथा बायें पैर के नीचे दक्षिणी ध्रुव का चुम्बक प्रयुक्त करें।
3. जननांग से कुछ ऊपर पेडू के नीचे वाले भाग पर मध्यम शक्ति वाला उत्तरी ध्रुव चुम्बक लगायें।
4. टखने के पास एक्यू बिन्दु पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगायें।
5. चुम्बक 20 से 30 मिनट तक ही प्रयुक्त करें।
6. दिन में 3–4 बार चुम्बक द्वारा प्रभावित किया गया पानी पियें।

अभ्यास प्रश्न – ख

1 दिल की धड़कन बढ़ने पर कौन से ध्रुव का प्रयोग किया जाता है।

2 प्रदर रोग में जननांगों के मध्य कौन से ध्रुव का प्रयोग किया जाता है –

क. दक्षिणी ध्रुव ख. उत्तरी ध्रुव

ग. सामान्य घ. आवश्यकता नहीं है।

13.9 स्नायु संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

मिर्गी/अपस्मार (Epilespy) :–

यह मुख्य रूप से नाड़ी वह संस्थान का रोग होता है। इसमें रोगी को बार–बार मूर्च्छा के दौरे आते हैं, साथ ही अंदर की नाड़ियों में ऐंठन शुरू हो जाती है। इस रोग

में मस्तिष्क की नाड़ियों में रक्त प्रवाह में व्यवधान होने से नाड़ी दौर्बल्य होकर आकस्मात दौरे पड़ने शुरू हो जाते हैं। यह रोग आनुवांशिक गुण वाला होता है। माता–पिता को यदि फिरंग रोग, उपदंश रोग या अधिक मात्रा में शराब आदि वस्तुओं का सेवन का व्यसन हो तो यह रोग जन्म लेता है।

कुछ अज्ञात कारणों में आंखों का परिवर्तनीय दोष, नाक के रोग, लिंग मुण्ड की कठोरता, अपच की उग्र अवस्था, पेट की बीमारियों के फलस्वरूप, उदरगत कृमि का होना, मानसिक उन्माद आदि होते हैं। इसे ही आक्षेप (Convulsions) मूर्च्छा (Seizure) या दौरा (Fits) कहा जाता है। जब रोगी को दौरा आने वाला होता है तो पहले रोगी अनेक प्रकार के रंग देखता है अथवा कानों में डरावनी आवाजें सुनात है। उसे महसूस होता है जैसे चमड़ी के नीचे कीड़े चल रहे हों। इसके बाद रोगी बहुत चीख मारता है, अकड़न वाली स्थिति में जमीन पर गिर जाता है। हाथ–पैर अपनी ऊर्जा खोते नजर आते हैं। शरीर को पीछे की ओर धनुषनुमा कर तानता है और सिर पीछे एक तरफ लटक जाता है। मुंह से झाग आने लग जाते हैं। कुछ मिनटों के पश्चात् शरीर में ढीलापन आकर अगला दौरा आरम्भ होने तक रोगी पुनः होश में आ जाता है। दौरे के समय रोगी अल्पशक्ति वाला एवं नील वर्ण का हो जाता है।

सामान्य उपचार :–

1. दौरा पड़ने पर विशेष रूप से रोगी की जीभ को कटने से बचाना चाहिए। इसके लिए दांतों के मध्य रुमाल रख देना चाहिए।

2. कपड़ों को ढीला कर देना चाहिए एवं खुली हवा में लिटा देना चाहिए।

3. रोगी को शाकाहारी भोजन करना चाहिए, भारी और श्वेतासार भोजन से बचना चाहिए।

4. नियमित प्राणायाम, योगाभ्यास, ध्यान, मानसिक शान्ति के लिए शान्ति पाठ करना श्रेयस्कर है।

चुम्बकीय उपचार :–

1- शरीर की ऐंठन का आक्रमण होने पर मस्तक के अग्रभाग पर निर्बल लौह चुम्बक का ध्रुव आवश्यकतानुसार चिपकाए रखें।

2- दोनों कनपटियों पर रोज सुबह सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग करना चाहिए।

3- चुम्बकीय जल का नियमित रूप से दिन में 3–4 बार सेवन लाभकारी है।

4- दौरा पड़ने की मध्य अवधि तक 20 से 30 मिनट तक प्रायः सायं नियमित रूप से चुम्बकीय उपचार लेना श्रेयस्कर है।

5- एक्यू बिन्दु सिर की चोटी वाले स्थान पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाने से चेतन अवस्था शीघ्र लौट आती है, इस विधि का प्रयोग दौरा आते ही तुरन्त करना चाहिए।

अनिद्रा (Ensomnia) :–

अनिद्रा रोग (नींद न आना) के कई कारण बताए गए हैं। मुख्यतः अव्यवस्थित मनोदषा, गलत व्यायाम, खुले वातावरण की शुद्ध वायु का अभाव, अधिक कार्य, नषीले द्रव्यों का प्रयोग, बीमारी, दिन में अत्यधिक सोना, भारी भोजन करना, अन्य शारीरिक अव्यवस्था के चलते अनिद्रा रोग घर कर जाता है।

सामान्य उपचार –

1. अनिद्रा रोग से छुटकारा पाने के लिए शयनकक्ष में रोशनदान खुले होने चाहिए।
2. रोगी को नियमित व्यायाम करना आवश्यक है।
3. सोने से पूर्व सुपाच्य आहार का सेवन करना हितकारी होता है।
4. गरम स्नान नींद लाने वाला होता है।
5. अत्यधिक निद्रालु दवाओं से बचाव किया जाये तो अनिद्रा रोग से बचाव संभव है, दवाओं की आदत न बनायें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. दक्षिणी ध्रुव वाले सेरेमिक चुम्बक को सोने से 15 मिनट पहले माथे पर लगाना उपयुक्त है।
2. दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल का सेवन अनिद्रा रोग ठीक करता है।
3. माथे के मध्य एक्यूप्रेशर बिन्दु पर चुम्बक प्रयोग से अनिद्रा रोग ठीक हो जाता है। फिर भी यदि नींद न आये तो सोते समय तलुओं पर चुम्बकीय तेल की मालिश नियमित रूप से करें।

लकवा/ पक्षाघात (Paralysis)

नाड़ी संस्था का प्रमुख रोग लकवा कहलाता है। इस रोग में किसी अंग की गतिशीलता नष्ट हो जाती है। स्नायुमंडल की नाड़ियों चोट या अति क्रियाशीलता के कारण इस रोग के होने की संभावना अधिक रहती है।

सामान्य उपचार :–

1. रोग का निश्चय करें कि कैसा लकवा है।
2. खाने में हरी सब्जियां, सलाद, फल एवं अंकुरित अनाज ले सकते हैं।
3. मनसिक तनाव को कम करने वाले कार्य करने चाहिए।
4. रोगानुसार पथ्य करना चाहिए।

चुम्बकीय उपचार :–

1. अधरांगघात की अवस्था में प्रभावित क्षेत्र के अनुसार शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग है तो तलुओं पर किया जाना चाहिये। यदि नाभि के ऊपर वाले हिस्से में लकवा है तो दोनों हथेलियों पर और यदि निचला भाग लकवा ग्रस्त है तो तलुओं पर नियमानुसार चुम्बक लगायें।
2. फेशियल पैरालाइसिस की प्रारिम्भक स्थिति में निर्बल चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव कान के पीछे चिपकायें।
3. लकवाग्रस्त भाग पर नियमानुसार ऊपर–नीचे चुम्बक लगायें।
4. दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल का प्रयोग करें।
5. लकवाग्रस्त अंग पर लाल चुम्बकीय तेल की मालिश करें।
6. हाथों की सक्रियता बढ़ाने के लिए उत्तरी ध्रुव के चुम्बक अंगुलियों के पोरों पर चिपकाएं। यहां पर एक्यू बिन्दु भी मौजूद होने से लाभ जल्दी मिलता है।

13.10 अस्थि संस्थान के रोगों का चुम्बकीय उपचार

गठिया :

गठिया शरीर में वायु प्रधान, पीड़ादायक जोड़ों के रोगों में एक है। इस बीमारी में रोगी के खून के अंदर यूरिक एसिड का स्तर बढ़कर जोड़ों के अन्दर चूने के समान

एक द्रव्य जमा हो जाता है। इस रोग को वंषानुगत माना गया है। अर्थात यह संतान में माता–पिता से भी हो सकता है। यह औरत एवं मर्दों में समान रूप से होने वाला रोग है। आयुर्वेद में वात और रक्त के विगुणित होने के पश्चात छोटे–छोटे जोड़ों में दर्द की अनुभूति होती है। यह रोग अंगूठे से चलकर फैलने वाला होता है, ऐसा कहा जाता है।

गठिया रोग के अनेक कारण हो सकते हैं, जिसमें शराब का अति सेवन, प्रोटीन प्रधान भोजन अधिक प्रयुक्त करना, शारीरिक व्यायाम का अभाव, खान–पान आदि मुख्य हैं। गठिया में प्रकोप के समय जोड़ों में सूजन, ज्वर और स्पर्श से असहजता की अनुभूति होती है, रोगी को हल्के झटके में तेज दर्द होता है, कभी–कभी उल्टी, सिरदर्द, चेहरा लाल और ज्वर हो जाता है। इसका प्रकोप 15–20 दिन या 1–2 महीने के अन्तराल में होता रहता है। यदि समय पर इस रोग की रोकथाम नहीं की गई ते यह रक्त के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर को जकड़कर मृत्यु के मुंह तक पहुंचा देता है।

सामान्य उपचार :–

1. इस रोग में गठिया को उत्पन्न करने वाले कारणों से बचाव श्रेयस्कर रहता है।
2. संतुलित आहार का सेवन करना चाहिए। रोगी को प्रोटीन युक्त चीजें कम लेनी चाहिए, क्योंकि प्रोटीन प्रधान आहार यूरिक अम्ल के स्तर में वृद्धिकारक होते हैं। इसलिए पनीर, पत्तेदार सब्जियां, अण्डा, दाल एवं मावे की वस्तुयें नहीं लेनी चाहिये।
3. रोग की तीव्र अवस्था में रोगी को उष्ण जल का सेवन, उष्ण जल से स्नान, वायुनाशक औषध का प्रयोग करना चाहिए।

चुम्बकीय उपचार :–

1. दिन में 3–4 बार उच्च शक्तिशाली चुम्बकों को पैर के अंगूठों के पास लगायें।
2. तलुओं पर उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक दायीं ओर एवं दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक बायी ओर प्रयुक्त करें।
3. दर्द वाले स्थान पर उत्तरी ध्रुव सिद्ध तेल का प्रयोग करें।
4. दिन में 4–5 बार चुम्बकीय जल का प्रयोग करें।

अन्तःकशेरूका चक्र च्युति (Inter Vetebral disc)

अन्तःकशेरूका चक्र रीढ़ की हड्डियों की कषेरूका के मध्य मौजूद डिस्क की संरचना के अन्तर्गत आता है। जब इस चक्र के अन्दर का भाग अपने स्थान से हट जाता है तो उसे अन्तः कशेरूका चक्र च्युति (Slipped Disc) की संज्ञा दी जाती है। इसमें चक्र का मध्यम भाग, जिसे न्यूक्लियस पल्पोसस (Nucleus Pulposus) कहा जाता है, बाहरी छल्ले पर दबाव के कारण फट जाता है। इसके कारण नाड़ियों पर गहरा दबाव पड़ता है और वहां दर्द शुरू हो जाता है। जहां तक नाड़ी का सम्बन्ध रहता है, वहां तक दर्द होता रहता है। गृध्रसी नाड़ी में भी प्रायः ऐसा ही रोग उत्पन्न होता है। इस रोग को अन्तःकषेरूका चक्र का हटना कहा गया है। जोर से चोट लगने, तेज वाहन पर चलने, आगे झुक कर वजन उठाने, आराम करने के तुरन्त बाद कोई भारी वस्तु को उठाने से यह स्थिति बनती है। यह अवस्था 20 से 50 वर्ष की आयु वाले व्यक्तियों में ज्यादातर पाई जाती है।

रोगी चलने में असमर्थ एवं लंगड़ा हो जाता है। रोगी को न सोने पर, न बैठने पर और न ही चलने पर चैन मिलता है। पांवों में सुन्नता, मूत्र एवं मल के निष्कासन में कष्ट

या बंद होना, भयंकर पीड़ा, पांवों के पंजों का गद्दीनुमा मालूम पड़ना, पैर का कमर से सम्बन्ध अलग लगना, अंगुंलियों में स्पर्श सूनापन आदि सायटिका एवं स्लिप डिस्क के प्रमुख लक्षण हैं।

सामान्य उपचार :–

1. कड़े बिस्तर पर सोना चाहिए। पीठ के बल सीधा सोना हितकारी है।
2. जब तक डिस्क अपने स्थान पर न आ जाए, तब तक विश्राम करना चाहिए।
3. कमर से लेकर पांव तक नमक का हल्का सेंक भी किया जा सकता है।
4. पेट साफ रखें।
5. आगे झुकने वाले काम से अपना बचाव करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. शक्तिशाली चुम्बक को प्रभावित अंग के अनुसार कटि प्रदेश या ग्रीवा प्रदेश तथा दक्षिणी ध्रुव चुम्बक को घुटने, टखने या बांह आदि पर, जहां तक दर्द का अंतिम फैलाव हो, लगायें।
2. घुटने के पीछे वाली सिलवट के ठीक बीच में एकदम छोटा लौह–चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाकर रखें।
3. इस रोग की रोकथाम एवं सामान्य उपचार हेतु चुम्बकीय पट्टा कमर पर बांधें।
4. 15 से 20 मिनट तक दिन में 2–3 बार दोनों ध्रुवों के चुम्बक का उपचार लें।
5. प्रभावित अंग पर नीले चुम्बकीय तेल की मालिश कर सिकाई करने से दर्द नष्ट होता है।
6. गर्दन के छल्लों में दर्द हो तो नियमानुसार चुम्बक लगायें।
7. तकिये के प्रयोग से बचें।

कमर दर्द / कटिग्रह (Lumbago) :–

आयुर्वेद के अनुसार कटि प्रदेश वायु का मुख्य स्थान है। कटि प्रदेश पर वायु के विगुणित हो जाने से कमर में दर्द, खिंचवा, सूजन आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में शरीर को मोड़ने पर दर्द होता है तथा कुछ अवस्थाओं में छींकने, खांसने या हंसने से भी कमर में जोर का झटका महसूस होता है। रोग के मुख्य कारणों में कमर पर किसी प्रकार का प्रेशर पड़ जाना, कमर के छल्लों पर चोट, कशेरूकाओं की सूजन, कशेरूकाओं में क्षति आदि हैं। पूर्व अवस्था में रोगी को कमर में हल्का दर्द बना रहता है, जिसमें विश्राम करने या सीधे तनकर बैठने तथा पीठको किसी सहारे से लगाने पर रोगी को कुछ हल्कापन महसूस होता है, जबकि अचानक आगे की ओर मुड़ने, कुर्सी पर झुक कर बैठते समय या भारी बोझ उठाते समय कमर में तीव्र पीड़ा होने लग जाती है। इस रोग में कमर की कशेरूका संधि के प्रदाह की अवस्था में तीसरी और चौथी कटि कशेरूका के मध्य या 4 व 5वीं डिस्क के मध्य मौजूद स्पंज से जुड़े नाड़ी सूत्र प्रभावित रहते हैं। जोड़ो को ऊपर से ढकने वाली कार्टिलेज कमजोर होकर रोगी को कष्ट देती है।

सामान्य उपचार :–

कमर में तेज दर्द की अवस्था में कड़क बिस्तर पर आराम करना नितांत आवश्यक है।
व्यायाम, तेल की मालिश, कसरत, वनज उठाने से बचें।

शरीर को न तो ज्यादा मोड़े और न उस पर प्रेशर आने दें।

कमर दर्द की सामान्य अवस्था और गरम बोतल के सेंक से आराम मिल जाता है।

1 पेट की गड़बड़ी हो तो उसे ठीक करें।

2 रीढ़ की हड्डी को हमेशा सीधी रखने का प्रयास करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1 कमर प्रदेश में दर्द वाले स्थान के सबसे ऊपरी भाग पर उत्तरी ध्रुव वाला तथा सबसे नीचे के भाग पर दक्षिण ध्रुव वाला चुम्बक लगाना चाहिए।

2 यदि दर्द का फैलाव दांयीं ओर से बायीं ओर की चौड़ाई में हो तो उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक दायीं ओर दर्द वाले स्थान पर एवं दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक बायीं ओर प्रयुक्त करें।

3 कमर दर्द वाले निचले हिस्से में लाल तेल एवं धूप की सिकाई करें। कमर के ऊपर वाले हिस्से पर दक्षिणी ध्रुव वाले तेल की मालिश करें।

4 दिन में 4–5 बार चुम्बकीय जल प्रयुक्त करें। स्लिप डिस्क से बचने के लिए चिकित्सक के निर्देषों का कड़ाई से पालन करें।

प्रतिवर्ष इस रोग से पीड़ित लाखों लोगों का उपचार एक्यूप्रेशर एवं चुम्बकीय चिकित्सा द्वारा सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

आमवात (Rheumatism)–

आमवात **(Rheumatism)** एक ऐसी बीमारी है, जिसमें वायु के प्रकोप से जोड़ों तथा पेशियों में असहनीय वेदना होती है। ठण्ड, शीत ऋतु, शीतल जल के अत्यधिक सेवन से इस रोग में वृद्धि हो जाया करती है। यह आमवात दो प्रकार से होता है– सम्पूर्ण शरीर में दर्द करने वाला एवं अंग विशेष में दर्द करने वाला। आमवात की तीव्र अवस्था में बुखार उत्पन्न होकर भयानक स्थिति पैदा कर देता है। आमवात को सामान्यतः गठिया वाला संधि शोथ और गठिया कहा जाता है। आमवात उत्पन्न करने वाले हेतु हैं– विषजन्य संक्रमण, दूषित खान–पान, भूखा रहना, ह्रदय की गति का कम ज्यादा होना, शक्ति में कमी, जोड़ारें की सामान्य अकड़न,चोट लगना, मांसपेषियों की कमजोरी, रक्त में यूरिक एसिड बढ़ जाना आदि। यह विशेषकर 35 से 50 वर्ष की महिलाओं में पाया जाने वाला रोग है।

सामान्य उपचार :–

1. रोग बढ़ाने वाले पदार्थों का सेवन न करें।
2. समय–समय पर रक्त की जांच कराकर उचित आहार लें।
3. शीतल पदार्थों का सेवन न करें।
4. प्रातःकालीन शुद्ध वायु का सेवन अनिवार्य है।
5. चिकित्सक द्वारा बताई गई कसरतों का नियमित अभ्यास करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. रोग की शुरूआत होते ही रोज सुबह हथेलियों तथा शाम को तलुओं पर शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग करना चाहिए।
2. उत्तरी ध्रुव से तैयार चुम्बकीय जल को दिन में 3–4 बार उपयोग में लें।
3. आमवात की तीव्र अवस्था में लाल तेल चुम्बकीय तेल की मालिश एवं सिकाई करें।
4. तलुओं पर प्रतिदिन चुम्बकीय तेल की हल्की मालिश करें।

सायनस रोग (Sinusitis) –

यह ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में से एक है। नाक की बीमारियों में इस बीमारी का स्थान सर्वोच्च है। नाक के अंदर ही सतह जो मस्तिष्क से लगी रहती है, नाक के दायीं–बायीं ओर एवं नाक संक्रमण द्वारा कफ जन्य रोग उत्पन्न हो जाता है तो इन सायनसों में सूजन रहना शुरू हो जाती है, आगे जाकर यही अवस्था सायनुसाइटिस कही जाती है। सायनस में सूजन आने के प्रमुख कारणों में संक्रमण, एलर्जी, कफ विकार हैं, इस रोग के लक्षणों में– बार–बार छीकें आना, नाक से पतला एवं गाढ़ा पानी आना, आंखें भारी रहना, नाक का बंद रहना, बार–बार जुकाम का होना, गले में खुजली चलना, टॉन्सिल का बढ़ना, दांतों में संक्रमण का होना आदि मुख्य हैं, जिससे रोगी असहाय हो जाता है, वह कोई भी नया काम शुरू करने की सोचता है तो इस रोग का आक्रमण होकर उसे निराश कर देता है। अन्त में रोगी शल्य चिकित्सा का सहारा लेकर नाक की अंतः झिल्ली को छेदकर उसमें मौजूद मवाद को बाहर निकलवा देता है। सामान्यतः 2 या 3 साल बाद यह रोग पुनः उभर जाता है। शष्य क्रिया इसका अस्थायी समाधान है।

सामान्य उपचार :–

1. प्रारम्भ से ही नाक एवं गले की सफाई का विशेष ध्यान रखें।
2. नाक के नथुनों एवं नाभि चक्र पर सोते समय सरसों का तेल की हल्की मालिश करें।
3. शीत ऋतु एवं शीतल प्रकृति की वस्तुएं अहितकर होती हैं, इस कारण इन्हें नहीं खायें।
4. प्राकृतिक उपचार में जलनेति, सूत्रनेति प्रयोग में ले सकते हैं। नियमित प्राणायाम एवं योगाभ्यास जरूरी है।

चुम्बकीय उपचार :–

1. चुम्बकीय चिकित्सा में प्रभावित अगों पर सेरेमिक चुम्बकों का प्रयोग रोगनाशक होता है।
2. नाक, गला, गाल एवं भ्रू–मध्य के ऊपर चुम्बकों का प्रयोग करें।
3. नाक के दोनों ओर मध्यम शक्ति वाले चुम्बक का प्रयोग करें।
4. दोनों हथेलियों पर भी चुम्बक लगाये जा सकते हैं। उच्च शक्ति के चुम्बक लेकर दायी हथेली पर उत्तरी ध्रुव तथा बांयी हथेली पर दक्षिणी ध्रुव लगायें।
5. चुम्बक 20 से 30 मिनट तक रखें।
6. जब तक नाक की सूजन में कमी न आए, चुम्बकीय चिकित्सा करते रहना चाहिए।

गर्दन की अकड़न (Stiffness of Neck)

कई बार गर्दन प्रदेष में दर्द की अनुभूति होकर गर्दन एक जगह पर जाम हो जाती है। इसके मुख्य कारणों में– मोच आना, दांतों की खराबी, कान की खराबी, गिल्टियों में सूजन, छल्लों की संधि में सूजन, गर्दन की अन्य बीमारियां, नाड़ी दौर्बल्य के कारण गर्दन की मांसपेशियों में बीमारी, शीत ऋतु का प्रकोप है। इस रोग में गर्दन को अपने स्थान से इधर–उधर चलाने में अत्यधिक पीड़ा का अनुभव होता है। गर्दन की अकड़न तथा पीड़ा प्रायः लम्बे समय तक एक ओर शयन करने या सिर के नीचे ऊंचे–ऊंचे मोटे तकियों का प्रयोग करने से होती है।

सामान्य उपचार :–

1. गर्दन के नीचे ऊंचे तकिये के प्रयोग से बचें।

2. गर्दन को झटका देने वाले कारणों से बचायें। तेज वाहन न चलायें।
3. दर्द की तीव्रता में रोगी को तख्त पर लिटाना श्रेयस्कर होता है।
4. गर्दन के चारों ओर नरम कपड़े को लपेटकर या गरम बोतल को सेक करें।
5. शीतल हवा एवं ठण्डी वस्तुओं का सेवन न करें।
6. तेज खट्टे पदार्थ न खायें, सामान्य आहार प्रयोग में लें।
7. मांसपेशियों में सूजन आ गई हो तो आराम की सख्त जरूरत समझें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. गर्दन की अकड़न के स्थान का अध्ययन कर यह जान लें कि कहां पर चुम्बकों का प्रयोग करना है।
2. चुम्बकों के प्रयोग में उत्तरी ध्रुव दायीं ओर तथा दक्षिणी ध्रुव बायीं ओर प्रयुक्त करें।
3. हथेलियों एवं अंगूठे के पास स्थित एक्यू बिन्दुओं पर चुम्बक प्रयोग करने से शीघ्र लाभ मिलने लगता है।
4. गर्दन में दर्द की तीव्र अवस्था में दक्षिणी ध्रुव वाले तेल की मालिश से अकड़न एवं सूजन मिटने लगती है। साथ ही फलालेन का कपड़ा गर्दन पर लगाकर उत्तरी ध्रुव वाले चुम्बक को गर्दन पर रखें।

टॉन्सिलों का बढ़ना (Tonsillitis)

गले के अंदर जिह्वा के अंतिम छोर पर काकलक के पास दो परहेदार होते हैं। उनमें संक्रमण होकर सूजन हो जाती है। इसी को टॉन्सिल बढ़ना या शोथ कहा गया है। गले के रास्ते में होने वाले संक्रमण को ये गलतुण्डिकाएं रोकती हैं। इसका मुख्य कारण संक्रमण है। प्रमुख लक्षणों में बुखार आना, गले के अन्दर दर्द रहना, सिर में भारीपन, टॉन्सिलों में लालीपन, आवाज का खराब होना एवं मुंह से गंदी बदबू आना, खाने के समय गले में दर्द रहना, कच्चे बलगम की उत्पत्ति होना, गाढ़ा पीला पेषाब आना आदि हैं। इस बीमारी की पुरानी अवस्था हो जाने पर आमवात रोग, जोड़ की बीमारी, सदैव अस्वस्थता रहने लग जाती है। इस रोग का प्रकोप सामान्यतः मौसम के बदले स्वरूप के समय देखने को मिलता है। बच्चों में यह रोग एक आम बात है।

सामान्य उपचार :–

1. जलवायु परिवर्तन, ऋतु परिवर्तन, मिथ्या आहार–विहार, पेट की खराबी होने से स्वयं का बचाव करें।
2. गरम पानी में नमक या फिटकरी डालकर गर्रारे करें।
3. रात्रि को सोते समय मुख शुद्धि करके 1 गिलास उष्ण जल का सेवन गले के रोगों से बचाता है।
4. सर्दी की ऋतु में गले के ऊपर सूती या ऊनी मफलर की लपेट बनाकर रखें।
5. खट्टे पदार्थों का सेवन, तेज मिर्च–मसाले, अत्यधिक शीत गुण वाली वस्तुओं को प्रयोग न करें।

चुम्बकीय उपचार :–

1. उत्तरी ध्रुव वाला चुम्बक दायें हाथ पर तथा दक्षिणी ध्रुव वाला चुम्बक बायीं हथेली के नीचे रखकर 10–10 मिनट तक उपचार करें।
2. गले के टॉन्सिल वाले भाग के ऊपर सेरेमिक चुम्बकों के उपचार करें।
3. उत्तरी ध्रुव से सिद्ध चुम्बकीय जल से गरारे करें।

4. गले के बाहर की ओर नीला तेल लगाकर गरम लपेट लपेंटें। इस क्रिया से गले के अंदर की सूजन बहुत शीघ्र खत्म हो जाती है।
5. सप्ताह भर तक नियमित रूप से चुम्बकीय उपचार लेने से रोगी को लाभ मिलता है। यदि रोग जीर्ण अवस्था में आ जाता है तो प्रातः–सायं नियमित रूप लम्बे समय तक गले के पास चुम्बकों का उपयोग करें।
6. ज्वर की अवस्था में कनपटी प्रदेश पर सेरेमिक चुम्बक प्रयुक्त करें।

अभ्यास प्रश्न – ग

4. मिर्गी के रोग में सिर के उपरी भाग में कौन से ध्रुव का प्रयोग करना चाहिए ?
5. गले के टॉन्सिल वाले भाग के ऊपर .... चुम्बकों से उपचार करना चाहिए।
6. आमवात की तीव्र अवस्था में किस तेल की मालिश एवं सिकाई करना चाहिए। क. हरा तेल चुम्बकीय ख. लाल तेल चुम्बकीय

13.11 सारांश –

चुम्बक चिकित्सा वैज्ञानिक तथा प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। अतः इसका प्रभाव शरीर में काफी समय तक रहता है। इसके लगाने से रोगी को न तो किसी प्रकार का कष्ट होता है और न रोगी को अधिक समय नष्ट करना पड़ता है। इस चिकित्सा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इससे किसी भी प्रकार की आदत भी नहीं बनती है। यदि नियम से चुम्बक लगाने के बाद किसी दिन भूल वश चुम्बक न भी लगाया जाए तो रोगी को किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। रोगी पूर्ववत आराम का अनुभव करता है। वह ताजगी, चुस्ती, फुर्ती, आराम , धैर्य आदि का अनुभव करता है। उसके शरीर से आलस भाव दूर हो जाता है। उसके शरीर में बल–वीर्य की वृद्धि होती है तथा मुख कान्तिमान होता है। साधारण स्वस्थ व्यक्ति भी इसके प्रयोग से और अधिक स्वस्थ हो सकते हैं।

वैसे तो चुम्बक ज्यादातर हाथ–पैर में लगाए जाते हैं क्योंकि हाथ–पैर की रक्त–वाहिनी नाड़ियाँ चुम्बक की दिव्य किरणों को सारे शरीर में पंहुचा देती है। परन्तु फिर भी चुम्बक को शरीर के किसी भी अंग पर लगाया जा सकता है। जिस अंग पर चुम्बक लगाया जाता है, उस पर इसका प्रभाव तत्काल होता है। व्यक्ति जब रोगी होता है तो उसका आरम्भ किसी न किसी प्रकार की पीड़ा से होता है। यदि उस पीड़ा पर विजय प्राप्त कर ली जाए तो रोग भी समाप्त होते देखा गया है। चुम्बक की चिकित्सा इसी सिद्धान्त पर आधारित है क्योंकि चुम्बक में शरीर के दर्द को दूर करने के विशेष गुण पाए जाते हैं। इसीलिए चुम्बक सभी रोगों के लिए आवश्यक है।

13.12 शब्दावली

चुम्बकीय जल – वह जल जिसे चुम्बक के सम्पर्क में लाकर उसमें चुम्बक जैसे गुण उत्पन्न किए गए हों।
मनोरोग चिकित्सा – चिकित्सा विज्ञान की वह शाखा जो मानसिक रोगों और उनसे उत्पन्न विकारों के निदान और चिकित्सा से संबंधित हों ।
कोष्ठबद्धता – मल का पूर्णतः न निकल पाना। कब्ज।
अतिसार – बार–बार दस्त होना।
छाज़न – एक प्रकार का चर्म रोग।

13.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. दक्षिणी ध्रुव 2. शर्करा
अभ्यास प्रश्न – ख 1. दक्षिणी ध्रुव 2. उत्तरी ध्रुव
अभ्यास प्रश्न – ग 1. उत्तरी ध्रुव 2. सेरेमिक 3. लाल तेल चुम्बकीय

13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. हीरा लाल बंसल
2 मैगनेट एण्ड मैगनेटिक फील्ड्स और हीलिंग बाई मैगनेट्स – ए.आर. डेविस व डॉ. एक.के. भट्टाचार्य
3 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. चौधरी व सिंह
4 सीक्रेट्स ऑफ मैगनेट थैरेपी– डॉ. एच. टी. बोलकानी
5 चुम्बक चिकित्सा – डॉ. आर. एस. अग्रवाल
6 वैकल्पिक चिकित्सा विज्ञान (अध्यात्म के स्वर) – डॉ. अमृत, गायत्री गुर्वेन्द्र
7 चुम्बकीय चिकित्सा – डॉ. पीयूष त्रिवेदी

13.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1 मधुमेह क्या है ? मधुमेह के रोग में चुम्बक चिकित्सा कि विधि को समझाइये ?
2 साइनस व टॉन्सिल के उपचार हेतु चुम्बक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन करें ?
3 मासिक धर्म संबंधि रोगों में चुम्बक चिकित्सा को सुस्पष्ट करें ?
4 मानसिक रोग क्या है ? अनिद्रा हेतु चुम्बक चिकित्सा की विधि का सविस्तार वर्णन कीजिए ?